PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

Request to Writersm

Send quality original and unpublished works written on language, literature, society, science and culture. For publication, along with the translated works, also send the letters of consent received from the original authors. Compositions should be typed in Hindi Unicode Mangal font, English Time Roman. At the beginning of the article, a summary of the article is required which should be between 150 to 200 words maximum. The abstract must reflect the purpose of writing the article. Also write 5 to 7 'key words' (seed words) according to the article.

Write the article by dividing it appropriately into subheadings. Be sure to give a conclusion at the end of the article. The word limit should be 2000 to 2500 words. List of bibliographies at the end of the article APA Be in the format of. While sending the article, please write your name, address, phone number and title of the article in the e-mail. Submit a declaration to the effect that the article is original, unpublished, the author and not the editorial board will be responsible for any dispute related to it in future.

KANCHANLATA (April - June 2026)

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज, विज्ञान एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएं भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फान्ट अंग्रेजी टाइम रोमन में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। लेख के अनुरूप 5 से 7 (की वर्ड) (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द सीमा 2000 से 2500 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे संपादक मंडल नहीं।

रचना के अंत में अपना पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें।

-संपादक

प्रकाशित पत्रिका प्राप्त करने के लिए संपर्क करे :

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी (रजि.) के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN : 2394-6458

Editor : Dr. Naresh Sihag Advocate

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

ISSN 2321-0540

KANCHANLATA

कंचनलता

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REREREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES HALFYEARLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Vol. : 39, Issue : 2

January to June : 2026

Editor-In-Chief :
Dr. Bharat Mishra Prachi

Editor :
Dr. Naresh Sihag Advocate



गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.) द्वारा प्रकाशित

KANCHANLATA

कंचनलता (त्रैमासिक)

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, RERERED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTTERLY RESEARCH JOURNAL

वर्ष-11, अंक-1-2 जनवरी-जून / 2026 आईएसएसएन : 2321-0540

प्रधान संपादक
• डॉ. भरत मिश्र प्राची
विला-15, अशियाना ग्रीनस,
सीकर रोड, जयपुर, राजस्थान।

कार्यकारी संपादक
• डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी
हरियाणा-127021

प्रबंध-संपादक
• डॉ. वैशाली

डिजिटल-संपादक
• डॉ. रोहतास निमि

अक्षर संयोजन
• मो. सलीम

कानूनी सलाहाकार
• डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
• अजीत सिहाग, एडवोकेट

अंतरराष्ट्रीय सम्पादक/परामर्श मंडल
• आशीष कुमार, गाजियाबाद
• डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी, नेपाल
• डॉ. निशीथ गौड, आगरा
• डॉ. राजेश शर्मा, श्रीगंगानगर
• श्री शियोन छन श्यू, चीन
• डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पांडे, नीदरलैंड
• डॉ. मुदस्सिर अहमद भट्ट, श्रीनगर
• डॉ. दीपशिखा, पटियाला
• डॉ. सुनीता शर्मा, ऑस्ट्रेलिया
• श्री राकेश शंकर भारती, युक्रेन
• डॉ. के.के. मल्होत्रा, कैनेडा
• डॉ. आशीष कुमार दीपांकर, मेरठ
• डॉ. कामिनी कौशल, गाजियाबाद
• डॉ. रवि शंकर सिंह, आरा

1. 'कंचनलता' का प्रबंधन और सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक है।
2. 'कंचनलता' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार, लेखकों के अपने हैं उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी हैं।
3. पत्रिका से सम्बन्धित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र भिवानी (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।
4. प्रकाशक, मुद्रक, स्वामित्व कलावती देवी, डॉ. भरत मिश्र प्राची के वास्ते डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट ने सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से मुद्रित करवा, गीना प्रकाशन, भिवानी (हरियाणा) से डिजिटल/पीडीएफ प्रकाशित किया।

नोट : इस अंक की प्रिंट कॉपी खरीदने के लिए सानिया पब्लिकेशन, दिल्ली-110094 से सम्पर्क करें। : 8383042929

विषय विशेषज्ञ सलाहकार समिति/ संपादकीय मंडल :

- **Dr. Mudita Popli**
  Principal, Maa Karni B Ed College Nal, Bikaner
- **Dr. Tapasya Chauhan**
  Assistant Professor, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra (Utter Pradesh)
- **Dr. Om Prakash Mehrara**
  Director, Shri Ramnarayan Dixit PG College, Srivijaynagar, Distt. Anupgarh (Rajasthan)
- **PRINCE KUMAR**
  UGC NET-JRF, History, Senior Researcher, University History Department, B.R.A.Bihar University Muzaffarpur, Bihar
- **Dr Kanta Verma**
  Assistant professor, Political science, Govt College Lanji Balaghat, District Balaghat, M.P.
- **Dr. Sainath Kabade**
  Assistant Professor, Department of Educational Social Sciences, NIE, NCERT, New Delhi.
- **Mr. Sagar Gopal Rathod**
  Assistant professor, School of Social Science, Punyashlok Ahilyadevi Holkar Solapur University, Maharashtra.
- **Dr (Smt.) Manjulata Kashyap**
  Professor (Economics),Govt.T.C.L.P.G. College Janjgir, Chhattisgarh
- **Dr. AMBILI V. S.**
  Assistant Professor, Department of Hindi,
  N.S.S. College, Pandalam, Pathanamthitta Distt. University of Kerala.
- **Dr. Anju Bala**
  Assistant Professor Hindi, Guru Nanak Girls College, Yamunanagar-135001
- **Dr. Tikaram Sarthi**
  Hasmukh, Lecturer, Govt H.S.S.Churteli, Dist. Sakti (Chhattisgarh)-495688
- **Dr. Atul Chand**
  Hod Defence & Strategic Studies/ ex Principal in-charge "Government Degree college Baluwakote Pithoragarh "Uttarakhand
- **Dr. Vimal Parmar**
  Assistant Prof. Rajasthan P.G. Law College, Chirawa , Rajasthan
- **Dr. Archana Tiwari** , Assistant Professor , History and Indian Culture, Uni. Rajasthan, Jaipur
- **Sneha Deepak Wankhede**
  Assistant professor Hindi Department, Rajkumar Kewalramani College Jaripatka Nagpur, Maharashtra
- **डॉ. श्रीमती अभिलाषा सैनी**
  प्राचार्य, स्व. रामनाथ वर्मा शासकीय महाविद्यालय, मोपका, जिला–बलौदा बाजार, छत्तीसगढ़
- **डॉ. मोहित शर्मा**
  श्री सर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, निम्बार्क तीर्थ किशनगढ़, जिला अजमेर (राजस्थान)
- **रजनी प्रिया**
  राँगाटाँड़ रेलवे कॉलोनी, क्वा.सं. 502/136, तरुण संघ क्लब दुर्गा मंदिर, धनबाद, पोस्ट जिला–धनबाद, झारखंड

- **डॉ. मीरा चौरसिया,** चमनलाल महाविद्यालय लंढौरा, रुड़की, हरिद्वार, उत्तराखण्ड-247664
- **डॉ. आँचल कुमारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी
  राम चमेली चड्ढा विश्वास गर्ल्स कॉलेज गाजियाबाद चौधरी चरणसिंह युनिवर्सिटी, मेरठ (उ. प्र.)
- **डॉ. प्रमोद नाग**
  सहायक प्राध्यापक, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, बेंगलुरु-560107
- **डॉ. चन्द्रशेखर सिंह**
  समाज कार्य विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **लेफ्टि. डॉ. सन्दीप भांभू**
  शारीरिक शिक्षा विभाग, टॉटिया वि.वि. श्रीगंगानगर
- **डॉ. सरिता भवानी मालवीय**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, फैकल्टी ऑफ लॉ., आर.के.डी.एफ. विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- **डॉ. संदीप कुमार,** असि. प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **पल्लवी आर्य**
  असि. प्रोफेसर, भाषाविज्ञान विभाग, के.एम.आई. डॉ. भीमराव अम्बेडकर वि.वि., आगरा
- **डॉ. अमित कुमार सिंह**
  डी. लिट्., असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, के.एम. आई., डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- **कोकिला कुमारी**
  शोद्यार्थी, हिंदी विभाग, राँची वि.वि. राँची, झारखंड
- **डॉ. तनु श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), स्कूल ऑफ सोशल साइंस, देवी अहिला विश्वविद्यालय, इन्दौर
- **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
  उप-प्राध्यापक, केंद्रीय हिन्दी विभाग, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू, नेपाल
- **डॉ. जगदीप दुबे**
  सहायक प्राध्यापक वाणिज्य (म.प्र.), शासकीय आदर्श महाविद्यालय, डीनडोरी (म.प्र.)
- **डॉ. श्रीकांत राठोड**
  सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, श्री शांतेश्वर शिक्षा संस्थान, श्री जी.आर. गांधी कला, श्री वाय ए पाटील वाणिज्य एवं श्री एम पी दोशी विज्ञान महाविद्यालय, इंडी, जिला विजयपुर, कर्नाटक
- **डॉ. मंजू देवी**
  सहायक आचार्य श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुनीता सारस्वत**
  सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग), सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी झुंझनू, राजस्थान
- **प्रा. डॉ. बोईनवाड कृष्णा बाबुराव**
  सहा. प्रा. दिगंबरराव बिंदू कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, भोकर. जिला नांदेड, महाराष्ट्र
- **डॉ. माया गोला,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)
- **श्रीराम**
  एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, बीकानेर

"कंचन लता" त्रैमासिक साहित्यिक, शोध पत्रिका में रचनाएं, लेख आदि भेजने संबंधी

नियम एवं दिशा-निर्देश

1. पत्रिका का स्वरूप

"कंचन लता" एक त्रैमासिक साहित्यिक, शोध पत्रिका है, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं के साहित्य, संस्कृति, लोकचेतना एवं समकालीन विमर्श को मंच प्रदान करना है। पत्रिका में हिंदी सहित भारतीय भाषाओं की मौलिक एवं स्तरीय रचनाएँ डिजिटल/पीडीएफ रूप में प्रकाशित की जाएँगी।

2. प्रकाशन अवधि

पत्रिका वर्ष में चार बार प्रकाशित होगी—

1. जनवरी मार्च अंक 2. अप्रैल जून अंक
3. जुलाई सितंबर अंक 4. अक्टूबर दिसंबर अंक

3. स्वीकार्य रचनाएँ

पत्रिका में निम्न विधाओं की रचनाएँ स्वीकार की जाएँगी—

- कविता
- गीत / ग़ज़ल / नज़्म
- कहानी / लघुकथा
- लेख / निबंध
- शोध आलेख
- समीक्षा
- संस्मरण
- यात्रा-वृत्तांत
- साक्षात्कार
- लोक साहित्य
- अनुवाद साहित्य
- बाल साहित्य

4. भाषा संबंधी नियम

1. रचनाएँ हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा में भेजी जा सकती हैं।
2. देवनागरी लिपि को प्राथमिकता दी जाएगी।
3. अन्य भारतीय भाषाओं की रचनाओं के साथ हिंदी अनुवाद, पीडीएफ संलग्न करना वांछनीय होगा।
4. भाषा शुद्ध, मर्यादित एवं साहित्यिक होनी चाहिए।

5. मौलिकता संबंधी नियम

1. भेजी गई रचना पूर्णतः मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए।
2. किसी अन्य पत्रिका, वेबसाइट अथवा सोशल मीडिया पर प्रकाशित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी।
3. साहित्यिक चोरी (Plagiarism) पाए जाने पर रचना निरस्त कर दी जाएगी तथा लेखक उत्तरदायी होगा।

6. संपादकीय अधिकार

1. संपादक मंडल को रचना में आवश्यक संशोधन, संक्षेपण अथवा अस्वीकृति का पूर्ण अधिकार होगा।
2. संपादकीय निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा।
3. प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार लेखक के निजी होंगे; पत्रिका संपादक मंडल का उनसे सहमत हो यह आवश्यक नहीं।

4. किसी भी विवाद में पत्रिका का निर्णय अंतिम होगा, न्याय क्षेत्र भिवानी हरियाणा होगा।

7. रचना भेजने की प्रक्रिया

1. रचनाएँ मंगल, यूनिकोड हिंदी फॉन्ट में टाइप कर भेजी जाएँ।

2. रचना के साथ लेखक का संक्षिप्त परिचय, पता एवं मोबाइल नंबर अवश्य भेजें।

3. शोध आलेखों में संदर्भ सूची अनिवार्य होगी।

4. रचनाएँ ईमेल अथवा व्हाट्सएप माध्यम से स्वीकार की जा सकती हैं।

8. प्रकाशन शुल्क / सहयोग राशि

1. पत्रिका साहित्य सेवा हेतु डिजिटल/पीडीएफ रूप में प्रकाशित की जाती है।

2. विशेषांक अथवा शोधांक हेतु सहयोग राशि निर्धारित हैं इसे दिए बिना शोध आलेख/प्रपत्र प्रकाशित नहीं किए जा सकते है।

3. सहयोग राशि वापस नहीं की जाएगी।

4. पत्रिका की हार्ड/प्रिंट कॉपी हेतु आप प्रकाशक से संपर्क करें।

9. कॉपीराइट नियम

1. प्रकाशित रचनाओं का प्रथम प्रकाशन अधिकार "कंचन लता" पत्रिका के पास सुरक्षित रहेगा।

2. पुनर्प्रकाशन की स्थिति में पत्रिका का उल्लेख करना अनिवार्य होगा।

10. सम्मान एवं प्रमाणपत्र

1. चयनित रचनाकारों को ई-प्रमाणपत्र / सम्मान पत्र प्रदान किए जा सकते हैं।

2. उत्कृष्ट रचनाओं को विशेष सम्मान हेतु चयनित किया जा सकता है।

11. निषेध

निम्न प्रकार की रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी–

- अश्लीलता फैलाने वाली सामग्री
- जातीय / धार्मिक विद्वेष उत्पन्न करने वाली सामग्री
- राष्ट्रविरोधी विचार
- मानहानिकारक अथवा आपत्तिजनक लेखन

12. संपर्क

कंचन लता

त्रैमासिक पत्रिका

- प्रधान संपादक : डॉ. भरत मिश्र प्राची, जयपुर, राजस्थान
- प्रकाशन/ संचालन स्थल
- गुगन राम सोसायटी रजिस्टर्ड बोहल भिवानी हरियाणा

13. विशेष घोषणा

पत्रिका का उद्देश्य भारतीय भाषाओं एवं साहित्यिक मूल्यों का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार करना है। सभी साहित्यकारों, शोधार्थियों एवं पाठकों का सहयोग अपेक्षित है।

इस पत्रिका का प्रकाशन संस्था को प्राप्त अनुदान से या शोध आलेखों के प्रकाशन हेतु प्राप्त होने वाली राशि पर निर्भर करता है।

कंचनलता का नवोदय : परंपरा से डिजिटल युग की ओर

प्रिय पाठकगण, शोधार्थियों, साहित्यकारों एवं हिंदी प्रेमियों,

कंचनलता साहित्यिक एवं शोध पत्रिका अपने आरंभ काल से ही साहित्य, संस्कृति, भाषा, शोध और चिंतन की सशक्त वाहक रही है। इस पत्रिका ने अनेक नवोदित एवं प्रतिष्ठित रचनाकारों को मंच प्रदान करते हुए हिंदी साहित्य की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके संस्थापक एवं प्रधान संपादक आदरणीय 'डॉ. भरत मिश्र प्राची' ने सीमित संसाधनों के बावजूद साहित्य साधना को अपना जीवनधर्म मानते हुए पत्रिका को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उनके अथक परिश्रम, समर्पण और साहित्यिक दृष्टि ने कंचनलता को साहित्य-जगत में एक विशिष्ट पहचान प्रदान की।

किन्तु समय के साथ आर्थिक चुनौतियों, संसाधनों की कमी तथा कुछ व्यक्तिगत कारणों के चलते पत्रिका का नियमित प्रकाशन प्रभावित हुआ। यह स्थिति केवल एक पत्रिका के अवरुद्ध होने की नहीं थी, बल्कि उन असंख्य साहित्यकारों, शोधार्थियों और पाठकों की अपेक्षाओं से भी जुड़ी थी जो कंचनलता को अपने बौद्धिक और साहित्यिक विकास का माध्यम मानते रहे हैं। आज यह बताते हुए हर्ष और संतोष का अनुभव हो रहा है कि आदरणीय 'डॉ. भरत मिश्र प्राची' ने पत्रिका के प्रकाशन, संपादन, प्रबंधन तथा विकास से संबंधित समस्त दायित्व साहित्यकार, अधिवक्ता एवं शोध-संवर्धक 'डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट' तथा उनकी संस्था गुगन राम सोसायटी (रजिस्टर्ड), भिवानी, हरियाणा' को सौंपने का निर्णय लिया है। यह निर्णय केवल प्रशासनिक हस्तांतरण नहीं, बल्कि साहित्यिक विरासत को सुरक्षित हाथों में सौंपने का एक दूरदर्शी प्रयास है।

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट पिछले कई वर्षों से साहित्य, शोध और सामाजिक सरोकारों के क्षेत्र में सक्रिय हैं। उनके मार्गदर्शन में अनेक शोध पत्रिकाओं, साहित्यिक आयोजनों तथा शोध गतिविधियों को नई दिशा मिली है। गुगनराम सोसायटी भी शिक्षा, साहित्य और सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रही है। हमें विश्वास है कि इनके नेतृत्व में कंचनलता पुनः अपनी गरिमा और सक्रियता के साथ साहित्यिक जगत में उपस्थित होगी।

वर्तमान समय डिजिटल क्रांति का युग है। ज्ञान, शोध और साहित्य की पहुँच अब भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं रही। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कंचनलता साहित्यिक एवं शोध पत्रिका के 'डिजिटल प्रकाशन' को पुनः प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया है। अब पत्रिका का ऑनलाइन संस्करण देश-विदेश के पाठकों, शोधार्थियों एवं साहित्यकारों तक सरलता से पहुँच सकेगा। डिजिटल माध्यम न केवल प्रकाशन की नियमितता सुनिश्चित करेगा, बल्कि शोध सामग्री के व्यापक प्रसार का भी मार्ग प्रशस्त करेगा। आगामी समय में पत्रिका में शोध आलेख, समीक्षाएँ, कविताएँ, कहानियाँ, लघुकथाएँ, साक्षात्कार, आलोचनात्मक लेख तथा समसामयिक विषयों पर विशेष सामग्री प्रकाशित की जाएगी। साथ ही युवा शोधकर्ताओं और नवोदित साहित्यकारों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाएगा ताकि नई पीढ़ी साहित्यिक एवं अकादमिक विमर्श से जुड़ सके। हम आदरणीय डॉ. भरत मिश्र प्राची के प्रति हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करते हैं कि उन्होंने अपने वर्षों के तप, परिश्रम और साहित्यिक साधना से निर्मित इस प्रतिष्ठित मंच को आगे बढ़ाने हेतु हम पर विश्वास व्यक्त किया। यह विश्वास हमारे लिए सम्मान के साथ-साथ एक बड़ी जिम्मेदारी भी है। हम संकल्प लेते हैं कि कंचनलता की मूल भावना, उसकी साहित्यिक गुणवत्ता और शोधपरक गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए उसे नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का प्रयास करेंगे।

हम सभी साहित्यकारों, शोधार्थियों, शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं पाठकों से आग्रह करते हैं कि वे इस नवयात्रा में अपना सहयोग, मार्गदर्शन और सृजनात्मक योगदान प्रदान करें। आपकी सहभागिता ही कंचनलता को पुनः एक सशक्त साहित्यिक एवं शोध मंच के रूप में स्थापित करेगी। आइए, हम सब मिलकर इस साहित्यिक दीपशिखा को पुनः प्रज्वलित करें और ज्ञान, शोध तथा सृजन की इस यात्रा को नए उत्साह और नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ाएँ।

संपादक मंडल
कंचनलता साहित्यिक एवं शोध पत्रिका
गुगनराम सोसायटी (रजिस्टर्ड), भिवानी, हरियाणा

विषयानुक्रम

नियम एवं दिशा-निर्देश 4

कंचनलता का नवोदय : परंपरा से डिजिटल युग की ओर 6

संस्मरण क्या है? 9
डॉ. निशांत शेखर

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक विषमता 12
डॉ. एकता रानी

21वीं सदी की हिंदी कविता में नारी का चित्रण : वैश्विक परिदृश्य में क्षेत्रीय पहचान के संघर्ष का अध्ययन 17
गायकवाड आम्रपाल बाबाराव / आचार्य नल्ला सत्यनारायण

प्रकाश मनु के बाल साहित्य का मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण 20
बोड्डू रामबाबू / आचार्य नल्ला सत्यनारायण

इक्कीसवीं सदी में भारत-अमेरिका संबंधों का अध्ययन 23
Dr. Suvendra Singh

भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का इको-क्रिटिकल अध्ययन भक्ति, प्रकृति और पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में 29
पूनम / डॉ. संजय

नागपुरी साहित्यकार मेघनाथ ओहदार के काव्य में रस-योजन 39
बबलु कुमार

नागपुरी पद्य साहित्य : उद्‌भव, विकास, स्वरूप एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ 43
श्याम सुंदर यादव

नागपुरी काव्य में सौंदर्यबोध 48
श्रीकांत गोप

अलवर राज्य की स्थापना का ऐतिहासिक अध्ययन 53
सौरभ बसवाल

मानवता के उपासक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी 63
डॉ. रीता रानी रिहालिया

Yoga Education as a Marketing Tool 66
Dr. Arpita Negi / Sanjay Dutt

वैश्वीकरण के दौर में लोक परंपरा और आधुनिकता 77
डॉ. अन्जनी कुमार

समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाएँ 85
डॉ. शालिनी सी.

(ਭਾਈ) ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਕਾਵਿ ਵਿਰਾਸਤ: ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਖ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ 93
ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ ਤੁਲੀ,
ਡਾ: ਸੁਨੈਨਾ (ਨਿਗਰਾਨ)

साहिर लुधियानवी : विचारों से बुनी हुई गीतमाला 100
रेमीसा सी.यु.

पाठ्य सहगामी क्रियाओं में योग क्रियाओं की आवश्यकता एवं विद्यार्थियों में योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन 105
सुनीता जाखड़ / डॉ. रेखा खण्डेलवाल

एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति 108
Anju Kumari

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों का प्रभाव 116
अलका यादव / डॉ. सन्जू

भारत में मानव अधिकार : दशा एवं दिशा - वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 120
डॉ. निरंजन कुंभकार

वर्तमान में राजस्थान में सीमेंट उद्योग के पर्यावरणीय दृष्टि से प्रभाव 126
हेमा राम जाट

पर्यावरण इतिहास प्रकृति और मानव के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन 128
आकाश गुप्ता

अनुसंधान एवं सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्यिक पत्रिका का महत्त्व 132
डॉ. दीपशिखा

Digital Financial Literacy And Investment Behaviour Of Generation Z : A Comprehensive Review 137
Dr. Atul Kumar

हिन्दी उपन्यास साहित्य में देवकीनंदन खत्री का योगदान 150
डॉ. दस्तगीर एम. मुल्ला

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा : गांधीवादी दृष्टिकोण से अध्ययन 156
ललिता यादव
डॉ. शिल्पा रानी

डॉ. एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन तथा उसकी समकालीन युग में प्रासंगिकता का अध्ययन 159
किरण यादव
डॉ. सन्जू

ग्रामीण व शहरी अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन 162
खुशबू कँवर
डॉ. सन्जू

भारतीय दलीय प्रणाली : स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात 165
डॉ. गायत्री देवी

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विषयानुसार पाठ्यक्रम का उनकी शैक्षिक उपलब्धि एवं नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन 168
नेहा शेखावत
डॉ. सन्जू

विनोबा भावे का शिक्षा दर्शन तथा उसकी वर्तमान युग में उपादेयता 171
रेणु चौधरी
श्रीमती अन्जू चंदेल

दिव्यांग विमर्श और भारतीय दार्शनिक परम्परा : अष्टावक्र महाकाव्य के संदर्भ में 173
शिवेन्द्र कुमार

भारत में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने में चुनाव आयोग की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 180
Fatima Zohra

जयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की विद्यालय परिवेश में कुंठा परिस्थितियों का एक विवरणात्मक अध्ययन 187
रेनू बाला शर्मा
श्रीमती अन्जू चंदेल

Vitamins and Coenzymes: Their Role in Metabolism and Enzyme Activity 189
Kamini Kumari

'अनबीता व्यतीत' उपन्यास में टैक्सीडर्मी और पर्यावरण चेतना 193
Dr. M. Kala

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों में आ रही गिरावट के कारकों एवं समाधानों का अध्ययन 197
प्रियांशी वर्मा / डॉ. मंजू देवी

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' : जीवन-मूल्य और साहित्य-चिंतन 200
सुशीला देवी / डॉ. धनेश कुमार मीणा

चंद्र किशोर जायसवाल के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन 206
नीला कुमारी

उषाकिरण खान के उपन्यासों में चित्रित समाज 209
अलीशा बेगम. एन. / डॉ. एन. जयश्री

कथाकार गीताश्री के उपन्यास में लोकसंस्कृति के स्वर 213
ऋचा कुमारी

गलवान के बाद भारत-चीन संबंधों में रणनीतिक पुनर्संतुलन 217
राकेश कुमार

गुप्तकालीन समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विश्लेषण : एक अध्ययन 224
डॉ. रेणुका सिहाग

Financial Inclusion As A Pathway To Sustainable Rural Development: Insights From Ranchi District 229
Sanjiv Chaturvedi / Ajay Ram

From Harappan Outposts to Dogra Palaces: The Heritage Sites of the Jammu Region 238
Dr. Ranjodh Singh Jamwal

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

संस्मरण क्या है?

डॉ. निशांत शेखर
श्रीराम प्रॉपर्टी लिबर्टी स्क्वायर, गोल्ड कॉइन क्लब के पास
अनंत नगर इलेक्ट्रॉनिक सिटी फेज़-2, बेंगलुरु
M:8940187377, Email: Shekharfrench@gmail.com

सैद्धांतिक निरूपण संस्मरण गद्य की एक आत्मनिष्ठ किया है। संस्मरणकार अपने व्यक्तिगत जीवन तथा अपने सम्पर्क में आये हुए स्मृति के आधार पर प्रकाश डालता है। लेखक अपने अपने व्यक्तिगत जीवन में कई व्यक्तियों एवं घटनाओं को समीप से देखता और समझता है। साधारण व्यक्ति इन क्षणों को भूल जाता है। किन्तु संवेदनशील कलाकार अपने शब्दों से उसे जीवंत कर देता है। तभी संस्मरण की सृष्टि होती है।

संस्मरण शब्द सम्-स्मृ-त्युर् (अण) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है भली प्रकार से स्मृति। इस तरह स्मृति करने के कार्य के फल को संस्मरण कहते है। मानविकी पारिभाषिक कोश में भी संस्मरण को स्मृति पर आधारित आत्मकथा का रूप माना जाता है। यह शब्द अंग्रेजों के मेमायर्स के समानार्थक हिन्दी में प्रयुक्त होता है।

संस्मरण शब्द का संबंध स्मृति से है अतीत की स्मृतियों से। संस्मरण गद्य की एक आत्मनिष्ठ विधा है। संस्मरणकार अपने व्यक्तिगत जीवन तथा अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के किसी पहलु पर स्मृति के आधार पर प्रकाश डालता है।

संस्मरण का चित्रण प्रायः अनुभूत स्मृतियों से किया जाता है। पश्चिम में संस्मरण के लिए दो शब्द प्रचलित है। (1) रेमिनिसेंसेज, (2) मेमायर्स। जब लेखक अपने संबंध में संस्मरण लिखता है तो उसे रेमिनिसेंसेज कहा जाता है। और जब वह किसी दूसरे के लिए लिखता है तो उसे मेमायर्स कहते है। किन्तु हिन्दी में दोनों के लिए एक ही नाम है संस्मरण।जब किसी व्यक्ति या विषय के संदर्भ में स्मृति के आधार पर कोई लेख या ग्रन्थ तैयार किया जाता है तो उसे संस्मरण कहा जाता है।

संस्मरण हिन्दी गद्य की अधुनातम विधा है। जीवनीपरक साहित्य का यह अत्यंत ललित एवं लघु कलात्मक अंग है। कुछ विद्वानों की राय में इसका आगमन। पश्चिम से हुआ है, परन्तु वास्तविक रूप में इसका बीज रूप बहुत पहले से हिन्दी में मिलता है। भारतीय काव्य शास्त्र में स्मरण अलंकार रूप में चिरकाल से प्रयुक्त होता रहा है। लेकिन आज संस्मरण एक विधा है। इस विधा को विभिन्न विद्वानों से विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह संस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- जो याद किया स्मृति है स्मृति कुछ नहीं संस्मरण ही है। "चन्द्रावती सिंह के अनुसार संस्मरण कुछ असम्बंध घटनाओं का नोट हो सकता है, जो लेखक के जीवन से संबंध रखता है और जिसे या तो चरित्रनायक स्वयं लिखे अथवा उसे अन्य व्यक्ति लिखे। जीवन की बहुत सी बातों में, संसार की हलचलों में दफ्तर की किसी कार्यवाही में या किसी सभा आदि में जो समय-समय पर बातें घटी हैं, उनका अलग-अलग वर्णन संस्मरण कहा जा सकता है।"

"डॉ. वीरेन्द्र अग्रवाल के शब्दों में, "जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना या खण्ड का वर्णन संस्मरण कहलाता है। इस प्रकार अग्रवाल जी की परिभाषा का विस्तार किया जाय तो यह अनायास ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि संस्मरण में

घटना के विशेषीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है जिसमें एक काल-विशेष में घटित होने वाली घटनाओं को लेखनी के माध्यम से उकेरा जाता है।"

"डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वहीं रह जाता है जोमहत् विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है।"

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- व्यक्तिंगत अनुभव से रचा गया इतिवृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।

डा. नगेन्द्र भी व्यक्तिगत अनुभवको संस्मरण लेखन में श्रेष्ठ मानते हैं। अतः स्पष्ट है कि अनुभव की हुई बातें अतीत की होगी और अतीत की बातों को स्मृति के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है।

"डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत संस्मरण में व्यक्तित्व की महत्ता स्वीकारते हुए निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किये हैं– भावुक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ स्मरणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित से विशिष्ट बत्ताकर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है, तब वह संस्मरण कहलाता है।"

"डॉ. जगदीश गुप्त संस्मरण को इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं- जो तरंगाघात मन अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं, वही संस्मरण बन जाते हैं।"

सत्येन्द्र के अनुसार संस्मरण केवल चुने हए लोगों की जीवन की कुछ घटना होता है। ये घटनाएँ वही होती हैं, जिनसे लेखक प्रभावित है। डॉ. नित्यानन्द तिवारी संस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- इसमें लेखक निजी अनुभूतियों को व्यंजना मूलक कल्पना से रंगकर रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। महादेवी वर्मा अतीत के चलचित्र में संस्मरण को परिभाषित करते हुए लिखता है– शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है जब हमारी भाव प्रवणता गंभीर और प्रशांत होती है, तब अतीत की रेखाएँ कहरे में से स्पष्ट होती हुयी वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं जिस समय हम तर्क से उनकी उपयोगिता सिद्ध करके हम स्मरण करने बैठते हैं, उस समय पत्थर फेंकने से हट कर मिल जाने वाली, पानी की काई के समान स्मृति उन्हें फिर-फिर ढक लेती है।

संस्मरण साहित्य की वह विधा है, जो लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से समाज, राजनीति, संस्कृति और धर्म के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है। हिंदी साहित्य में संस्मरण विधा ने न केवल ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं को दस्तावेजी रूप दिया है, बल्कि उनमें लेखक की संवेदनाएँ, दृष्टिकोण और भावनाएँ भी प्रतिबिंबित होती हैं। इस विधा के माध्यम से पाठक एक साथ लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों और व्यापक समाज की यात्रा का हिस्सा बनता है। सांस्कृतिक संस्मरण एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा है, जिसमें लेखक अपने जीवन के सांस्कृतिक अनुभवों, परंपराओं, और सामाजिक मान्यताओं का वर्णन करता है। संस्मरणों में लेखक अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज, त्योहार, संगीत, नृत्य, और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है। सांस्कृतिक संस्मरण केवल व्यक्तिगत अनुभवों का संग्रह नहीं होते, बल्कि वे उस समय के समाज की सांस्कृतिक धारा और पहचान का भी परिचायक होते हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. वीरेन्द्र अग्रवाल - हिन्दी साहित्य का इतिहास–पृ.सं. 128
2. रामचन्द्र तिवारी–हिन्दी का गद्य साहित्य–पृ.सं. 527
3. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत–शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत–पृ.सं. 77
4. जगदीश गुप्त–सारिका, संस्मरण विशेषांक–चित्र ये बनाने में चित्रकार थाने में–पृ.सं. 37
5. महादेवी वर्मा–अतीत के चलचित्र–पृ.सं. 1
6. डॉ. वीरेन्द्र अग्रवाल - हिन्दी साहित्य का इतिहास–पृ.सं. 128
7. हरिवंशराय बच्चन–साहित्य संदेश दिसम्बर–पृ.सं. 215
8. महादेवी वर्मा–अतीत के चलचित्र–पृ.सं. 11

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक विषमता

डॉ. एकता रानी
पीएच॰डी॰, नेट (हिंदी)
सहायक आचार्य
चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय,
सिरसा (हरियाणा) 125055

शोध सार

जनवादी चेतना के प्रमुख साहित्यकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन में व्याप्त आर्थिक विषमता, शोषण तथा सामाजिक विषमताओं का यथार्थ एवं संवेदनशील चित्रण किया है। उन्होंने अशिक्षित किसान, मजदूर और दलित वर्ग के जीवन-संघर्षों को अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया है। उनके उपन्यासों में सामंती व्यवस्था, जमींदारी शोषण, आर्थिक अभाव तथा सामाजिक दुराचारों के कारण उत्पन्न विषमताओं को गहनता से अभिव्यक्ति मिली है। विशेषतः 'बलचनमा' में जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित किसानों और मजदूरों की व्यथा को स्वर प्रदान करते हुए लेखक ने दलित वर्ग को संगठित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने का संदेश दिया है। नागार्जुन का मानना है कि शोषण से मुक्ति के लिए पीड़ित वर्ग को स्वयं संघर्ष का नेतृत्व करना चाहिए। उनके उपन्यास केवल आर्थिक विषमताओं का चित्रण ही नहीं करते, बल्कि सामाजिक चेतना, वर्ग-संघर्ष और परिवर्तन की आवश्यकता को भी रेखांकित करते हैं। इस प्रकार नागार्जुन का कथा-साहित्य आर्थिक समानता, सामाजिक न्याय और मानवीय मूल्यों की स्थापना का सशक्त माध्यम सिद्ध होता है।

कुंजी शब्दः- आर्थिक, किसान, मजदूर, दलित, वर्ग-संघर्ष, स्त्री-शोषण, ग्रामीण जीवन, सामंतवाद, जनवादी चेतना।

प्रस्तावना

नागार्जुन सामाजिक समानता और न्याय के प्रबल समर्थक हैं। जब वे समाज को आर्थिक विषमता के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तब उन्हें उसमें व्याप्त विषमताएँ और अधिक चिंतित करती हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज में मौजूद आर्थिक असंतुलन और वर्गीय विभाजन का अत्यंत यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में आर्थिक विषमता स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होंने किसान और जमींदार, श्रमिक और स्वामी, पूँजीपति और सर्वहारा, पति-पत्नी, तथा मठ और महंत के मध्य विद्यमान संबंधों एवं अंतर्विरोधों का अत्यंत सूक्ष्मता और गंभीरता के साथ विश्लेषण किया है।

उच्चवर्गीय समाज तथा जमींदारी व्यवस्था की विसंगतियों और दमनकारी स्वरूप की विस्तृत समीक्षा नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ', 'बलचनामा', 'रतिनाथ की चाची', 'जमनिया का बाबा' तथा 'हीरक जयंती' जैसे उपन्यासों में की है। 'बाबा बटेसरनाथ' में उन्होंने जमींदार वर्ग की मानसिकता का चित्रण करते हुए उसके प्रभुत्ववादी और शोषणकारी स्वरूप को स्पष्ट

किया है कि, 'जमींदार अपने इलाके का सर्वस्व हुआ करता था 'रिआय से सेठ वेगार लेना उसका सहज अधिकार प्राप्त था। छोटी औकात के और नीच जाति के लोगों को तो ग्बर वह कोर्डे - मकोड़े समझा ही था। अच्छी-अच्छी हैसियत के भले खासे व्यक्तियों से वक्त - बेवक्त नाक रगडवाता जमींदार।'[1]

'बलचनमा' उपन्यास में नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त बेरोजगारी तथा आर्थिक संकट के विभिन्न पक्षों का अत्यंत यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने ऐसे भूमिहीन किसानों और मजदूरों की समस्याओं को सामने रखा है, जिन्हें वर्ष के केवल कुछ महीनों तक ही कृषि कार्य उपलब्ध हो पाता है, जबकि शेष समय उन्हें जीविका के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अकाल और प्राकृतिक विपदाओं के समय उनकी स्थिति और भी अधिक दयनीय हो जाती है। बलचनमा के साथ-साथ समस्तीपुर क्षेत्र के अन्य श्रमिकों की आर्थिक विषमता भी उनकी समस्याओं के मूल कारण के रूप में उभरकर सामने आती है।

नागार्जुन ने यह भी स्पष्ट किया है कि प्राकृतिक आपदाएँ किसानों और मजदूरों की आर्थिक स्थिति को और अधिक संकटग्रस्त बना देती हैं। सन् 1934 में समस्तीपुर, महापुरा, सीतामढ़ी, मधुबनी, मुंगेर तथा आसपास के अनेक क्षेत्रों में आए विनाशकारी भूकम्प ने जनजीवन को पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दिया था। इस आपदा में सामान्य लोगों के घरों के साथ-साथ जमींदारों की हवेलियाँ, सरकारी कार्यालय, थाने, जेल, कचहरियाँ, अस्पताल और मंदिर जैसी अनेक इमारतें ध्वस्त हो गईं। बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई और परिवहन व्यवस्था भी ठप पड़ गई, क्योंकि सड़कों में दरारें पड़ गईं तथा रेल की पटरियाँ क्षतिग्रस्त हो गई थीं।

भूकम्प के बाद स्थिति इतनी भयावह हो गई कि लोगों के सामने भोजन और आवास की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई। सामान्य जनता के पास न तो घरों के पुनर्निर्माण के लिए धन था और न ही उन्हें पर्याप्त मजदूरी उपलब्ध हो रही थी। पीने का पानी भी दूषित और दुर्गंधयुक्त हो जाने के कारण जनजीवन और अधिक कष्टपूर्ण हो गया। ऐसी विषम परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस द्वारा राहत कार्य आरम्भ किए गए। कुओं की खुदाई तथा आर्थिक सहायता के कार्यक्रम प्रारम्भ हुए और कांग्रेस की ओर से फूल बाबू प्रभावित लोगों के बीच धन वितरण का कार्य करने लगे।

किन्तु नागार्जुन ने राहत कार्यों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अवसरवादिता को भी उजागर किया है। छोटे मालिक के मुंशी से यह जानकारी मिलती है कि फूल बाबू ने राहत कार्यों में प्राप्त राशि का एक बड़ा भाग अपने पास रख लिया था। लोगों से पूरे भुगतान के नाम पर अंगूठे के निशान लिए जाते थे, जबकि उन्हें निर्धारित राशि से कम धन दिया जाता था। इस प्रकार आपदा की घड़ी में भी गरीब और असहाय लोगों का शोषण जारी रहा। इन परिस्थितियों को देखकर समस्तीपुर की विधवा कुन्ती जुगल व्यंग्यपूर्ण स्वर में बलचनमा से कहती है कि 'बबुआ वालो, भुइकंफ यह क्या हुआ, वडे लोगों के लिए आमदनी का एगो अऊर रास्ता निकल आया...।'[2]

इससे यह स्पष्ट होता है कि जमींदार वर्ग केवल गरीब और श्रमिक समुदाय का ही शोषण नहीं करता था, बल्कि राजनीतिक संस्थाओं और प्रभावशाली संगठनों पर भी अपना प्रभाव बनाए रखकर अपनी स्वार्थपरक नीतियों को निरंतर संचालित करता था। परिणामस्वरूप सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिक दयनीय होती चली जाती थी और उनके लिए जीवन-निर्वाह करना अत्यंत कठिन हो जाता था।

नागार्जुन के अनुसार किसान बाह्य रूप से भले ही असहाय और कमजोर दिखाई देते हों, किन्तु उनमें अपार शक्ति निहित होती है। उनकी वास्तविक सामर्थ्य उनकी सामूहिक एकता और संगठन में निहित है। यदि किसान संगठित होकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करें, तो सफलता निश्चित रूप से उनके पक्ष में होगी और वे अपने वैध अधिकारों को प्राप्त करने में सक्षम होंगे। इसी कारण नागार्जुन किसानों में जागरूकता और संगठन की भावना विकसित करने पर विशेष बल देते हैं। उनका विश्वास है कि शोषण और अन्याय से मुक्ति का मार्ग सामूहिक संघर्ष और एकजुटता से होकर गुजरता है।

'वलचनमा' उपन्यास में उच्च वर्ग, जमींदारी-उन्मूलन के वाद फाजिल जमीन को अपने अधिकार में लेने की साजिश चुपके चुपके करने लगे। महपूरा का जींदार खान बहादुर साहूल्ला खाँ से हजारों बीघा जमीन खरीदता है। वे निम्न वर्ग की

दो चार विघे जमीन भी हडपने लगे। उनकी इस साजिश में कुछ किसान और शामिल हो जाते हैं। वे गरीबों का शोषण अपनी हडप नीति से करते हैं'मगर खान बहादुर नहीं बैठे रहे, भीतर ही भीतर उनका जमींदारी दाँव पेच वढता ही गया। गरीब किसान की यह जमीन अपने अपने नाम चुपचाप लिग्ख कौन रहे थे? बडे मंझले किसान को अक्सर हमारी तरफ से बराहमन, मुइहार' शेग्ख और सूडी महाजन होते हैं यही हडपना चाहते थे गरीबों के मुट्ठी दो मुट्ठी भात को।'[3]

अतः विद्रोह का आह्वान सामूहिक तौर पर खेती की लडाई के लिए होता है। महपूरा के किसान जालिम जमींदार के खिलाफ अपना साहस बटोरकर मैदान में उतर आते हैं। 'उस जालिम जमींदार का मुकाबला अकेले तो कोई नहीं कर सकता था, उसकी पीठ पर थाने के दरोगा साहब थे, दरभंगा के कल्क्टर साहव थे, लेकिन सौठों साली लाठी एक जगह हो जायें तो उसका एक भारी बोझ वन जाता है। अपनी अपनी धरती के लिए किसान एक होने लगे, रैयत लोगों ने तय कर लिया था कि लाश गिरे, मगर अपने खेत दूसरों के दखल में नहीं जाने देंगे।'[4]

किसान सभा का आयोजन डॉ. रहमान महपूरा गाँव में किसान संघर्ष के लिए करते हैं। किसानों के ऊपर होने वाले जुल्मों के वारे में वे सोशलिस्ट भाइयों को सूचना देते हैं 'कांग्रेस आपका दुःख दर्द क्या समझेगी, वह खादी पहनकर और गले में माला में डालकर आप लोगों को शांति और संतोष का सबक सिखाते फिरते हैं... खबरदार भाईयों... आप अकेले नहीं हैं, करोडों की तादाद है आपकी। आप जब उठ खडे होंगे और एक कण्ठ होकर हुंकार करेंगे तो जालिम जमींदारों का कलेजा दहलने लगेगा। वे हैं ही कितने दाल में नमक के वरावर... संगठित होकर एक हो जाइए। जान जाए तो जाए, मगर जमीन नहीं छोडिए और अदालत के इर्द-गिर्द कभी मत आईए खान बहादुर हो, चाहे महाराज बहादुर, कोई आपका हक नहीं छीन पाएगा। आप अपनी ताकत की पहचानिए। 'बोलिए सब मिलकर इन्कलाब।'[5] नागार्जुन ने बलचनमा में भारत की पीडित, गरीब और शोषित जनता की भावनाओं को वाणी प्रदान करने का प्रयल किया। नागार्जुन समाजवादी यथार्थवाद के प्रबल समर्थक हैं, उनके मन में निम्न समझे जाने वाले समाज के प्रति, जो उच्च वर्ग द्वारा शोपित किया जाता रहा है, अपार संवेदना है। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से उन्हें संगठित किया है और अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के लिए क्रांति का विगुल बजाया है।

'कुंभीपाक' नागार्जुन का नारी-शोषण मुक्त उपन्यास है, जिसमें उपन्यास की अधिकांश नारी पात्र किसी न किसी रूप में पुरुषों के शोषण ण की शिकार हैं। इस शोषण के दलदल में नारियाँ जो एक बार फंसती हैं वे धंसती ही चली जाती हैं वहाँ, से कभी उबर ही नहीं सकतीं। इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'बुआ' अर्थात चम्पा एक ऐसी नारी है जिस का संबंध कई पुरुषों से रहा। तरुणाई में उसे जीजा ने छू दिया था। विधवा हो जाने पर पुनः जीजा के प्रति समर्पित थी, परन्तु जीजा के, शादी से इन्कार कर देने पर चम्पा सफदर पर फिदा हो गई, जिसने उसे कुलसुम बना दिया। सफदर का साथ छूटने पर वह सरदारों के साथ रहकर सतवंत कौर बन गई और सरदारों से विछुड़कर पुनः चम्पा बुआ। इस तरह चम्पा तो यौन शोषण का शिकार हुई ही, परन्तु वही चम्पा शर्माजी के संपर्क में आकर खुद लडकियों की खरीद-बिक्री करने लगी। वह भुवनेश्वर जैसी कई दलित नारियों को यौन शोषण रूपी कुंभीपाक के दलदल में फँसाती गइ। आखिर कंपाउंडर की बीबी निर्मला जैसे साहसी नारी के संपर्क में जब भुवनेश्वरी, उर्फ इन्दिरा आयी, तभी उनका उद्धार हो सका। भुवनेश्वरी जब चम्पा बुआ के चंगुल से निकली तो, बुआ की इन्सानियत जागी और वह इस कुंभीपाक से निकलकर शिल्प कुटीर खोलकर स्वस्थ जीवन जीने लगी। अब चम्पा बुआ लडकियों की दलाल नहीं थी। यौण-शोषण जैसी घृणित कर्म करने करानेवाली न थी। वह तो शिल्प कुटीर चलाने वाली चम्पा बुआ थी। जहाँ जवान विकाऊ लड़कियाँ नहीं, अचार, मुरव्वे, पापड, बेडयाँ, वेल-यूटे, झालर, रूमाल, मेजपोश, मोजे तथा स्वेटर आदि मिलते थे। जहाँ स्त्रियों और बच्चों के कपड़े सिलवाए जाते थे। नागार्जुन इस उपन्यास में दलित नारियों को स्वावलंबी बनाकर जगाना चाहते हैं। नारी जव खुद को अवला मानकर शोषण का शिकार होती है वही नारी स्वावलंबी बनकर पुरुषों की बराबरी कर सकती है।

सन् 1960 में लिखित इस उपन्यास में नागार्जुन ने वेश्या समस्या का यथार्थ चित्रण प्रभावशाली ढंग से किया है, जो पाठक की चेतना वहुत गहराई से झकझोर जाती है। क्योंकि उपन्यासकार ने इस समस्या से जोडे विविध पहलुओं को उद्घाटित

किया है। समाज में प्रचलित लोक विश्वासों के अनुसार कुंभीपाक वह नरक है जहाँ व्यक्ति मानव जम्न में किए पापों का फल मृत्यु के बाद भोगता रहता है। लेकिन हमारे भद्र समाज की अँधेरी गलियों और घुटन भरे कोनों में चल रहे वेश्यालय, स्त्री के लिए जीते-जी कुंभीपाक (नरक) नहीं तो और क्या हो सकते हैं। इस उपन्यास में चित्रित इंदिरा (भुवन) भी कुंभीपाक में गोते खाने वाली अभागिन नारी है, जो समाज के घृणित व्यवहारों के कारण ही इस नरक में प्रवेश करती है। एक रिश्तेदार के द्वारा फुसलाने से वह चार महिने की गर्भावती हो जाती है। तब वही अत्याचारी रिश्तेदार उसे गर्भपात करवाने के बहाने आसनसोल गाँव ले जाता है और उसे धर्मशाला में छोड़कर रात में भाग जाता है। ऐसी असहाय और बेसहारा स्थिति में इंदिरा वहीं भीख माँगकर जीने लगती है। उसे देखकर एक गुण्डा उसे काम दिलवाने केवहाने अपने साथ लेकर धनवाद गाँव की भीख माँगनेवाली टोली में शामिल कर देता है। परंतु वहाँ उसे भीख माँगने नहीं भेजता, अपने और साथी के मनोरंजन और भोग विलास के लिए उस पर अत्याचार करने लगता है। सभी गुण्डे उसे बेहद परेशान करते रहते हैं। कभी शराब पीकर उसे पीटते हैं, तो कभी सभी मिलकर उस पर वलात्कार करते हैं। उस समय पर खाना भी नहीं देते। एक दिन तो उसकी ऐसी पिटाई करते हैं कि, जिसके काले नीले निशान उसकी पीठ पर उभर कर रह जाते हैं, कि जो जीवन भर याद दिलाते रहे। शर्मा जयनगर का रहने वाला था। उसने समाज की भूली भटकी अनाथ स्त्रियों के लिए अनाथ महिलाश्रम वनवाया था और इस आश्रम को श्संजीवन आश्रमश् नाम दिया था। आश्रम का यह उद्देश्य शर्मा की धनलोलुपता के कारण विकृत हो जाता है, वह ऐसी अनाथ महिलाओं को खोज-खोज कर लाता है और बुआ एवं तिलकधारी दास की सहायता से बेचता रहता है। कुछ धनिकों की शय्या सजाने के लिए उपयोग करते हुए पैसे कमाता है।

वुआ चम्पा, वही चम्पा है जो विधवा होने के बाद जीजा, सफदर खटिक, सिक्ख सरदार से गोते खाकर शर्मा के आश्रम में 'रिश्ते की बहन' बनकर नारी- विक्रय में साझेदार बनकर अश्राप, असहाय, वेसहारा युवतियों को वाम मार्ग पर बहकाने का कार्य करती है। वह जिस आश्रम में रहती है, वहाँ कुंती, मन्नो, मनोरमा, मीना, नेपालिन युवति आदि असहाय तथा मजदूर युवतियों को वेश्या बनाकर उनका विक्रय करने में सहायता करती है। बुआ' बनकर उनपर निगरानी रखती है। परंतु इंदिरा के कारण वह सचेत हो जाती है और शर्मा से घृणा करने लगती है। इंदिरा (भुवन) के साहस पर वह मन ही मन खुश हो जाती है।

''शावास भुवन, शाबास! उस खूसट को तुमने बडी सफाई से अँगूठा दिखा दिया, बलिहारी है! शर्मा जी खूब छके! बडे आये वांप और चाचा बनने वाले। ... इस बड्ढे के नाम में छल्ला डालकर, भुवन, तुमने अपनी ही नहीं, बल्कि सभी औरतों की नाक रख ली ... चली गयी, भुवन तुमने ठीक ही किया। मालदार तो मतलव का ही सौदा करता है... तुमसे तबियत भर जाती तो दूसरी का सौदा करता! पेट भरा हो और टेंट में काफी रकम हो तो हरी-हरी चरना चाहेगा... तुमने अच्छा किया भुवन! इस कुंभीपाक से निकल भागी, खूब किया![6]

चम्पा अपने आप को कोसते हुए कुछ करके दिखाने की सोचती है। वह कहती है,'आप पढे-लिखे लोग जव चुप्पी साधे हुए हैं, तो मुझ जैसी जाहिल औरत क्या सोचेगी? मर्द जो भी लीक खींच देते हैं, हमारे लिए वही वज्र लेख हो जाता है। हमारी अकल गौरैया की तरह फुदक सकती है, दूर की उडान नहीं भर सकती।'[7] स्त्रियों के लिए ऐसे नरक का निर्माण करने वाले दलालों पर और नारकीय जीवन पर व्यंग्य कसते हुए वह ऐसे शरीर-विक्रय और मनमुटाव की अपेक्षा श्रम करना पसंद करती है 'कुन्ती और चम्पा जैसी औरतें सड़क के किनारे फुटपाथ पर बैठकर पकोडे छानतीं, बड़े घरों में महाराजिन या आया का काम करतीं, अपनी पसंद के मुताविक किसी चपरासी या ड्राइवर या पुलिस वाले या किरानी के साथ रह जातीं. .. ।...तुम्हारे जैसे दलालों की जूतियाँ चूसने की अपेक्षा फिर भी वह जीवने कहीं बेहतर होता, कहीं ताजा।...'[8] ऐसी वैचैनी की अवस्था में वह शर्मा से दूर हो जाने का निर्णय लेती है। उसके नाम पर बैंक में पाँच हजार की रकम थी, उसमें से चार हजार शर्मा के खाते में भर देती है और अपना निर्णय शर्मा को स्पष्ट कह देती है, तब वे चम्पा पर झल्ला उठते हैं और कहते हैं 'तुम मुझे कहीं का न रखोगी। तुम मुझे बे आबरू कर देगी। मेरी नाक में कौडी किसी न नहीं बाँधी थी, वह श्रेय भी तुम्हीं को हासिल होगा चम्पा।'[9]

गुस्से में वह काँच का गिलास चम्पा पर फेंक देता है, जिससे चम्पा के माथे पर और दाहिनी कोहनी पर जख्म हो जाता है। इसी तरह कुछ दिन बीत जाते हैं। इस काल में वह आश्रम के टाइपराइटर पर हररोज घण्टा डेढ घण्टा टाइपिंग सीख लेती है, और एक दिन गाँधीवादी नेता रायसाहब की भेंट लेकर उनकी मदद से असहाय, बेबस और निराधार स्त्रियों को सहारा, प्रेम और शिक्षा देने के लिए 'शिल्प कुटीर' संस्था शुरू कर देती है। इस संदर्भ में रायसाहव से चर्चा करते हुए 'आश्रम' पर व्यंग्य कसती हुई कहती है - 'इस 'आश्रम' शब्द से में वहुत घबराती हूँ। रही होगी इसके पीछे कभी कोई अच्छी भावना, अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं... स्वार्थियों के अखाड़े! हमारी जैसी मूक असहाय बकरियों को ही नहीं, आप जैसे आदर्शवादी धर्मभीरु बैलों की भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढती आई है। अब वक्त आया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें...'[10] इंदिरा और चम्पा के जीवन को देखने पर यही स्पष्ट हो जाता है कि तिलकधारी दास जैसे प्रकाशक और वी.एन. शर्मा जैसे आत्महितरत नराधम समाज सेवक या घाघ व्यक्ति, कैसे अनेक अवोध, सरल, भाग्यहीन, और आर्थिक स्थिति से मजदूर युवतियों की असहाय स्थिति का लाभ उठाकर धन कमाते है

निष्कर्ष

नागार्जुन के उपन्यास भारतीय समाज की आर्थिक विषमता और शोषण की संरचना का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उन्होंने किसान, मजदूर, दलित और स्त्री वर्ग की आर्थिक समस्याओं को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। उनके उपन्यासों में सामंती और पूँजीवादी शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध दिखाई देता है। नागार्जुन का साहित्य केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करता, बल्कि समाधान की दिशा भी प्रस्तुत करता है। वे संगठन, संघर्ष, और आत्मनिर्भरता को परिवर्तन का आधार मानते हैं। उनके पात्र शोषण के विरुद्ध विद्रोह करते हैं और सामाजिक न्याय की स्थापना का स्वप्न देखते हैं। इस प्रकार नागार्जुन के उपन्यास आर्थिक विषमता, जनवाद और मानवतावादी मूल्यों के महत्त्वपूर्ण वाहक सिद्ध होते हैं।

संदर्भ सूची

1 बाबा बटेसरनाथ, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, 1954, पृ.सं. 152
2 बलचनमा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन 1952, पृ.सं. 121
3 बलचनमा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन 1952, पृ. सं. 112
4 बलचनमा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन 1952, पृ.सं. 162
5 बलचनमा, नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन 1952, पृ.सं. 166
6 कुंभीपाक, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन 1952, पृ.सं. 70
7 कुंभीपाक, नागार्जुन, प्रकाशन 1960, पृ.सं. 84
8 कुंभीपाक, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 86
9 कुंभीपाक, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 113
10 कुंभीपाक, नागार्जुन, वाणी प्रकाशन, पृ.सं. 115

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

21वीं सदी की हिंदी कविता में नारी का चित्रण : वैश्विक परिदृश्य में क्षेत्रीय पहचान के संघर्ष का अध्ययन

गायकवाड आम्रपाल बाबाराव
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापटनम,
मोबाईल : 9908839074
आचार्य नल्ला सत्यनारायण
हिन्दी विभाग अध्यक्ष, आंध्र विश्वविद्यालय
विशाखापटनम, मोबाईल : 9441070226
ई-मेल : nsnhindi@gmail.com

इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य भारतीय समाज, संस्कृति और वैश्विक परिवर्तनों का जीवंत दस्तावेज है। इस कालखंड में हिंदी कविता ने न केवल सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दी है, बल्कि उन आवाज़ों को भी केंद्र में स्थापित किया है जो लंबे समय तक साहित्यिक विमर्श के हाशिए पर रही थीं। इनमें नारी विमर्श सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज की हिंदी कविता में नारी केवल करुणा, त्याग और ममता की प्रतीक नहीं रह गई है, बल्कि वह संघर्षशील, आत्मनिर्भर, अधिकार-सचेत और अपनी अस्मिता के प्रति सजग व्यक्तित्व के रूप में सामने आई है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, तकनीकी क्रांति और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के इस दौर में नारी के जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं। एक ओर उसे शिक्षा, रोजगार और सामाजिक भागीदारी के नए अवसर प्राप्त हुए हैं, तो दूसरी ओर उसकी क्षेत्रीय, भाषाई और सांस्कृतिक पहचान पर नए प्रकार के संकट भी उत्पन्न हुए हैं। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता इसी द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशीलता और वैचारिक गहराई के साथ व्यक्त करती है।

वैश्वीकरण ने संसार को एक साझा मंच प्रदान किया है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियाँ, भाषाएँ और परंपराएँ परस्पर संपर्क में आई हैं। इसके परिणामस्वरूप नारी के अनुभवों में भी व्यापक परिवर्तन दिखाई देते हैं। आधुनिक हिंदी कवयित्रियाँ और कवि नारी को केवल घरेलू परिवेश तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे वैश्विक नागरिक के रूप में चित्रित करते हैं। वह अब सूचना-प्रौद्योगिकी, शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभा रही है। किंतु इसी प्रक्रिया में उसकी स्थानीय संस्कृति, मातृभाषा, लोक परंपराएँ और क्षेत्रीय अस्मिता निरंतर चुनौती का सामना कर रही हैं। हिंदी कविता इस विरोधाभास को गहन संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करती है। कविता में नारी के माध्यम से यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या विकास और आधुनिकता की कीमत पर सांस्कृतिक पहचान का त्याग उचित है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में नारी की छवि बहुआयामी रूप में उभरती है। वह गाँव की श्रमिक महिला भी है, महानगर की नौकरीपेशा स्त्री भी; वह आदिवासी समाज की प्रतिनिधि है, तो डिजिटल युग की स्वतंत्र युवती भी। इस बहुलतावादी चित्रण में क्षेत्रीय पहचान का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। अनेक कविताओं में नारी अपने क्षेत्र, भाषा,

संस्कृति और परंपराओं को बचाने के संघर्ष में दिखाई देती है। यह संघर्ष केवल सांस्कृतिक नहीं, बल्कि अस्तित्वगत भी है। जब कोई स्त्री अपने गाँव से शहर की ओर पलायन करती है, तब वह केवल भौगोलिक स्थान नहीं बदलती, बल्कि उसकी स्मृतियाँ, लोकगीत, रीति-रिवाज और सांस्कृतिक चेतना भी प्रभावित होती हैं। हिंदी कविता इस अनुभव को अत्यंत मार्मिकता से अभिव्यक्त करती है।

समकालीन कवयित्रियों जैसे अनामिका, कात्यायनी, गगन गिल, सविता सिंह, निर्मला पुतुल, वंदना राग तथा अन्य रचनाकारों ने नारी के विविध अनुभवों को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। इन कविताओं में स्त्री अपने अस्तित्व और पहचान के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से संघर्ष करती है, सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करती है और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव बनाए रखने का प्रयास करती है। विशेष रूप से आदिवासी और ग्रामीण स्त्रियों पर लिखी गई कविताएँ क्षेत्रीय पहचान के प्रश्न को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इन कविताओं में विकास परियोजनाओं, औद्योगीकरण और बाज़ारवाद के कारण विस्थापित होती स्त्रियों की पीड़ा व्यक्त हुई है।

वैश्विक परिदृश्य में क्षेत्रीय पहचान का संघर्ष केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं है। यह भाषा, संस्कृति, स्मृति और जीवन-शैली से भी जुड़ा हुआ है। हिंदी कविता में नारी अक्सर अपनी मातृभाषा और लोक संस्कृति की संरक्षिका के रूप में चित्रित होती है। वह लोकगीतों, लोककथाओं और पारंपरिक ज्ञान की संवाहक है। जब वैश्वीकरण के प्रभाव से स्थानीय संस्कृतियाँ कमजोर होती हैं, तब सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ता है क्योंकि वे ही पारिवारिक और सांस्कृतिक परंपराओं की प्रमुख वाहक होती हैं। समकालीन कविताओं में यह चिंता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि आधुनिकता की दौड़ में कहीं सांस्कृतिक विविधता और क्षेत्रीय अस्मिता नष्ट न हो जाए।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में नारी का चित्रण सामाजिक न्याय और समानता के प्रश्नों से भी जुड़ा हुआ है। स्त्री अब केवल भावनात्मक विषय नहीं, बल्कि राजनीतिक और वैचारिक विमर्श का केंद्र बन गई है। कविता में वह अपने अधिकारों, स्वतंत्रता और सम्मान की मांग करती है। यह मांग केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक भी है। वह अपने समुदाय, क्षेत्र और संस्कृति के अधिकारों की भी बात करती है। विशेष रूप से दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक स्त्रियों की कविताओं में यह स्वर अधिक मुखर होकर सामने आता है। इन रचनाओं में स्त्री दोहरे या तिहरे शोषण का सामना करती है—एक ओर वह स्त्री होने के कारण भेदभाव झेलती है, दूसरी ओर जाति, वर्ग या क्षेत्रीय पहचान के कारण भी संघर्ष करती है। समकालीन हिंदी कविता में नारी के अनुभवों का वैश्विक संदर्भ भी महत्वपूर्ण है। आज भारतीय स्त्री विश्व स्तर पर विभिन्न आंदोलनों और विमर्शों से जुड़ी हुई है। महिला अधिकार, लैंगिक समानता, पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे उसकी चिंताओं का हिस्सा बन चुके हैं। हिंदी कविता इन वैश्विक सरोकारों को स्थानीय अनुभवों से जोड़ती है। परिणामस्वरूप एक ऐसा काव्य संसार निर्मित होता है जिसमें स्थानीय और वैश्विक दोनों स्तरों की चेतनाएँ एक साथ उपस्थित रहती हैं। यह विशेषता इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता को नई पहचान प्रदान करती है।

नारी के क्षेत्रीय संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पक्ष विस्थापन है। आर्थिक विकास और शहरीकरण के कारण बड़ी संख्या में महिलाएँ अपने मूल निवास स्थानों से दूर जाने के लिए विवश हुई हैं। यह विस्थापन केवल भौतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है। कविता में ऐसी स्त्रियाँ अपने गाँव, खेत, नदी, जंगल और लोकजीवन की स्मृतियों को संजोए हुए दिखाई देती हैं। वे महानगरीय जीवन में रहते हुए भी अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने का प्रयास करती हैं। उनकी यह स्थिति आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करती है। एक ओर वे आधुनिक अवसरों का लाभ उठाना चाहती हैं, दूसरी ओर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटना नहीं चाहतीं। आदिवासी स्त्री-कविता इस संदर्भ में विशेष महत्व रखती है।

निर्मला पुतुल जैसी कवयित्रियों ने आदिवासी महिलाओं के जीवन, संघर्ष और सांस्कृतिक अस्मिता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उनकी कविताओं में जंगल, पहाड़, नदी और प्रकृति केवल प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि पहचान और अस्तित्व के प्रतीक हैं। जब विकास के नाम पर इन संसाधनों का दोहन होता है, तब सबसे अधिक प्रभावित आदिवासी महिलाएँ होती हैं। कविता में उनका संघर्ष केवल जीविका का संघर्ष नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक विरासत को

बचाने का संघर्ष भी है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में नारी का चित्रण पर्यावरणीय चेतना से भी जुड़ा हुआ है। स्त्री और प्रकृति के संबंध को अनेक कविताओं में विशेष महत्व दिया गया है। पर्यावरण विनाश और सांस्कृतिक क्षरण को परस्पर संबद्ध समस्याओं के रूप में देखा गया है। क्षेत्रीय पहचान का आधार केवल भाषा और संस्कृति नहीं, बल्कि स्थानीय पर्यावरण भी होता है। जब नदियाँ प्रदूषित होती हैं, जंगल नष्ट होते हैं और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन होता है, तब क्षेत्रीय संस्कृति भी प्रभावित होती है। कविता में स्त्री इन परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील प्रहरी के रूप में दिखाई देती है।

डिजिटल युग में नारी की पहचान के नए आयाम भी सामने आए हैं। सोशल मीडिया और इंटरनेट ने स्त्रियों को अपनी बात रखने का मंच प्रदान किया है। इससे उनकी अभिव्यक्ति के नए अवसर विकसित हुए हैं। लेकिन साथ ही सांस्कृतिक समरूपीकरण का खतरा भी बढ़ा है। वैश्विक मीडिया अनेक बार स्थानीय संस्कृतियों और भाषाओं को हाशिए पर धकेल देता है। हिंदी कविता में यह चिंता स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है कि आधुनिक तकनीक का उपयोग करते हुए भी अपनी क्षेत्रीय पहचान और सांस्कृतिक विविधता को कैसे सुरक्षित रखा जाए। समकालीन कविताओं में नारी की आत्मचेतना अत्यंत सशक्त रूप में उभरती है। वह स्वयं को किसी की परिभाषा के अनुसार नहीं, बल्कि अपनी शर्तों पर पहचानना चाहती है। यह आत्मचेतना उसे अपने क्षेत्र, समाज और संस्कृति के प्रति भी जागरूक बनाती है। वह समझती है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अस्मिता परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। इसलिए कविता में नारी एक ऐसी शक्ति के रूप में सामने आती है जो आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता का एक महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उसने नारी के अनुभवों की विविधता को स्वीकार किया है। अब स्त्री कोई एकरूप इकाई नहीं है। उसकी पहचान जाति, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, धर्म और संस्कृति जैसे अनेक कारकों से निर्मित होती है। इस बहुलता को समझे बिना नारी के संघर्ष को नहीं समझा जा सकता। समकालीन कवि और कवयित्रियाँ इस जटिलता को संवेदनशीलता और गहराई के साथ अभिव्यक्त करते हैं। उनकी कविताएँ यह दर्शाती हैं कि वैश्वीकरण के दौर में क्षेत्रीय पहचान का संघर्ष केवल अतीत को बचाने का प्रयास नहीं, बल्कि भविष्य को अधिक न्यायपूर्ण और बहुलतावादी बनाने की प्रक्रिया भी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता में नारी का चित्रण अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और यथार्थपरक रूप में सामने आया है। वह केवल परिवार और समाज की परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि अपने अधिकारों, अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान के लिए संघर्षरत एक सशक्त व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। वैश्विक परिदृश्य में क्षेत्रीय पहचान का संघर्ष उसकी चेतना का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। हिंदी कविता ने इस संघर्ष को केवल समस्या के रूप में नहीं, बल्कि रचनात्मक प्रतिरोध और सांस्कृतिक पुनर्सृजन की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया है। आधुनिकता, वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के बीच नारी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहने का प्रयास करती है और यही प्रयास समकालीन हिंदी कविता को गहन मानवीय संवेदना, सामाजिक प्रतिबद्धता और सांस्कृतिक प्रासंगिकता प्रदान करता है। इस प्रकार इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता नारी के माध्यम से वैश्विक और स्थानीय, आधुनिक और पारंपरिक, व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान के जटिल संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज सिद्ध होती है।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

प्रकाश मनु के बाल साहित्य का मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

बोड्डू रामबाबू
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
आंध्र विश्वविध्यालय, विशाखापटनम,
मोबाईल : 8185811161
आचार्य नल्ला सत्यनारायण
हिन्दी विभाग आद्यक्ष, आंध्र विश्वविध्यालय
विशाखापटनम, मोबाईल रू9441070226
ई-मेल : nsnhindi@gmail.com

बाल साहित्य किसी भी समाज की सांस्कृतिक चेतना, नैतिक मूल्यों और भावी पीढ़ी के निर्माण का महत्वपूर्ण माध्यम होता है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि बालकों के व्यक्तित्व, संवेदनशीलता, कल्पनाशक्ति और सामाजिक दृष्टिकोण के विकास का प्रभावशाली उपकरण भी है। हिन्दी बाल साहित्य की समृद्ध परंपरा में अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी जिज्ञासाओं, भावनाओं और सांस्कृतिक परिवेश को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इन रचनाकारों में प्रकाश मनु का नाम अत्यंत सम्मान और आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने बाल साहित्य को केवल उपदेशात्मक स्वरूप तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे बालकों के वास्तविक अनुभवों, संवेदनाओं और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से जोड़कर एक नई दिशा प्रदान की। उनके साहित्य में बालमन की सहजता, कल्पना, जिज्ञासा, उत्सुकता, नैतिकता और सांस्कृतिक चेतना का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

प्रकाश मनु हिन्दी बाल साहित्य के ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने बच्चों की दुनिया को भीतर से समझने का प्रयास किया। उनकी रचनाएँ बालकों के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं, उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं, सपनों और संघर्षों को अत्यंत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करती हैं। वे बच्चों को केवल शिक्षा देने के उद्देश्य से नहीं लिखते, बल्कि उनकी मानसिक दुनिया में प्रवेश करके उनकी दृष्टि से संसार को देखने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि उनके साहित्य में बालमन की वास्तविक अभिव्यक्ति मिलती है। उनकी कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ और अन्य रचनाएँ बच्चों के मनोविज्ञान को गहराई से समझने का अवसर प्रदान करती हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो प्रकाश मनु का बाल साहित्य बालकों की जिज्ञासु प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। बालक स्वभावतः प्रश्न पूछने वाला प्राणी होता है। वह अपने आसपास की दुनिया को जानना और समझना चाहता है। प्रकाश मनु अपनी रचनाओं में बच्चों के इसी स्वभाव को प्रमुखता देते हैं। उनके पात्र नई-नई बातें जानने की इच्छा रखते हैं, समस्याओं का समाधान खोजते हैं और अपने अनुभवों से सीखते हैं। यह प्रक्रिया बच्चों में तार्किक सोच और आत्मविश्वास का विकास करती है। उनकी रचनाओं में बालक निष्क्रिय श्रोता नहीं, बल्कि सक्रिय सहभागी के रूप में उपस्थित होता है।

इससे पाठक बालक स्वयं को कहानी का हिस्सा महसूस करता है और उसके साथ भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है।

प्रकाश मनु के बाल साहित्य का एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष बच्चों की कल्पनाशक्ति का विकास है। बाल्यावस्था कल्पनाओं का संसार होती है। बच्चे अपने आसपास की वस्तुओं, घटनाओं और व्यक्तियों के बारे में नई-नई कल्पनाएँ करते हैं। प्रकाश मनु ने इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को अपनी रचनाओं में अत्यंत सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों में कल्पना और यथार्थ का संतुलित समन्वय मिलता है। वे बच्चों को कल्पनाओं की उड़ान भरने का अवसर देते हैं, लेकिन साथ ही उन्हें वास्तविक जीवन की चुनौतियों और मूल्यों से भी परिचित कराते हैं। इससे बालकों में सृजनात्मकता और नवोन्मेषी सोच का विकास होता है। भावनात्मक विकास की दृष्टि से भी प्रकाश मनु का साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। बालक का व्यक्तित्व केवल बौद्धिक विकास से नहीं बनता, बल्कि उसकी भावनात्मक परिपक्वता भी उतनी ही आवश्यक होती है। उनकी रचनाओं में प्रेम, करुणा, मित्रता, सहयोग, सहानुभूति और संवेदनशीलता जैसे भावों का सुंदर चित्रण मिलता है। उनके पात्र दूसरों के दुःख को समझते हैं, सहायता करते हैं और सामाजिक संबंधों का महत्व पहचानते हैं। इस प्रकार उनकी रचनाएँ बच्चों में सकारात्मक भावनाओं का विकास करती हैं और उन्हें संवेदनशील नागरिक बनने की प्रेरणा देती हैं।

प्रकाश मनु के साहित्य में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का संदेश भी प्रमुख रूप से दिखाई देता है। उनकी कहानियों के बाल पात्र कठिन परिस्थितियों का सामना करते हैं और अपने प्रयासों से सफलता प्राप्त करते हैं। वे चुनौतियों से घबराते नहीं, बल्कि उनका समाधान खोजने का प्रयास करते हैं। यह प्रवृत्ति बच्चों में आत्मबल और संघर्षशीलता का विकास करती है। आधुनिक समय में जब बच्चों पर प्रतिस्पर्धा और प्रदर्शन का दबाव बढ़ रहा है, तब ऐसे साहित्य की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है जो उनमें आत्मविश्वास और सकारात्मक सोच का विकास कर सके। उनकी रचनाओं में हास्य और मनोरंजन का तत्व भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। बाल साहित्य यदि केवल उपदेशों से भरा हो तो वह बच्चों को आकर्षित नहीं कर सकता। प्रकाश मनु ने मनोरंजन को शिक्षा का माध्यम बनाया है। उनकी कहानियों में हास्यपूर्ण घटनाएँ, रोचक संवाद और जीवंत पात्र बच्चों को आनंद प्रदान करते हैं। मनोरंजन के माध्यम से प्रस्तुत संदेश बच्चों के मन पर अधिक प्रभाव छोड़ते हैं। इस प्रकार उनका साहित्य शिक्षा और मनोरंजन के संतुलित समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से प्रकाश मनु का बाल साहित्य भारतीय समाज की समृद्ध परंपराओं और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय संस्कृति में परिवार, समाज, प्रकृति और मानवीय संबंधों को विशेष महत्व दिया गया है। उनकी रचनाओं में इन सभी तत्वों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे बच्चों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का प्रयास करते हैं। उनके साहित्य में भारतीय जीवन-मूल्य, लोकपरंपराएँ, त्यौहार, रीति-रिवाज और सामाजिक संबंधों का सजीव चित्रण मिलता है। प्रकाश मनु ने अपनी रचनाओं में पारिवारिक संबंधों को विशेष महत्व दिया है। भारतीय संस्कृति में परिवार को व्यक्ति के प्रथम विद्यालय के रूप में माना जाता है। उनकी कहानियों में माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन और अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ बच्चों के संबंधों का मार्मिक चित्रण मिलता है। ये संबंध बच्चों में प्रेम, सम्मान, सहयोग और जिम्मेदारी की भावना विकसित करते हैं। आधुनिक समय में संयुक्त परिवारों के विघटन और सामाजिक परिवर्तनों के बीच उनका साहित्य पारिवारिक मूल्यों के संरक्षण का महत्वपूर्ण कार्य करता है।

उनकी रचनाओं में भारतीय लोकसंस्कृति का भी सुंदर चित्रण मिलता है। लोककथाएँ, लोकविश्वास, लोकगीत और ग्रामीण जीवन की झलकियाँ उनके साहित्य को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाती हैं। वे बच्चों को भारतीय समाज की विविध सांस्कृतिक परंपराओं से परिचित कराते हैं। इससे बच्चों में अपनी संस्कृति के प्रति गर्व और आत्मीयता की भावना विकसित होती है। वैश्वीकरण के दौर में जब विदेशी सांस्कृतिक प्रभाव तेजी से बढ़ रहे हैं, तब प्रकाश मनु का साहित्य सांस्कृतिक संरक्षण और संवर्धन का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है। प्रकृति के प्रति प्रेम और पर्यावरणीय चेतना भी उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को पूजनीय माना गया है। उनकी कहानियों और कविताओं में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदियाँ और प्राकृतिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे बच्चों को प्रकृति के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं। यह दृष्टिकोण आज के पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। उनके साहित्य

के माध्यम से बच्चों में पर्यावरण संरक्षण की भावना विकसित होती है और वे प्रकृति के महत्व को समझने लगते हैं।

प्रकाश मनु के बाल साहित्य में नैतिक मूल्यों का भी विशेष स्थान है। सत्य, ईमानदारी, परिश्रम, सहिष्णुता और मानवता जैसे मूल्यों को उन्होंने सहज और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाएँ बच्चों को नैतिक शिक्षा देने का प्रयास अवश्य करती हैं, किंतु यह शिक्षा प्रत्यक्ष उपदेश के रूप में नहीं आती। उनके पात्रों के अनुभवों और घटनाओं के माध्यम से मूल्य स्वतः उभरकर सामने आते हैं। इससे बच्चे उन मूल्यों को सहज रूप से ग्रहण कर लेते हैं। यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान भी प्रकाश मनु के साहित्य का महत्वपूर्ण पक्ष है। भारत विविध भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों का देश है। उनकी रचनाएँ इस विविधता को स्वीकार करने और उसका सम्मान करने की प्रेरणा देती हैं। वे बच्चों में सहिष्णुता, समावेशिता और सामाजिक सद्भाव की भावना विकसित करते हैं। इस प्रकार उनका साहित्य राष्ट्रीय एकता और सामाजिक समरसता को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

प्रकाश मनु की भाषा-शैली भी उनके बाल साहित्य की विशिष्ट पहचान है। उन्होंने सरल, सहज और संवादात्मक भाषा का प्रयोग किया है जो बच्चों की समझ और रुचि के अनुकूल है। उनकी भाषा में कृत्रिमता नहीं है, बल्कि जीवन की स्वाभाविकता और आत्मीयता है। वे कठिन विचारों को भी सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ बच्चों के साथ-साथ बड़ों को भी आकर्षित करती हैं। बाल साहित्य के क्षेत्र में प्रकाश मनु का योगदान केवल रचनात्मक लेखन तक सीमित नहीं है। उन्होंने बाल साहित्य की आलोचना, इतिहास और विकास संबंधी चिंतन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने बाल साहित्य को गंभीर साहित्यिक विमर्श का विषय बनाने का प्रयास किया। उनके विचारों में बाल साहित्य को राष्ट्र निर्माण और मानवीय विकास के महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा गया है। यह दृष्टिकोण उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को और अधिक व्यापक बनाता है।

आज का समय तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और सामाजिक परिवर्तन का समय है। बच्चों की रुचियाँ, जीवनशैली और अनुभव तेजी से बदल रहे हैं। ऐसे समय में प्रकाश मनु का बाल साहित्य बच्चों को मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक चेतना और भावनात्मक संवेदनशीलता से जोड़ने का कार्य करता है। उनकी रचनाएँ आधुनिकता और परंपरा के बीच संतुलन स्थापित करती हैं। वे बच्चों को नई दुनिया के प्रति खुला दृष्टिकोण अपनाने के साथ-साथ अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने की प्रेरणा देती हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि प्रकाश मनु का बाल साहित्य मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध और महत्वपूर्ण है। उनके साहित्य में बालमन की गहरी समझ, भावनात्मक संवेदनशीलता, कल्पनाशीलता, नैतिक चेतना और सांस्कृतिक मूल्य एक साथ दिखाई देते हैं। उन्होंने बच्चों की दुनिया को गंभीरता से समझते हुए ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो मनोरंजन के साथ-साथ व्यक्तित्व निर्माण का कार्य भी करती हैं। उनकी रचनाएँ बच्चों को संवेदनशील, आत्मविश्वासी, सृजनशील और सांस्कृतिक रूप से जागरूक नागरिक बनने की प्रेरणा देती हैं। इस दृष्टि से प्रकाश मनु का बाल साहित्य हिन्दी बाल साहित्य की अमूल्य धरोहर है, जो वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए समान रूप से प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध होता है।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

इक्कीसवीं सदी में भारत–अमेरिका संबंधों का अध्ययन

Dr. Suvendra Singh

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी के आरंभ से ही भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच का संबंध शीतयुद्ध-कालीन उदासीनता और संदेह से निकलकर एक व्यापक वैश्विक रणनीतिक साझेदारी (Comprehensive Global Strategic Partnership) में परिवर्तित हो गया है। दोनों देशों के बीच यह संबंध लोकतांत्रिक मूल्यों, कानून के शासन और नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति साझी प्रतिबद्धता पर आधारित माना जाता है (Drishti IAS, 2025)। अमेरिकी विदेश नीति प्रतिष्ठान में भारत को "इक्कीसवीं सदी की निर्णायक साझेदारी" के रूप में बार-बार वर्णित किया गया है – यह वाक्यांश पहली बार राष्ट्रपति बराक ओबामा द्वारा 2010 में इस्तेमाल किया गया था और बाद में राष्ट्रपति जो बाइडन तथा विदेश मंत्री मार्को रुबियो जैसे नेताओं ने भी इसी भाव को दोहराया (ICWA, 2018; द प्रिंट हिंदी, 2025)। यह शोध-पत्र इक्कीसवीं सदी में भारत-अमेरिका संबंधों के ऐतिहासिक विकास, रणनीतिक एवं रक्षा सहयोग, आर्थिक-व्यापारिक आयाम, प्रौद्योगिकी साझेदारी, हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सहयोग, प्रवासी भारतीयों की भूमिका तथा वर्तमान चुनौतियों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत और अमेरिका के बीच राजनयिक संबंधों की स्थापना 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ ही हुई थी, परंतु शीतयुद्ध के दौरान भारत की गुटनिरपेक्ष नीति और अमेरिका के पाकिस्तान-समर्थित रुख के कारण दोनों देशों के संबंध अधिकांश समय तनावपूर्ण और संदेहपूर्ण बने रहे (Wikipedia, 2026)। 1991 में सोवियत संघ के विघटन और भारत में आर्थिक उदारीकरण के पश्चात संबंधों में सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई। वर्ष 2000 में राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की भारत यात्रा को इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है, क्योंकि यह दो दशकों से अधिक समय के बाद किसी अमेरिकी राष्ट्रपति की पहली भारत यात्रा थी (Drishti IAS, 2024)। इसके पश्चात 2004 में "रणनीतिक साझेदारी में अगले चरण" (Next Steps in Strategic Partnership – NSSP) पर हस्ताक्षर हुए, जिससे उच्च-प्रौद्योगिकी सहयोग की दिशा खुली। वर्ष 2005 में अमेरिका ने भारत को "वैश्विक शक्ति" के रूप में मान्यता देते हुए दस-वर्षीय रक्षा फ्रेमवर्क पर हस्ताक्षर किए, और 2008 में भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता (123 Agreement) संपन्न हुआ, जिसने परमाणु अप्रसार व्यवस्था से भारत के दीर्घकालिक अलगाव को प्रभावी रूप से समाप्त कर दिया (PWOnlyIAS, 2024)। 2010 में पहली भारत-अमेरिका रणनीतिक वार्ता आयोजित हुई, जिसमें विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन ने भारत को "अपरिहार्य साझेदार" बताया और राष्ट्रपति ओबामा ने इस संबंध को "इक्कीसवीं सदी की निर्णायक साझेदारी" कहा (Council on Foreign Relations, 2025)। इस तरह 1991 से 2008 तक का काल संबंधों के "पुनर्निर्माण" का चरण रहा, जबकि 2008 के बाद का काल संस्थागत रणनीतिक साझेदारी के विस्तार का चरण माना जा सकता है (Legacy IAS Academy, 2026)।

रणनीतिक एवं रक्षा सहयोग

इक्कीसवीं सदी में भारत-अमेरिका संबंधों का सबसे उल्लेखनीय आयाम रक्षा एवं सामरिक सहयोग का अभूतपूर्व विस्तार है। 2016 में अमेरिकी कांग्रेस ने भारत को "प्रमुख रक्षा साझेदार" (Major Defense Partner) का विशिष्ट दर्जा प्रदान किया, जो द्विपक्षीय रक्षा एवं सुरक्षा सहयोग को सुगम बनाने हेतु एक विशेष श्रेणी है (Congress-gov CRS Report R47597, 2026)। इस सहयोग को संस्थागत रूप देने के लिए तीन "आधारभूत समझौते" संपन्न हुए – रसद विनिमय समझौता (LEMOA, 2016), संचार एवं सूचना सुरक्षा स्मृति समझौता (COMCASA, 2018), तथा आधारभूत विनिमय एवं सहयोग समझौता (ठम्ब।, 2020) – जिनसे दोनों सेनाओं के बीच अंतर-संक्रियता (interoperability) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 2018 से प्रत्येक वर्ष "2+2 मंत्रिस्तरीय वार्ता" आयोजित की जा रही है, जिसमें दोनों देशों के विदेश और रक्षा मंत्री भाग लेते हैं (Testbook UPSC, 2026)। अक्टूबर 2025 में दोनों देशों ने एक नए दस-वर्षीय रक्षा फ्रेमवर्क समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसे अमेरिकी रक्षा विभाग ने "अब तक का सबसे महत्वाकांक्षी और व्यापक दस्तावेज़" बताया, जो भू, समुद्र, वायु, अंतरिक्ष और साइबर – सभी क्षेत्रों में अंतर-संक्रियता को मजबूत करने पर केंद्रित है (Congress-gov CRS Report R47597, 2026)। फरवरी 2025 में राष्ट्रपति ट्रंप और प्रधानमंत्री मोदी की वाशिंगटन वार्ता में "21वीं सदी के लिए अमेरिका-भारत कॉम्पैक्ट" (COMPACT – Catalyzing Opportunities for Military Partnership, Accelerated Commerce and Technology) नामक नई पहल का शुभारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य रक्षा औद्योगिक सहयोग, सह-उत्पादन और स्वायत्त प्रणालियों के क्षेत्र में साझेदारी को गहरा करना है (Drishti IAS, 2025, Indian Embassy USA, 2025)। इसके साथ ही "स्वायत्त प्रणाली औद्योगिक गठबंधन" (Autonomous Systems Industry Alliance – ASIA) का गठन भी किया गया।

आर्थिक एवं व्यापारिक संबंध

आर्थिक संबंध भारत-अमेरिका साझेदारी की एक अन्य आधारशिला है। 2024 में द्विपक्षीय वस्तु व्यापार लगभग 129. 2 अरब डॉलर तक पहुंच गया, जिससे अमेरिका भारत के सबसे बड़े व्यापारिक साझेदारों में से एक बन गया (Morgan Lewis, 2026)। फरवरी 2025 में दोनों देशों ने द्विपक्षीय व्यापार समझौते (Bilateral Trade Agreement – BTA) पर वार्ता आरंभ की और "मिशन-500" नामक लक्ष्य घोषित किया, जिसके अंतर्गत 2030 तक द्विपक्षीय व्यापार को 500 अरब डॉलर तक बढ़ाने का इरादा व्यक्त किया गया (Indian Embassy USA, 2025, ORF हिंदी, 2025)। हालांकि 2025 में अमेरिका द्वारा "रेसिप्रोकल टैरिफ" नीति के अंतर्गत भारतीय निर्यात पर शुल्क बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक कर दिया गया, जिसका एक प्रमुख कारण रूस से भारत द्वारा किया जा रहा कच्चे तेल का आयात बताया गया (India Briefing, 2026)। इस टैरिफ-विवाद से वस्त्र, रत्न-आभूषण जैसे क्षेत्रों के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और भारत की आर्थिक वृद्धि दर पर भी असर का आकलन किया गया (International Centre for Peace Studies, 2025)। फरवरी 2026 में दोनों पक्षों ने एक "अंतरिम व्यापार समझौते" के ढांचे की घोषणा की, जिसके अंतर्गत अमेरिका ने भारत पर लगाए गए अतिरिक्त शुल्क को घटाकर 25 से 18 प्रतिशत करने का निर्णय लिया, और भारत ने अमेरिकी ऊर्जा उत्पादों, विमान कलपुर्जों, प्रौद्योगिकी उत्पादों तथा कोकिंग कोल की अगले पांच वर्षों में लगभग 500 अरब डॉलर की खरीद का इरादा जताया (व्हाइट हाउस, 2026)। हालांकि अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फरवरी 2026 में "रेसिप्रोकल टैरिफ" को अवैध घोषित करने के बाद स्थिति में फिर अनिश्चितता आई, और जून 2026 तक भी दोनों पक्ष अंतरिम समझौते को अंतिम रूप देने हेतु वार्ता कर रहे थे (Business Standard, 2026; ESCAP, 2026)। यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक संबंध एक साथ अवसर और घर्षण दोनों के स्रोत बने हुए हैं।

प्रौद्योगिकी एवं नवाचार सहयोग : इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक से प्रौद्योगिकी सहयोग भारत-अमेरिका संबंधों

की आधारशिला के रूप में उभरा है (Drishti IAS, 2024)। 2023 में "क्रांतिक एवं उभरती प्रौद्योगिकियों पर पहल" (Initiative on Critical and Emerging Technologies – iCET) की शुरुआत हुई, जिसके अंतर्गत कृत्रिम बुद्धिमत्ता, अर्धचालक (semiconductors), क्वांटम कंप्यूटिंग और रक्षा-प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में सहयोग को संस्थागत रूप दिया गया (Council on Foreign Relations, 2025)। 2025 में इसी पहल को "TRUST" (Transforming the Relationship Utilizing Strategic Technology) के रूप में पुनःब्रांडेड किया गया, जिसमें महत्वपूर्ण खनिज आपूर्ति श्रृंखलाओं, लिथियम तथा दुर्लभ मृदा तत्वों की पुनर्प्राप्ति परियोजनाओं को भी शामिल किया गया (Drishti IAS, 2025)। रक्षा-नवाचार क्षेत्र में भारत-अमेरिका INDUS-X मंच ने स्टार्टअप-स्तरीय सहयोग को बढ़ावा दिया है। अमेरिका ने भारत के अर्धचालक उद्योग में लगभग 825 मिलियन डॉलर के निवेश की प्रतिबद्धता जताई, जबकि एक भारतीय कंपनी ने अमेरिका में सौर ऊर्जा क्षेत्र में 1.5 अरब डॉलर तक निवेश का वायदा किया (Council on Foreign Relations, 2025)। अंतरिक्ष क्षेत्र में भी सहयोग बढ़ा है – नासा और इसरो के संयुक्त प्रयासों के अंतर्गत 2025 को "अमेरिका-भारत नागरिक अंतरिक्ष सहयोग के अग्रणी वर्ष" के रूप में चिह्नित किया गया (Sanskriti IAS, 2025)। इसके अतिरिक्त अप्रैल 2021 में शुरू हुई "भारत-अमेरिका जलवायु एवं स्वच्छ ऊर्जा एजेंडा 2030 साझेदारी" के अंतर्गत रणनीतिक स्वच्छ ऊर्जा साझेदारी (SCEP) और जलवायु कार्रवाई एवं वित्त जुटाने संबंधी वार्ता (CAFMD) जैसी पहलें सक्रिय हैं (Sanskriti IAS, 2025)।

हिंद-प्रशांत क्षेत्र, क्वाड और क्षेत्रीय सहयोग

चीन की बढ़ती मुखरता के सामरिक संदर्भ में भारत-अमेरिका सहयोग का एक प्रमुख स्तंभ "स्वतंत्र, मुक्त एवं समावेशी हिंद-प्रशांत" की अवधारणा है। चतुर्भुज सुरक्षा वार्ता (Quadrilateral Security Dialogue – क्वाड), जिसमें भारत, अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं, इस सहयोग का प्रमुख मंच बन गई है। 2021 में बाइडन प्रशासन ने क्वाड का पहला प्रत्यक्ष नेताओं का शिखर सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें एक अरब से अधिक कोविड-19 टीकों के वैश्विक वितरण तथा कम-कार्बन शिपिंग नेटवर्क के निर्माण पर सहयोग करने का निर्णय लिया गया (Council on Foreign Relations, 2025)। भारत "हिंद-प्रशांत आर्थिक संरचना" (Indo-Pacific Economic Framework – IPEF) में भागीदार बारह देशों में से एक है (Drishti IAS)। इसके अतिरिक्त 2021 में स्थापित "I2U2" समूह – जिसमें भारत, इज़राइल, संयुक्त अरब अमीरात और अमेरिका शामिल हैं – खाद्य सुरक्षा, जल, ऊर्जा और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा देता है, जो पश्चिम एशिया में भारत की रणनीतिक भूमिका को सुदृढ़ करता है (The UPSC Study, 2026)। आतंकवाद-विरोधी सहयोग के क्षेत्र में भी दोनों देशों के बीच नियमित संवाद होता है; दिसंबर 2025 में आतंकवाद-निरोधक संयुक्त कार्यसमूह की 21वीं बैठक आयोजित हुई (Congress-gov CRS Report R47597, 2026)।

प्रवासी भारतीयों की भूमिका

भारत-अमेरिका संबंधों के सुदृढ़ीकरण में भारतीय-अमेरिकी प्रवासी समुदाय की भूमिका असाधारण रही है। भारतीय विदेश मामलों की परिषद (ICWA) के एक अध्ययन के अनुसार, 1960-70 के दशकों में आए अल्पशिक्षित प्रवासियों के छोटे समूह से लेकर वर्तमान में भारतीय-अमेरिकी समुदाय अमेरिका के सबसे शिक्षित, समृद्ध और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली जातीय समूहों में शामिल हो गया है, जिसकी औसत घरेलू आय अमेरिकी राष्ट्रीय औसत से लगभग दोगुनी है (ICWA, उद्धृत वर्ष अनिर्दिष्ट)। यह समुदाय अमेरिकी निर्वाचन राजनीति में एक महत्वपूर्ण वोट-बैंक के रूप में भी उभरा है तथा भारत-अमेरिका द्विपक्षीय नीति-निर्माण को प्रभावित करने में सक्षम पैरवी-समूहों का निर्माण कर चुका है। अमेरिकी कांग्रेस में भारत कॉकस (Senate India Caucus तथा House Caucus on India and Indian Americans) 100 से अधिक सदस्यों के साथ सबसे बड़े एकल-देश कॉकसों में से एक है, जो भारत-अमेरिका संबंधों के प्रति द्विदलीय समर्थन का प्रमाण है (Indian Embassy USA, 2025)। शिक्षा क्षेत्र में भी सहयोग की एक लंबी परंपरा है – कानपुर इंडो-अमेरिकन

कार्यक्रम के अंतर्गत नौ अमेरिकी विश्वविद्यालयों और USAID के सहयोग से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (IIT) में से एक की स्थापना हुई थी (Council on Foreign Relations, 2025)।

चुनौतियाँ एवं विवाद के बिंदु

भारत-अमेरिका संबंध निरंतर सहयोग के साथ-साथ कई संरचनात्मक चुनौतियों का भी सामना करते रहे हैं। पहला, भारत की "रणनीतिक स्वायत्तता" की नीति और रूस के साथ उसके पारंपरिक रक्षा संबंध – जैसे 2018 में रूस से 5.43 अरब डॉलर के S-400 मिसाइल रक्षा प्रणाली की खरीद, जो अमेरिकी CAATSA प्रतिबंध कानून के बावजूद की गई – अमेरिका के साथ कभी-कभी टकराव का विषय बनते हैं (Wikipedia, 2026)। दूसरा, ट्रंप प्रशासन के दूसरे कार्यकाल (2025) में लगाए गए उच्च आयात शुल्कों ने व्यापार संबंधों में गंभीर तनाव उत्पन्न किया, जिसे कुछ विश्लेषकों ने "रणनीतिक साझेदारी से सौदेबाज़ी-आधारित बदलाव" (transactional drift) के रूप में वर्णित किया (The Week, 2025)। तीसरा, आव्रजन नीति, विशेषकर H-1B वीज़ा संबंधी प्रतिबंधों का असर भारतीय सूचना-प्रौद्योगिकी पेशेवरों पर पड़ता है, जो प्रवासी समुदाय के लिए चिंता का विषय बना रहता है (The UPSC Study, 2026)। चौथा, अमेरिका द्वारा समय-समय पर भारत में मानवाधिकार एवं नागरिक स्वतंत्रता संबंधी मुद्दे उठाए जाते हैं, जिन्हें भारत प्रायः आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के रूप में देखता है। पांचवां, बौद्धिक संपदा अधिकार प्रवर्तन को लेकर अमेरिकी "स्पेशल 301 रिपोर्ट" में भारत की आलोचना की जाती रही है। इन सबके बावजूद, हडसन इंस्टीट्यूट के एक हाल के अध्ययन के अनुसार, भारत-अमेरिका संबंध अब इतने संस्थागत हो चुके हैं कि अल्पकालिक राजनीतिक घर्षण इसकी दीर्घकालिक संरचनात्मक नींव को कमज़ोर नहीं कर पाता, यद्यपि 2025 के टैरिफ-विवाद ने इस साझेदारी की सीमाओं को भी उजागर किया (Hudson Institute, 2026)।

निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी में भारत-अमेरिका संबंधों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह साझेदारी शीतयुद्धकालीन अलगाव से निकलकर रक्षा, व्यापार, प्रौद्योगिकी, ऊर्जा, शिक्षा और जन-संपर्क – लगभग प्रत्येक क्षेत्र में फैली एक बहुआयामी रणनीतिक साझेदारी के रूप में विकसित हो चुकी है। यह संबंध औपचारिक सैन्य गठबंधन का रूप नहीं लेता, बल्कि "लोकतंत्रों की लचीली रणनीतिक साझेदारी" का स्वरूप धारण करता है, जो विभिन्न मुद्दों पर मतभेद को समायोजित करते हुए भी गहरे अभिसरण को सक्षम बनाता है (Legacy IAS Academy, 2026)। चीन के उदय, हिंद-प्रशांत में शक्ति-संतुलन, प्रौद्योगिकी-प्रतिस्पर्धा और वैश्विक आपूर्ति-शृंखलाओं के पुनर्गठन जैसे कारकों ने इस साझेदारी को और अधिक रणनीतिक महत्व प्रदान किया है। साथ ही, व्यापार-शुल्क विवाद, ऊर्जा-नीति को लेकर मतभेद और रणनीतिक स्वायत्तता बनाम पूर्ण रणनीतिक तालमेल की दुविधा यह दर्शाते हैं कि यह संबंध स्वतः-स्थिर नहीं है, बल्कि निरंतर वार्ता, समायोजन और परिपक्वता की मांग करता है। आगे की राह में दोनों देशों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे अपने आर्थिक मतभेदों का समाधान दीर्घकालिक रणनीतिक हितों की कीमत पर न करें, और भारत की बहुध्रुवीय विश्व-दृष्टि तथा अमेरिका की वैश्विक प्रधानता की आकांक्षा के बीच एक यथार्थवादी संतुलन स्थापित करें। यदि यह संतुलन कायम रहता है, तो भारत-अमेरिका संबंध निस्संदेह इक्कीसवीं सदी के वैश्विक भू-राजनीतिक परिदृश्य को आकार देने वाले सबसे महत्वपूर्ण द्विपक्षीय संबंधों में से एक बने रहेंगे।

संदर्भ सूची (References)

1. Wikipedia contributors. (2026). India-United States relations. Wikipedia. https://en.wikipedia.org/wiki/India%E2%80%93United_States_relations

2. Council on Foreign Relations. (2025). U.S.-India Relations [Timeline]. CFR.org. https://www.cfr.org/timelines/us-india-relations
3. Pande, A. (2026). India-US Relations: A Strategic Review. Hudson Institute. https://www.hudson.org/foreign-policy/india-us-relations-strategic-review-aparna-pande
4. Legacy IAS Academy. (2026). India-USA Relations [GS-II Mains Notes]. https://www.legacyias.com/india-usa-relations/
5. The UPSC Study. (2026). India US Relations: Strategic Partnership, History, Challenges. https://theupscstudy.com/india-us-relations/amp/
6. Congressional Research Service. (2026). India-U.S. Relations: Issues for Congress (Report No. R47597). Library of Congress, Congress.gov. https://www.congress.gov/crs-product/R47597
7. Embassy of India, Washington D.C. (2025). India-US Bilateral Relations [Brief, as of March 2025]. https://indianembassyusa.gov.in/pdf/menu/Brief_Bilateral_March_2025.pdf
8. Testbook. (2026). India US Relations: 2+2 Intersessional Dialogue, Cooperation & Contention [UPSC]. https://testbook.com/ias-preparation/india-us-relations
9. The Week. (2025, December 8). India-US relations: Strategic partnership or transactional drift? https://www.theweek.in/news/defence/2025/12/08/india-us-relations-strategic-partnership-or-transactional-drift.html
10. International Centre for Peace Studies. (2025). US-India Relations: Historical Trajectory and Current Uncertainties. https://www.icpsnet.org/comment/US-India-Relations-100925
11. The White House. (2026, February 6). United States-India Joint Statement. https://www.whitehouse.gov/briefings-statements/2026/02/united-states-india-joint-statement/
12. The White House. (2026, February 9). Fact Sheet: The United States and India Announce Historic Trade Deal. https://www.whitehouse.gov/fact-sheets/2026/02/fact-sheet-the-united-states-and-india-announce-historic-trade-deal/
13. Business Standard. (2026, June 24). India-US conclude two-day trade deal talks ahead of US tariff deadline. https://www.business-standard.com/amp/economy/news/india-us-conclude-two-day-trade-deal-talks-ahead-of-us-tariff-deadline-126062400644_1.html
14. Morgan Lewis. (2026, February 17). US-India Trade Deal Cuts Tariffs, Eases Tensions. https://www.morganlewis.com/pubs/2026/02/us-india-trade-deal-cuts-tariffs-eases-tensions
15. United Nations ESCAP. (2026). India-US bilateral trade agreement and implications for South Asia [Expert Opinion]. https://www.unescap.org/blog/india-us-bilateral-trade-agreement-and-implications-south-asia
16. Clark Hill PLC. (2026, February 10). U.S.-India Trade Deal | Phase 1 Update. https://www.clarkhill.com/news-events/news/u-s-india-trade-deal-phase-1-update/
17. India Briefing / Dezan Shira & Associates. (2026, February 24). US-India Strike Interim Trade Deal, Cut Tariffs to 18%. https://www.india-briefing.com/news/us-india-interim-trade-agreement-18-percent-tariff-42514.html/
18. Sanskriti IAS. (2025). भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध। https://www.sanskritiias.com/hindi/current-affairs/india-us-bilateral-relations
19. Drishti IAS. (2024). भारत-अमेरिका साझेदारी। https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-editorials/the-future-of-india-us-partnership
20. Drishti IAS. (2025). भारत-अमेरिका कॉम्पैक्ट पहल। https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/india-us-compact-initiative
21. Drishti IAS. भारत-अमेरिका संबंध। https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/india-us-relations-3

22. द प्रिंट हिंदी। (2025, January 26). अमेरिका, भारत की साझेदारी 21वीं सदी के संबंधों को परिभाषित करेगीरू मार्को रुबियो। https://hindi.theprint.in/world/us-india-partnership-will-define-21st-century-relations-marco-rubio/778827/
23. PWOnlyIAS. (2024). भारत-अमेरिका संबंधों में सफलताएँ और चुनौतियाँ। https://pwonlyias.com/hi/current-affairs/successes-and-challenges-in-the-india-u-s-relationship/
24. PWOnlyIAS. (2025). भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध : रणनीतिक साझेदारी को मजबूत करना। https://pwonlyias.com/hi/current-affairs/india-us-bilateral-relations-strengthening-strategic-partnership/
25. Observer Research Foundation (ORF) हिंदी। (2025). भारत अमेरिका संबंधः सुरक्षा, व्यापार और दोस्ती की नई इबारत। https://www.orfonline.org/hindi/research/india-america-relations-modi-trump-meeting
26. Indian Council of World Affairs (ICWA), Government of India. भारत-अमेरिका संबंधों में भारतीय प्रवासियों का योगदान। https://icwa.in/show_content.php?lang=2&level=3&ls_id=2939&lid=2175

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का इको-क्रिटिकल अध्ययन भक्ति, प्रकृति और पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में

पूनम
पी-एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग (हिंदी)
सामाजिक एवं मानविकी संकाय
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)-125001
मो. 8307520105
डॉ. संजय
शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग
ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)-125001

शोध सार

प्रस्तुत शोध-पत्र ष्भक्ति आंदोलन में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का इको-क्रिटिकल अध्ययन भक्ति, प्रकृति और पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पर्यावरणीय चेतना, भक्ति-दृष्टि तथा प्रकृति-केंद्रित जीवन-मूल्यों का साहित्यिक और आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जिसने आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय मूल्यों को भी नई दिशा प्रदान की। इसी परंपरा में गुरु जम्भेश्वर जी का योगदान विशिष्ट है, क्योंकि उन्होंने भक्ति को केवल ईश्वर-आराधना तक सीमित न रखकर उसे प्रकृति-संरक्षण, जीव-दया और लोककल्याण से जोड़ा।

इस शोध का उद्देश्य गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में व्यक्त पर्यावरणीय नैतिकता, पारिस्थितिक संस्कृति, जीव-जगत के प्रति करुणा तथा प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनकी वाणी में भक्ति और प्रकृति परस्पर पूरक तत्व हैं। उनके अनुसार सच्ची भक्ति वही है, जिसमें मनुष्य समस्त सृष्टि के प्रति प्रेम, दया और संवेदनशीलता का व्यवहार करे। यही कारण है कि उनकी शिक्षाओं में जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण, जल-संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग पर विशेष बल दिया गया है।

शोध-पत्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी केवल धार्मिक उपदेशों का संग्रह नहीं है, बल्कि एक ऐसी जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन करती है जो मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करने का संदेश देती है। उनकी वाणी में सह-अस्तित्व, पर्यावरणीय अनुशासन, पारिस्थितिक संस्कृति, पर्यावरणीय आध्यात्मिकता तथा मरुस्थलीय पारिस्थितिकी संबंधी विचार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। विशेष रूप से बिश्नोई परंपरा में प्रकृति-संरक्षण की

भावना और खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान उनकी शिक्षाओं की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में सामने आते हैं।

यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि गुरु जम्भेश्वर जी के विचार आधुनिक इको-क्रिटिसिज्म, पर्यावरणीय नैतिकता तथा सतत विकास की अवधारणाओं के साथ गहरा साम्य रखते हैं। उन्होंने प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु न मानकर जीवन और अस्तित्व का आधार माना। इस दृष्टि से उनकी शिक्षाएँ वर्तमान पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के संरक्षण जैसी वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती हैं।

मुख्य शब्द : गुरु जम्भेश्वर जी, सबदवाणी, इको-क्रिटिसिज्म, भक्ति आंदोलन, पर्यावरणीय नैतिकता, प्रकृति-दर्शन, जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण, सह-अस्तित्व, बिश्नोई परंपरा।

प्रस्तावना

भारतीय भक्ति आंदोलन भारतीय संस्कृति, समाज और साहित्य के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस आंदोलन ने धार्मिक आडंबरों, सामाजिक विषमताओं तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए भक्ति को जनसामान्य के जीवन से जोड़ा। संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से मानवता, समानता, प्रेम, करुणा और लोककल्याण की भावना का प्रचार किया। इस परंपरा में गुरु जम्भेश्वर जी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उन्होंने भक्ति को केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर उसे प्रकृति-संरक्षण, जीव-दया, नैतिक आचरण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़कर एक व्यापक जीवन-दर्शन का स्वरूप प्रदान किया। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय संत साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ पर्यावरणीय संवेदनशीलता का भी अद्भुत समन्वय मिलता है। उनकी वाणी में वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी, जल, वायु और समस्त प्रकृति के प्रति श्रद्धा और संरक्षण की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। उन्होंने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक माना तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग पर बल दिया। यही कारण है कि उनकी शिक्षाएँ आज भी पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक मानी जाती हैं। आधुनिक साहित्यिक आलोचना में इको-क्रिटिसिज्म या पारिस्थितिक आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श के रूप में विकसित हुआ है। यह साहित्य और प्रकृति के संबंधों का अध्ययन करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि साहित्य पर्यावरणीय चेतना को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है। इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण मानव-केंद्रित सोच के स्थान पर प्रकृति-केंद्रित दृष्टि का समर्थन करता है तथा समस्त जीव-जगत के सह-अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन पर बल देता है। इस दृष्टि से गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उसमें प्रकृति और जीवन के मध्य गहरे संबंधों का सशक्त प्रतिपादन मिलता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने उपदेशों के माध्यम से जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण, जल-संरक्षण, संयमित जीवन तथा नैतिक आचरण को धर्म का अनिवार्य अंग माना। उनकी दृष्टि में सच्ची भक्ति वही है जो समस्त सृष्टि के प्रति करुणा और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करे। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज ने प्रकृति-संरक्षण को अपने जीवन का आधार बनाया, जिसका सर्वोत्तम उदाहरण खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान है। यह घटना विश्व इतिहास में पर्यावरण संरक्षण के लिए दिए गए महानतम जन-बलिदानों में से एक मानी जाती है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, वनों की अंधाधुंध कटाई, जैव विविधता का ह्रास, जल-संकट तथा प्रदूषण जैसी समस्याएँ संपूर्ण विश्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ केवल धार्मिक या सांस्कृतिक महत्व की नहीं रह जातीं, बल्कि वे सतत विकास, पर्यावरणीय नैतिकता और पारिस्थितिक संतुलन की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं। उनका जीवन-दर्शन प्रकृति के साथ संतुलित, संयमित और उत्तरदायी जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण से अध्ययन करना है। इसमें यह विश्लेषण किया जाएगा कि उनकी वाणी में भक्ति चेतना किस प्रकार पर्यावरणीय नैतिकता, जीव-दया, सह-अस्तित्व और प्रकृति-संरक्षण से जुड़ती है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि उनकी शिक्षाएँ आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श और सतत

विकास की अवधारणा के संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक हैं। इस अध्ययन के माध्यम से गुरु जम्भेश्वर जी के साहित्य की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे उनके साहित्यिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय योगदान का समग्र मूल्यांकन संभव हो सके।

इको-क्रिटिसिज्म अवधारणा, स्वरूप एवं विकास तथा गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में उसका प्रतिफलन

इक्कीसवीं शताब्दी में साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में अनेक नए विमर्शों का विकास हुआ है, जिनमें इको-क्रिटिसिज्म या पारिस्थितिक आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श के रूप में स्थापित हुआ है। यह साहित्य और पर्यावरण के मध्य विद्यमान संबंधों का अध्ययन करने वाली आलोचनात्मक पद्धति है, जिसके अंतर्गत साहित्य में प्रकृति के स्वरूप, पर्यावरणीय चेतना, जैव विविधता, मानव और प्रकृति के संबंध तथा पारिस्थितिक संतुलन जैसे विषयों का विश्लेषण किया जाता है। इको-क्रिटिसिज्म का मूल उद्देश्य प्रकृति को केवल सौंदर्य के विषय के रूप में न देखकर उसे जीवन और संस्कृति के आधारभूत तत्व के रूप में समझना है। पारिस्थितिक आलोचना का विकास वैश्विक पर्यावरणीय संकट की पृष्ठभूमि में हुआ। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं ने साहित्यकारों और चिंतकों का ध्यान पर्यावरण की ओर आकर्षित किया। परिणामस्वरूप साहित्य के अध्ययन में ऐसी दृष्टि विकसित हुई, जो प्रकृति और मानव के संबंधों का पुनर्मूल्यांकन करती है। यह विचारधारा इस तथ्य पर बल देती है कि पृथ्वी पर स्थित प्रत्येक जीव और प्राकृतिक तत्व का अपना स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व है, इसलिए उनके संरक्षण के बिना मानव जीवन की निरंतरता संभव नहीं है।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में प्रकृति के प्रति आदर और सह-अस्तित्व की भावना प्राचीन काल से विद्यमान रही है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा संत साहित्य में प्रकृति को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। वृक्षों, नदियों, पर्वतों और पशु-पक्षियों के प्रति श्रद्धा भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान रही है। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए प्रकृति-संरक्षण को धार्मिक और नैतिक जीवन का आधार बनाती है। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का अध्ययन इको-क्रिटिकल दृष्टि से करने पर स्पष्ट होता है कि उनकी वाणी में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का केंद्रीय तत्व है। उन्होंने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक माना। उनकी शिक्षाओं में वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के संरक्षण, जल के सदुपयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग पर विशेष बल दिया गया है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पारिस्थितिक चिंतन के मूल सिद्धांतों के अनुरूप है। सबदवाणी में व्यक्त जीव-दया का सिद्धांत भी इको-क्रिटिकल चेतना का महत्वपूर्ण आधार है। गुरु जम्भेश्वर जी के अनुसार प्रत्येक जीव में परमात्मा का अंश विद्यमान है, इसलिए किसी भी प्राणी पर हिंसा करना धर्म के विरुद्ध है। यह विचार मानव-केंद्रित दृष्टिकोण का विरोध करते हुए समस्त जीव-जगत की समान महत्ता को स्वीकार करता है। आधुनिक पारिस्थितिक दर्शन भी जैव विविधता के संरक्षण और सभी जीवों के अस्तित्व के अधिकार पर प्रस्तावना भारतीय भक्ति आंदोलन भारतीय संस्कृति, समाज और साहित्य के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस आंदोलन ने धार्मिक आडंबरों, सामाजिक विषमताओं तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए भक्ति को जनसामान्य के जीवन से जोड़ा। संत कवियों ने अपनी वाणी के माध्यम से मानवता, समानता, प्रेम, करुणा और लोककल्याण की भावना का प्रचार किया। इस परंपरा में गुरु जम्भेश्वर जी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उन्होंने भक्ति को केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर उसे प्रकृति-संरक्षण, जीव-दया, नैतिक आचरण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़कर एक व्यापक जीवन-दर्शन का स्वरूप प्रदान किया। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय संत साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ पर्यावरणीय संवेदनशीलता का भी अद्भुत समन्वय मिलता है। उनकी वाणी में वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी, जल, वायु और समस्त प्रकृति के प्रति श्रद्धा और संरक्षण की भावना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। उन्होंने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक माना तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग पर बल दिया। यही कारण है कि उनकी शिक्षाएँ आज भी पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक मानी जाती

हैं।

आधुनिक साहित्यिक आलोचना में इको-क्रिटिसिज्म या पारिस्थितिक आलोचना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श के रूप में विकसित हुआ है। यह साहित्य और प्रकृति के संबंधों का अध्ययन करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि साहित्य पर्यावरणीय चेतना को किस प्रकार अभिव्यक्त करता है। इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण मानव-केंद्रित सोच के स्थान पर प्रकृति-केंद्रित दृष्टि का समर्थन करता है तथा समस्त जीव-जगत के सह-अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन पर बल देता है। इस दृष्टि से गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उसमें प्रकृति और जीवन के मध्य गहरे संबंधों का सशक्त प्रतिपादन मिलता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने उपदेशों के माध्यम से जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण, जल-संरक्षण, संयमित जीवन तथा नैतिक आचरण को धर्म का अनिवार्य अंग माना। उनकी दृष्टि में सच्ची भक्ति वही है जो समस्त सृष्टि के प्रति करुणा और उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करे। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज ने प्रकृति-संरक्षण को अपने जीवन का आधार बनाया, जिसका सर्वोत्तम उदाहरण खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान है। यह घटना विश्व इतिहास में पर्यावरण संरक्षण के लिए दिए गए महानतम जन-बलिदानों में से एक मानी जाती है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, वनों की अंधाधुंध कटाई, जैव विविधता का ह्रास, जल-संकट तथा प्रदूषण जैसी समस्याएँ संपूर्ण विश्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ केवल धार्मिक या सांस्कृतिक महत्व की नहीं रह जातीं, बल्कि वे सतत विकास, पर्यावरणीय नैतिकता और पारिस्थितिक संतुलन की दृष्टि से भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती हैं। उनका जीवन-दर्शन प्रकृति के साथ संतुलित, संयमित और उत्तरदायी जीवन जीने की प्रेरणा देता है। उनकी वाणी में संयमित जीवन और सीमित उपभोग की भावना भी प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है। वे मनुष्य को लालच, अत्यधिक उपभोग और प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से बचने की प्रेरणा देते हैं। उनका यह चिंतन आज के सतत विकास और पर्यावरणीय नैतिकता की अवधारणाओं से गहरा साम्य रखता है। वर्तमान समय में जब प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन पर्यावरणीय संकट का कारण बन रहा है, तब गुरु जम्भेश्वर जी का यह संदेश और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में प्रकृति और भक्ति का संबंध अत्यंत गहरा है। उनकी दृष्टि में प्रकृति की रक्षा करना ईश्वर की सच्ची उपासना का ही एक रूप है। वृक्षों, पशु-पक्षियों और समस्त जीव-जगत के प्रति करुणा का भाव उनके भक्ति-दर्शन का अभिन्न अंग है। इस प्रकार उनकी भक्ति केवल आध्यात्मिक अनुभूति नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण की प्रेरणा भी देती है। बिश्नोई समाज की जीवन-पद्धति में गुरु जम्भेश्वर जी की इस पारिस्थितिक चेतना का व्यावहारिक स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हरे वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों का संरक्षण, जल का सदुपयोग तथा प्रकृति के प्रति समर्पित जीवन उनके उपदेशों की जीवंत अभिव्यक्ति हैं। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस विचारधारा का सर्वोच्च उदाहरण है, जिसने यह सिद्ध किया कि पर्यावरण-संरक्षण केवल विचार नहीं, बल्कि जीवन-मूल्य है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में भक्ति और प्रकृति का अंतर्संबंध

भारतीय संत परंपरा में भक्ति का स्वरूप केवल ईश्वर-आराधना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह मानव जीवन, समाज और प्रकृति के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी इस व्यापक भक्ति-दृष्टि का सशक्त उदाहरण है। उनकी वाणी में भक्ति का अर्थ केवल उपासना या आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति प्रेम, करुणा, उत्तरदायित्व और संरक्षण की भावना है। यही कारण है कि उनकी भक्ति चेतना और प्रकृति-दृष्टि एक-दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी सबदवाणी में प्रकृति को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति माना है। उनके अनुसार वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी, जल, वायु तथा समस्त जीव-जगत उसी परम सत्ता की रचना हैं, इसलिए उनके प्रति सम्मान और संरक्षण का भाव रखना सच्चे भक्त का धर्म है। इस प्रकार उनकी भक्ति का आधार केवल आध्यात्मिक अनुभूति नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति संवेदनशील आचरण भी है। उनकी दृष्टि में ईश्वर की आराधना तभी सार्थक है जब मनुष्य अपने व्यवहार में दया, अहिंसा

और प्रकृति-प्रेम को अपनाए। सबदवाणी में अनेक स्थानों पर जीव-दया और प्रकृति-संरक्षण की भावना प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में व्यक्त हुई है। गुरु जम्भेश्वर जी ने जीवों पर अत्याचार, हरे वृक्षों की कटाई तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनावश्यक दोहन को अनुचित माना। उन्होंने मनुष्य को यह शिक्षा दी कि प्रकृति के साथ संतुलित संबंध बनाए रखना ही धर्म और भक्ति का वास्तविक स्वरूप है। उनकी यह सोच आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता और पारिस्थितिक संतुलन की अवधारणा से गहरा साम्य रखती है। गुरु जम्भेश्वर जी की भक्ति-दृष्टि में करुणा का विशेष महत्व है। यह करुणा केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त प्राणिमात्र के प्रति समान रूप से विस्तृत है। वे प्रत्येक जीव में परमात्मा का अंश देखते हैं और इसलिए जीव-दया को धर्म का मूल आधार मानते हैं। इस विचार के कारण उनकी भक्ति प्रकृति-केंद्रित बन जाती है और समस्त जीव-जगत के अस्तित्व की रक्षा का संदेश देती है। यही भावना आगे चलकर बिश्नोई समाज की जीवन-पद्धति का आधार बनी। उनकी वाणी में संयमित जीवन और सीमित उपभोग का संदेश भी भक्ति और प्रकृति के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है। वे मनुष्य को लोभ और अत्यधिक उपभोग से दूर रहने की प्रेरणा देते हैं तथा आवश्यकतानुसार संसाधनों के उपयोग पर बल देते हैं। यह विचार प्रकृति के संरक्षण और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में सहायक है। वर्तमान समय में जब प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन पर्यावरणीय संकट का कारण बन रहा है, तब गुरु जम्भेश्वर जी का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाओं का प्रभाव केवल साहित्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह सामाजिक जीवन में भी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। बिश्नोई समाज द्वारा हरे वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति संवेदनशील व्यवहार उनकी भक्ति-दृष्टि की व्यवहारिक अभिव्यक्ति है। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस बात का प्रमाण है कि उनके अनुयायियों ने प्रकृति की रक्षा को धर्म और भक्ति का सर्वोच्च रूप माना। यह घटना भक्ति और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व के अद्वितीय समन्वय का विश्वविख्यात उदाहरण है।

इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण से देखा जाए तो गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने का साहित्यिक दस्तावेज है। उनकी भक्ति मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक बनने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार उनकी वाणी में आध्यात्मिकता और पर्यावरणीय चेतना का ऐसा समन्वय मिलता है, जो भारतीय संत साहित्य में विशिष्ट स्थान रखता है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण और जैव विविधता का इको-क्रिटिकल विश्लेषण

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय संत साहित्य की ऐसी अमूल्य निधि है, जिसमें आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ प्रकृति और समस्त जीव-जगत के प्रति गहन संवेदनशीलता का भाव विद्यमान है। उनकी वाणी में जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण और पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व को धार्मिक आचरण का अनिवार्य अंग माना गया है। इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण से देखा जाए तो उनकी शिक्षाएँ मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने का सशक्त संदेश देती हैं। उनकी विचारधारा इस तथ्य को स्वीकार करती है कि पृथ्वी पर प्रत्येक जीव और वनस्पति का अपना स्वतंत्र महत्व है तथा उनके संरक्षण के बिना जीवन का संतुलन बनाए रखना संभव नहीं है। गुरु जम्भेश्वर जी ने जीव-दया को केवल नैतिक उपदेश के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे भक्ति और धर्म का मूल आधार माना। उनके अनुसार प्रत्येक जीव में परम चेतना का अंश विद्यमान है, इसलिए किसी भी प्राणी को अनावश्यक कष्ट पहुँचाना मानवता और धर्म दोनों के विरुद्ध है। यह विचार मनुष्य को अन्य प्राणियों के प्रति करुणा, सहानुभूति और उत्तरदायित्व का भाव विकसित करने की प्रेरणा देता है। उनकी यह दृष्टि आधुनिक जैव-केंद्रित चिंतन से मेल खाती है, जिसमें मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसके व्यापक परिवार का एक सदस्य माना जाता है। सबदवाणी में वृक्षों के संरक्षण की भावना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुरु जम्भेश्वर जी ने हरे वृक्षों की रक्षा को धार्मिक कर्तव्य का स्वरूप प्रदान किया। उनके विचार में वृक्ष केवल ईंधन या लकड़ी का स्रोत नहीं हैं, बल्कि वे पृथ्वी पर जीवन के आधार हैं। वृक्ष वर्षा, स्वच्छ वायु, उर्वरता और जैविक संतुलन को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए उनका संरक्षण समस्त समाज के कल्याण से जुड़ा हुआ है। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरण विज्ञान

के सिद्धांतों के अनुरूप है, जो वनों को पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र का आधार मानता है।

गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाओं का व्यावहारिक प्रभाव बिश्नोई समाज के जीवन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस समाज ने वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा को अपने धार्मिक आचरण का हिस्सा बनाया। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस परंपरा का सर्वोच्च उदाहरण है, जहाँ अमृता देवी बिश्नोई के नेतृत्व में 363 स्त्री-पुरुषों ने खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया। यह घटना केवल इतिहास का प्रसंग नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति समर्पण, पर्यावरणीय नैतिकता और सामुदायिक उत्तरदायित्व की अनुपम मिसाल है। इससे स्पष्ट होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ व्यवहारिक जीवन में भी गहराई से स्थापित हुईं। इको-क्रिटिकल दृष्टि से जैव विविधता का संरक्षण केवल जीवों की संख्या बनाए रखने का प्रयास नहीं है, बल्कि संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा का माध्यम है। गुरु जम्भेश्वर जी की वाणी में वन्यजीवों, पशु-पक्षियों और वनस्पतियों के प्रति करुणा का भाव इसी व्यापक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। उनकी शिक्षाएँ यह संदेश देती हैं कि प्रकृति के प्रत्येक घटक का अस्तित्व परस्पर जुड़ा हुआ है। यदि किसी एक तत्व का विनाश होता है, तो उसका प्रभाव संपूर्ण पर्यावरण पर पड़ता है। यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान के मूल सिद्धांतों से पूर्णतः साम्य रखता है।

वर्तमान समय में जब अनेक वन्य प्रजातियाँ विलुप्ति के संकट का सामना कर रही हैं और वनों का क्षेत्र निरंतर घट रहा है, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ नई प्रेरणा प्रदान करती हैं। उनकी वाणी मनुष्य को यह समझाती है कि विकास और प्रकृति-संरक्षण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि विकास प्रकृति के संतुलन को नष्ट करता है, तो उसका दुष्परिणाम अंततः मानव समाज को ही भुगतना पड़ता है। इस प्रकार इको-क्रिटिकल अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण और जैव विविधता के प्रति गहन संवेदनशीलता विद्यमान है। उनकी शिक्षाएँ केवल धार्मिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि पर्यावरणीय नैतिकता और सतत जीवन-दृष्टि का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती हैं। आधुनिक पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में उनका यह चिंतन मानव समाज को प्रकृति के साथ संतुलित, संवेदनशील और उत्तरदायी संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है। यही उनकी वाणी की स्थायी प्रासंगिकता और वैश्विक महत्ता का मूल आधार है।

समकालीन पर्यावरणीय विमर्श के संदर्भ में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी की प्रासंगिकता

वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व पर्यावरणीय संकट के दौर से गुजर रहा है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, वनों की कटाई, जल-संकट, वायु प्रदूषण तथा जैव विविधता के निरंतर ह्रास ने मानव जीवन के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक विकास ने जहाँ जीवन को सुविधाजनक बनाया है, वहीं प्रकृति का अत्यधिक दोहन पर्यावरणीय असंतुलन का कारण भी बना है। ऐसी परिस्थितियों में गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पर्यावरणीय चेतना और जीवन-दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है। गुरु जम्भेश्वर जी ने लगभग पाँच शताब्दियों पूर्व ही यह समझ लिया था कि प्रकृति और मानव का संबंध परस्पर निर्भरता पर आधारित है। यदि मनुष्य प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करेगा तो उसका दुष्परिणाम अंततः उसी को भुगतना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने अपनी वाणी में प्रकृति के संरक्षण, जीव-दया, वृक्षों की रक्षा और जल के संयमित उपयोग को धर्म और नैतिक जीवन का अनिवार्य अंग माना। यह विचार आज के पर्यावरणीय विमर्श के मूल सिद्धांतों से पूर्णतः मेल खाता है। समकालीन पर्यावरणीय चिंतन सतत विकास, पर्यावरणीय न्याय और पारिस्थितिक संतुलन पर बल देता है। इन सभी अवधारणाओं का मूल उद्देश्य विकास और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करना है। गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाओं में भी यही भावना विद्यमान है। उन्होंने सादगी, संतोष, सीमित उपभोग और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार का संदेश देकर मानव को ऐसा जीवन अपनाने की प्रेरणा दी, जो पर्यावरण के अनुकूल हो। उनका यह चिंतन आज की उपभोक्तावादी संस्कृति के लिए एक नैतिक विकल्प प्रस्तुत करता है। इको-क्रिटिकल दृष्टि से देखा जाए तो गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी प्रकृति को केवल सौंदर्य का विषय नहीं मानती, बल्कि उसे जीवन और आध्यात्मिकता का आधार स्वीकार करती है। उनकी वाणी में प्रकृति के प्रत्येक तत्व के प्रति सम्मान और संवेदनशीलता का भाव है। यह

दृष्टिकोण आधुनिक पारिस्थितिक आलोचना के उस सिद्धांत को पुष्ट करता है, जिसके अनुसार मानव और प्रकृति का संबंध शोषण का नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व और सहयोग का होना चाहिए। आज विश्वभर में पर्यावरण संरक्षण के लिए वृक्षारोपण, वन्यजीव संरक्षण और जल-संरक्षण जैसे अनेक अभियान चलाए जा रहे हैं। किंतु इन अभियानों की सफलता तभी संभव है जब समाज में पर्यावरणीय नैतिकता का विकास हो। गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ इसी नैतिक आधार को सुदृढ़ करती हैं। उनकी वाणी मनुष्य को यह सिखाती है कि प्रकृति की रक्षा केवल कानून का पालन नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और नैतिक कर्तव्य का विषय है। बिश्नोई समाज का जीवन आज भी गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय दृष्टि का जीवंत उदाहरण है। वन्यजीवों और वृक्षों के प्रति उनका समर्पण यह सिद्ध करता है कि यदि धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को पर्यावरण संरक्षण से जोड़ा जाए, तो समाज में स्थायी परिवर्तन संभव है। खेजड़ली का बलिदान आज भी विश्व समुदाय को यह संदेश देता है कि प्रकृति की रक्षा के लिए त्याग और समर्पण की भावना आवश्यक है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पर्यावरणीय नागरिकता की अवधारणा

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में केवल व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना का संदेश नहीं मिलता, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पर्यावरणीय दायित्व का भी स्पष्ट संकेत मिलता है। आधुनिक समय में इसे श्पर्यावरणीय नागरिकताश् की अवधारणा के रूप में समझा जा सकता है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक अपने अधिकारों के साथ-साथ प्रकृति के प्रति अपने कर्तव्यों का भी पालन करे। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने उपदेशों में जीव-दया, वृक्षों की रक्षा, जल के संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल दिया। ये सभी शिक्षाएँ व्यक्ति को पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी नागरिक बनने की प्रेरणा देती हैं। उनके अनुसार धर्म केवल पूजा-पाठ तक सीमित नहीं है, बल्कि ऐसा आचरण भी धर्म है जिससे प्रकृति और समाज का कल्याण हो।

आज जब पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून बनाए जा रहे हैं, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ यह बताती हैं कि केवल कानूनी व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। जब तक व्यक्ति के भीतर प्रकृति के प्रति नैतिक चेतना विकसित नहीं होगी, तब तक पर्यावरणीय समस्याओं का स्थायी समाधान संभव नहीं है। इस दृष्टि से उनकी सबदवाणी पर्यावरणीय नागरिकता के विकास का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक आधार प्रस्तुत करती है। इस प्रकार उनकी वाणी आधुनिक पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करती है और प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति का संरक्षक बनने का संदेश देती है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में लोकज्ञान और पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित शिक्षाएँ केवल धार्मिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि उनमें लोकजीवन के अनुभवों से विकसित पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता का भी समावेश है। उन्होंने प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की जो पद्धति प्रस्तुत की, वह स्थानीय ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव पर आधारित थी।

मरुस्थलीय क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने जल के संरक्षण, खेजड़ी जैसे उपयोगी वृक्षों की रक्षा, पशु-पक्षियों के संरक्षण तथा सीमित संसाधनों के संतुलित उपयोग पर बल दिया। यह दृष्टि स्थानीय पर्यावरण की गहरी समझ का परिचायक है। आधुनिक विज्ञान जिस सतत संसाधन प्रबंधन की बात करता है, उसका व्यवहारिक स्वरूप उनकी शिक्षाओं में पहले से विद्यमान दिखाई देता है। लोकज्ञान और पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता का यह समन्वय उनकी सबदवाणी को विशिष्ट बनाता है। उनकी शिक्षाएँ यह सिद्ध करती हैं कि प्रकृति का संरक्षण केवल वैज्ञानिक उपायों से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों और लोकपरंपराओं के माध्यम से भी प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित लोकज्ञान आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा-स्रोत है। यह ज्ञान स्थानीय समाज, प्राकृतिक संसाधनों और सांस्कृतिक मूल्यों के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने की दिशा में आज भी समान रूप से प्रासंगिक है।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में मरुस्थलीय पारिस्थितिकी और सांस्कृतिक पर्यावरण-बोध

गुरु जम्भेश्वर जी का जीवन और चिंतन राजस्थान के मरुस्थलीय भूभाग से गहराई से जुड़ा हुआ था। मरुभूमि की कठोर जलवायु, जल की कमी, सीमित वनस्पति तथा कठिन जीवन-परिस्थितियों ने वहाँ के समाज को प्रकृति के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील बनाया। गुरु जम्भेश्वर जी ने इन परिस्थितियों को केवल प्राकृतिक चुनौती के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्हें मानवीय जीवन के अनुशासन और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व से जोड़कर एक सांस्कृतिक चेतना का रूप प्रदान किया। उनकी सबदवाणी में यह दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मरुस्थलीय जीवन में प्रत्येक वृक्ष, जलस्रोत और जीव का विशेष महत्व होता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने इस सत्य को समझते हुए प्रकृति के प्रत्येक घटक के संरक्षण पर बल दिया। उन्होंने मनुष्य को यह शिक्षा दी कि प्रकृति का संतुलन बनाए रखना ही समाज के दीर्घकालिक अस्तित्व की आधारशिला है। उनकी यह सोच केवल धार्मिक उपदेश नहीं, बल्कि स्थानीय पर्यावरणीय ज्ञान पर आधारित एक व्यवहारिक जीवन-दर्शन है। सबदवाणी में प्रकृति के प्रति आदर, संयमित जीवन और संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग की भावना बार-बार दिखाई देती है। इससे स्पष्ट होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी ने मरुभूमि की पारिस्थितिकी को समझते हुए ऐसी जीवन-पद्धति का समर्थन किया, जो पर्यावरण और समाज दोनों के हित में हो। उनके विचारों में सांस्कृतिक परंपरा और पारिस्थितिक संतुलन का सुंदर समन्वय मिलता है। आज जब मरुस्थलीय क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन और मरुस्थलीकरण जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ और अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। उनका संदेश यह है कि स्थानीय पर्यावरण का संरक्षण केवल वैज्ञानिक उपायों से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों और सामुदायिक सहभागिता से भी संभव है। इस दृष्टि से उनकी सबदवाणी मरुस्थलीय पारिस्थितिकी और सांस्कृतिक पर्यावरण-बोध का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज सिद्ध होती है।गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पर्यावरणीय आध्यात्मिकता का स्वरूप गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में आध्यात्मिकता और प्रकृति के बीच गहरा संबंध स्थापित किया गया है। उनकी दृष्टि में ईश्वर की अनुभूति केवल ध्यान, पूजा या साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रकृति के प्रति करुणा, संरक्षण और उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार भी आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न अंग है। यही विचार आधुनिक पर्यावरणीय आध्यात्मिकता की मूल भावना से मेल खाता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने प्रकृति को परमात्मा की पवित्र अभिव्यक्ति माना। उनके अनुसार वृक्ष, पशु-पक्षी, जल, वायु और समस्त सृष्टि उसी दिव्य सत्ता के स्वरूप हैं। इसलिए इनके प्रति प्रेम और संरक्षण का भाव रखना ईश्वर-भक्ति का वास्तविक रूप है। इस प्रकार उनकी भक्ति केवल व्यक्तिगत मोक्ष की साधना नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के कल्याण की भावना से जुड़ी हुई है। उनकी सबदवाणी में जीव-दया, अहिंसा और सह-अस्तित्व के सिद्धांत पर्यावरणीय आध्यात्मिकता के आधारभूत तत्व हैं। वे मनुष्य को यह प्रेरणा देते हैं कि वह प्रकृति का शोषण करने के स्थान पर उसके साथ आत्मीय संबंध स्थापित करे। जब मनुष्य प्रकृति को अपने परिवार का अंग मानकर उसके प्रति संवेदनशील होता है, तभी वास्तविक आध्यात्मिक चेतना का विकास होता है।

आधुनिक युग में पर्यावरणीय संकट का एक प्रमुख कारण मनुष्य का प्रकृति से भावनात्मक और आध्यात्मिक संबंध टूटना भी है। गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ इस टूटे हुए संबंध को पुनः स्थापित करने की दिशा दिखाती हैं। वे प्रकृति की रक्षा को केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि आत्मिक साधना का माध्यम मानते हैं।

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पारिस्थितिक संस्कृति का स्वरूप

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय संत साहित्य की ऐसी अनुपम धरोहर है, जिसमें आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ प्रकृति के प्रति गहन संवेदनशीलता और उत्तरदायित्व का भाव विद्यमान है। उनकी वाणी में पारिस्थितिक संस्कृति का स्वरूप केवल पर्यावरण संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव, प्रकृति और समस्त जीव-जगत के मध्य संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने की व्यापक जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से उनकी सबदवाणी पर्यावरणीय मूल्यों पर आधारित एक सांस्कृतिक जीवन-पद्धति का प्रतिपादन करती है। गुरु जम्भेश्वर जी ने प्रकृति को मानव जीवन का

आधार मानते हुए उसके संरक्षण को सामाजिक और नैतिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों और जल जैसे प्राकृतिक तत्वों के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना विकसित करने पर बल दिया। उनके विचार में प्रकृति का संरक्षण केवल भौतिक आवश्यकता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक परंपरा और मानवीय सभ्यता की निरंतरता का भी आधार है। इसलिए उनकी शिक्षाओं में पर्यावरणीय चेतना जीवन के प्रत्येक व्यवहार से जुड़ जाती है। सबदवाणी में व्यक्त पारिस्थितिक संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष सह-अस्तित्व की भावना है। गुरु जम्भेश्वर जी ने मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका सहभागी माना। उनकी दृष्टि में समस्त जीव-जगत एक ही सृष्टि का अंग है और प्रत्येक प्राणी का अस्तित्व समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह विचार प्रकृति के प्रति करुणा, संवेदना और उत्तरदायित्व की ऐसी सांस्कृतिक चेतना विकसित करता है, जो पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती है। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज ने पारिस्थितिक संस्कृति को अपने दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बनाया। वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के संरक्षण, जल के संयमित उपयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार ने इस संस्कृति को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस पारिस्थितिक संस्कृति की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है, जिसने यह सिद्ध किया कि प्रकृति की रक्षा केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक प्रतिबद्धता भी है।

वर्तमान समय में जब पर्यावरणीय संकट निरंतर गहराता जा रहा है, तब गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पारिस्थितिक संस्कृति अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। उनकी शिक्षाएँ मनुष्य को प्रकृति के साथ संतुलित, संयमित और उत्तरदायी जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। इस प्रकार उनकी सबदवाणी पर्यावरण संरक्षण को केवल एक विचार नहीं, बल्कि जीवन-मूल्य और सांस्कृतिक आचरण के रूप में स्थापित करती है। यही विशेषता उनकी वाणी को भारतीय पर्यावरणीय चिंतन की एक विशिष्ट और कालजयी धरोहर बनाती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी केवल भक्ति साहित्य की रचना नहीं है, बल्कि उसमें प्रकृति, मानव और समस्त जीव-जगत के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने का गहन संदेश निहित है। उनकी वाणी में भक्ति का अर्थ केवल ईश्वर की उपासना नहीं, बल्कि जीव-दया, वृक्ष-संरक्षण, जल-संरक्षण, सह-अस्तित्व और नैतिक जीवन का पालन भी है। यही कारण है कि उनकी शिक्षाएँ आज भी समाज के लिए प्रेरणादायक बनी हुई हैं। इको-क्रिटिकल दृष्टिकोण से किए गए इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने समय में ही पर्यावरण संरक्षण की ऐसी जीवन-पद्धति प्रस्तुत की, जो आधुनिक पर्यावरणीय चिंतन से अत्यंत मेल खाती है। उन्होंने प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु नहीं माना, बल्कि जीवन का आधार और ईश्वर की पवित्र सृष्टि के रूप में स्वीकार किया। इसलिए उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों तथा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा को धार्मिक और नैतिक कर्तव्य बताया।

इस शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि गुरु जम्भेश्वर जी की भक्ति चेतना में करुणा, अहिंसा और लोकमंगल की भावना प्रमुख है। उनकी दृष्टि में सच्चा भक्त वही है जो समस्त प्राणियों के प्रति दया रखे और प्रकृति के संरक्षण में अपना योगदान दे। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज ने इन आदर्शों को अपने जीवन में अपनाया, जिसका सर्वोत्तम उदाहरण खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान है। यह घटना आज भी विश्व को पर्यावरण संरक्षण के लिए त्याग और समर्पण का संदेश देती है। अध्ययन के दौरान यह भी सामने आया कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में व्यक्त विचार आधुनिक इको-क्रिटिसिज्म तथा संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों की मूल भावना के निकट हैं। सीमित उपभोग, प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, जैव विविधता का संरक्षण तथा पर्यावरणीय उत्तरदायित्व जैसे सिद्धांत उनकी वाणी में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि उनका चिंतन अपने समय से कहीं आगे था और आज के वैश्विक पर्यावरणीय संकट में भी मार्गदर्शक बन सकता है।

यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय संत साहित्य में पर्यावरणीय चेतना

का एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्रोत है। उनकी शिक्षाएँ केवल धार्मिक विश्वास तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय मूल्यों का भी सशक्त आधार प्रस्तुत करती हैं। वर्तमान समय में जब पृथ्वी अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रही है, तब उनकी वाणी हमें प्रकृति के साथ संतुलित, संवेदनशील और उत्तरदायी जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

अंततः कहा जा सकता है कि गुरु जम्भेश्वर जी का जीवन-दर्शन और उनकी सबदवाणी मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का एक कालजयी संदेश है। उनका साहित्य भक्ति, पर्यावरणीय नैतिकता और लोककल्याण का ऐसा समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। इस दृष्टि से उनकी सबदवाणी का इको-क्रिटिकल अध्ययन हिंदी साहित्य और पर्यावरणीय विमर्श दोनों के लिए नई शोध-दिशाएँ खोलता है तथा भविष्य के अनुसंधान के लिए भी व्यापक संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

1 महेश्वरी, हरिराम। जम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य। कोलकाता बी. आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, 1970, पृ. 25 से 42।

2 सुथार, रोहतास कुमार। गुरु जम्भेश्वर वाणी दार्शनिक विश्लेषण। कुरुक्षेत्र, निर्मल बुक एजेंसी, 1994, पृ. 55 से 78।

3 जम्भसागर : श्री गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा उच्चारित सबदवाणी की हिंदी टीका। बीकानेर, जम्भाणी साहित्य अकादमी, 2023, पृ. 15 से 48।

4 बिश्नोई, साहिराम। संत जम्भोजी तथा बिश्नोई दर्शन। नई दिल्ली, अनंग प्रकाशन, 2020, पृ. 62 से 89।

5 मीणा, एस. के. संत साहित्य और गुरु जम्भोजी। नई दिल्ली, अनंग प्रकाशन, 2020, पृ. 40 से 67।

6 द्विवेदी, हजारीप्रसाद। कबीर। नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. 112 से 138।

7 चतुर्वेदी, परशुराम। संत साहित्य की रूपरेखा। प्रयागराज, लोकभारती प्रकाशन, 2017, पृ. 85 से 110।

8 शुक्ल, रामचंद्र। हिंदी साहित्य का इतिहास। वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा, 2020, पृ. 145 से 172।

9 उपाध्याय, बलदेव। भारतीय दर्शन। वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, 2018, पृ. 210 से 228।

10 गुप्त, गणपतिचंद्र। हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास। प्रयागराज, लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ. 190 से 215।

11 शर्मा, रामविलास। भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश। नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ. 98 से 120।

12 मिश्र, विद्यानिवास। भारतीय चिंतन की दिशा। नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2015, पृ. 135 से 158।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नागपुरी साहित्यकार मेघनाथ ओहदार के काव्य में रस-योजन

बबलु कुमार
वरिष्ठ शोधार्थी
स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग रांची विश्वविद्यालय रांची।
मो. न.- 7903687318
ईमेल - bkumar3940a@gmail.com

भूमिका

नागपुरी साहित्य के आधुनिक युग में जिन कवियों ने अपनी सशक्त रचनाओं से भाषा और साहित्य को नई ऊँचाई प्रदान की, उनमें मेघनाथ ओहदार का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति, लोकजीवन, भक्ति, प्रेम, राष्ट्रभक्ति और मानवीय मूल्यों का अत्यंत सहज एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। उनकी कविताएँ केवल भावों की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि समाज को सही दिशा देने वाली प्रेरणादायी रचनाएँ भी हैं। लोकभाषा की सहजता, जीवन के प्रति गहरी संवेदनशीलता तथा विविध रसों की सशक्त अभिव्यक्ति उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

मेघनाथ ओहदार : संक्षिप्त परिचय

मेघनाथ ओहदार का जन्म 21 जनवरी 1939 को वर्तमान खूँटी (पूर्व राँची) जिला के एक ग्रामीण परिवेश में हुआ। साधारण कृषक परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें बचपन से ही गाँव, खेत-खलिहान, प्रकृति और लोकसंस्कृति का निकट अनुभव प्राप्त हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में प्राप्त करने के बाद उन्होंने शिक्षक के रूप में कार्य किया। शिक्षा के साथ-साथ उन्होंने नागपुरी भाषा और साहित्य के संरक्षण तथा विकास के लिए निरंतर लेखन किया।

उनकी रचनाओं में झारखंड की संस्कृति, लोकविश्वास, कृषि जीवन, प्रकृति का सौंदर्य, राष्ट्रीय चेतना, भक्ति तथा मानवीय संवेदनाएँ अत्यंत स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। उनकी भाषा सरल, लोकप्रचलित तथा भावप्रधान है, जिससे उनकी कविताएँ सामान्य पाठकों के हृदय तक सहजता से पहुँचती हैं।

मेघनाथ ओहदार के काव्य में रस-योजना

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा माना गया है। मेघनाथ ओहदार की कविताओं में अनेक रसों का सुंदर समन्वय मिलता है। परिस्थितियों और विषयवस्तु के अनुसार वे विभिन्न रसों का प्रभावपूर्ण चित्रण करते हैं। उनके काव्य में प्रमुख रूप से भक्ति रस, शृंगार रस, वीर रस, शांत रस, करुण रस तथा वात्सल्य एवं लोकजीवन से जुड़े भाव दिखाई देते हैं।

1. भक्ति रस

मेघनाथ ओहदार के काव्य में भक्ति रस की प्रधानता दिखाई देती है। उनकी कविता 'भक्ति-महिमा' में ईश्वर के प्रति

अटूट श्रद्धा, समर्पण और विश्वास का चित्रण मिलता है। कवि यह बताते हैं कि सच्ची भक्ति ही मनुष्य को संकटों से मुक्ति दिलाती है।

उदाहरण :

''मानु मानु रे, भक्ति-महिमा भारी,
नरहरि प्रह्लाद उधारी रे, भक्ति महिमा भारी।।''

इन पंक्तियों में प्रह्लाद की रक्षा के माध्यम से ईश्वर की भक्तवत्सलता का चित्रण हुआ है, जिससे भक्ति रस की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

2. शृंगार रस

मेघनाथ ओहदार की कविता 'ब्रज-प्रेम' में शृंगार रस का अत्यंत मधुर एवं मर्यादित स्वरूप मिलता है। कृष्ण और ब्रजभूमि के प्रति प्रेम के माध्यम से उन्होंने संयोग-वियोग दोनों भावों को व्यक्त किया है।

उदाहरण :

''कहु तो जमुना तीरे, नीर बहे धीरे-धीरे,
दिल कुहुकत मोर, गुनी रे भाभी।।''

इन पंक्तियों में प्रिय के प्रति आकर्षण, स्मृति और प्रेम की कोमल अनुभूति व्यक्त हुई है, जो शृंगार रस का सुंदर उदाहरण है।

3. वीर रस

मेघनाथ ओहदार के काव्य में वीर रस राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना के साथ अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने स्वतंत्रता सेनानियों के साहस और त्याग का स्मरण कर देशभक्ति का संदेश दिया है।

उदाहरण :

'महाराणा बन गेलें, दुर्गावती जान देलें,
भगत के फाँसी पियारी रे, भक्ति-महिमा भारी।।''

इन पंक्तियों में देश के वीरों के त्याग और बलिदान का गौरवपूर्ण चित्रण है, जिससे वीर रस की सशक्त अनुभूति होती है।

4. शांत रस

मेघनाथ ओहदार के काव्य में शांत रस त्याग, सेवा और परोपकार की भावना के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। 'कामना' कविता में कवि आदर्श जीवन का संदेश देते हैं।

उदाहरण :

''छोटे-मोटे दीया होती, अंधार हहर लेती,
इंजोत करर देती, मनुख होली रे अंधार में रहली।।''

इन पंक्तियों में दीपक की तरह स्वयं जलकर दूसरों का जीवन प्रकाशित करने का संदेश दिया गया है, जिससे शांत रस की अनुभूति होती है।

5. करुण रस

मेघनाथ ओहदार की कविताओं में मानव-कल्याण और दूसरों के दुःख को दूर करने की भावना करुण रस को अभिव्यक्त करती है।

उदाहरण :

''बगीचा कर कोइल होती, कुहुक गीत गाती,
जगक दुख हहर लेती, मनुख होली रे मुरगा बइर गेली।।''

इन पंक्तियों में संसार के दुःख को दूर करने की भावना व्यक्त हुई है, जिससे करुण रस की अभिव्यक्ति होती है।

6. प्रकृति-प्रधान (आनंद/अद्‌भुत भाव)

मेघनाथ ओहदार प्रकृति के अत्यंत संवेदनशील कवि हैं। वर्षा ऋतु और हरियाली का चित्रण पाठक के मन में आनंद एवं विस्मय का भाव उत्पन्न करता है।

उदाहरण :

"मास आसार आय, मेघ मेड्डुराय,
घटा घेर देलक रे सोना, बूंद बरिसे झम-झम।।"

इन पंक्तियों में वर्षा ऋतु के आगमन और प्रकृति के सौंदर्य का सजीव चित्रण हुआ है, जिससे अद्‌भुत एवं आनंदमय अनुभूति उत्पन्न होती है।

7. लोक-उल्लास (हास्य एवं उत्साह का भाव)

मेघनाथ ओहदार की कविता 'हँसाजोरी' में झारखंड की लोकसंस्कृति, उत्सव और सामूहिक जीवन का उल्लासपूर्ण चित्रण मिलता है।

उदाहरण :

"ए...रे ए... रे खूबु खेलु खेलल हँसाजोरी,
जिनगी कर धुरी-धुरी, खेलु खेलल हँसाजोरी।।"

इन पंक्तियों में जीवन के उत्सव, सामूहिक आनंद और लोक-उल्लास का सुंदर चित्रण है।

रस-योजना की विशेषताएँ

मेघनाथ ओहदार के काव्य में रस-योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

भक्ति रस की प्रधानता।
शृंगार रस की मर्यादित एवं आध्यात्मिक अभिव्यक्ति।
राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत वीर रस।
सेवा, त्याग और नैतिकता से युक्त शांत रस।
मानवीय संवेदना से युक्त करुण रस।
प्रकृति और लोकजीवन के माध्यम से सौंदर्य एवं आनंद की अभिव्यक्ति।
सरल, सहज और लोकभाषा के कारण रसों का स्वाभाविक संप्रेषण।
भाव और भाषा का संतुलित समन्वय।

उपसंहार

मेघनाथ ओहदार का काव्य विविध रसों से समृद्ध है। उनकी रचनाओं में भक्ति रस प्रमुख होते हुए भी शृंगार, वीर, शांत और करुण रस का सुंदर समावेश मिलता है। 'भक्ति-महिमा' में श्रद्धा और समर्पण, 'ब्रज-प्रेम' में आध्यात्मिक प्रेम, 'आसार' में प्रकृति का सौंदर्य, 'कामना' में सेवा और जीवन-दर्शन तथा 'हँसाजोरी' में लोकजीवन का उल्लासकृइन सबके माध्यम से उन्होंने अपने काव्य को बहुआयामी बना दिया है।

उनकी रस-योजना कृत्रिम नहीं, बल्कि जीवनानुभव से उपजी हुई है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ पाठकों के हृदय को स्पर्श करती हैं और नागपुरी साहित्य में उन्हें एक विशिष्ट एवं सम्मानित स्थान प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ॰ बी॰ पी॰ केसरी नागपुरी कवि और उनके काव्य नागपुरी संस्थान पिठोरिया
2. डॉ॰ शकुंतला मिश्रा एवं उमेश नंद तिवारी मंजर भाग- 2 झारखंड झरोखा
3. डॉ॰ शकुंतला मिश्रा एवं उमेश नंद तिवारी मंजर भाग -1 झारखंड झरोखा
4. मेघनाथ ओहदार बनफूल, प्रकाशक देवेंद कुमार
5. मेघनाथ ओहदार, चापाफुल, नागपुरी प्रचारणी सभा
6. मेघनाथ ओहदार, मसाला

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

नागपुरी पद्य साहित्य : उद्‌भव, विकास, स्वरूप एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ

श्याम सुंदर यादव
वरिष्ठ शोधार्थी
स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची
मो. न.- 7979807610
ईमेल - shyamkumar9534@gmail.com

प्रस्तावना

नागपुरी पद्य साहित्य झारखंड की सांस्कृतिक चेतना, लोकजीवन और सामाजिक संवेदना का जीवंत दस्तावेज है। यह नागपुरी साहित्य का सबसे प्राचीन, समृद्ध और लोकप्रिय अंग माना जाता है। नागपुरी के गीत, भजन, महाकाव्य, खंडकाव्य, लोकगीत, फगुआ, झूमर, करम गीत और आधुनिक कविताएँ मिलकर नागपुरी पद्य साहित्य का निर्माण करती हैं।

नागपुरी गीतों की लोकप्रियता इतनी व्यापक है कि आज भी हजारों गीत जन-जन के कंठ में जीवित हैं। इन गीतों में राग, लय, रस, प्रकृति, प्रेम, भक्ति, लोकजीवन, संघर्ष और सामाजिक चेतना का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। यही कारण है कि प्रो. केशरी कुमार ने नागपुरी को 'गीतों की रानी' कहा है।

नागपुरी पद्य साहित्य का उद्‌भव

नागपुरी पद्य साहित्य की जड़ें लोकसाहित्य में निहित हैं। इसका प्रारंभ आदिकाल से ही वन-झाड़, पहाड़-पर्वत, नदी-नालों और ग्रामीण जीवन के बीच हुआ। प्रारंभिक काल में यह मौखिक परंपरा के रूप में विकसित हुआ।

नागपुरी छोटानागपुर के नागवंशी शासकों की राजभाषा थी। किसी भी भाषा का राजकाज की भाषा बनना उसकी समृद्ध साहित्यिक परंपरा का प्रमाण माना जाता है। यद्यपि प्रारंभिक लिखित सामग्री कम उपलब्ध है, फिर भी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर नागपुरी साहित्य का इतिहास अत्यंत प्राचीन माना जाता है। जहां तक बात करें शिष्ट साहित्य की तो इसका प्रारंभ 1626 ई० के आस-पास माना जाता है, और प्रथम ज्ञात कवि के रूप में नागवंशी राज के 50 वे शासक रघुनाथ नृपति को माना जाता है। वहीं से नागपुरी के पद साहित्य का विकास भी प्रारंभ होता है।

वैष्णव प्रभाव और भक्ति काव्य

झारखंड में भक्ति परंपरा का विकास 9वीं-10वीं शताब्दी से प्रारंभ माना जाता है। यहाँ शिव, दुर्गा, काली, सरस्वती और सूर्य की पूजा प्रचलित रही। बाद में वैष्णव धर्म का प्रभाव बढ़ा।

1401 ई. में हापामुनी में विष्णु मूर्ति की स्थापना तथा 1473 ई. में कोराम्बे में वासुदेव राय की स्थापना हुई। 1485

ई. में महाप्रभु चौतन्य के झारखंड आगमन के बाद वैष्णव भक्ति का प्रभाव और अधिक बढ़ गया।

इस प्रकार नागपुरी भक्ति काव्य दो धाराओं में विकसित हुआ :

1. राम काव्य धारा
2. कृष्ण काव्य धारा

प्रारंभिक नागपुरी कवि

नागपुरी के प्रथम ज्ञात कवि रघुनाथ नृपति माने जाते हैं। वे नागवंशी राजा थे तथा उनका शासनकाल लगभग 1626 ई. से 1668 ई. तक माना जाता है। उनकी कविताओं में राधा-कृष्ण प्रेम, रासलीला और विरह का सुंदर चित्रण मिलता है।

रघुनाथ नृपति के समकालीन कवियों में प्रमुख हैं–

राजा दलेल सिंह
पदमन दास
रुद्र सिंह

इनकी रचनाओं में शैव, शाक्त और वैष्णव भक्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

भक्ति परंपरा के प्रमुख कवि

नागपुरी भक्ति साहित्य को समृद्ध करने वाले प्रमुख कवि हैं–

रघुनाथ नृपति (1600 - 1700 ई.)
दलेल सिंह (1700 - 1800 ई.)
श्याम सुंदर
उदयनाथ शाही
भूपति दीपनाथ शाही
नारायण सिंह
बिनंद सिंह
हरिनाथ सिंह
महेश राम देवघरिया
गणेश राम देवघरिया

1800 - 1850 ई. के प्रमुख कवि–

भूपति गोविंद नाथ
बरजू राम
हनुमान सिंह
बंधु लोहार

बरजू राम और हनुमान सिंह का योगदान

बरजू राम और हनुमान सिंह नागपुरी साहित्य के अत्यंत प्रतिष्ठित कवि माने जाते हैं।

बरजू राम का 'लरका खंड' (महामाया खंड) अत्यंत प्रसिद्ध है। उनके गीतों में भक्ति, वैराग्य और समकालीन समाज का चित्रण मिलता है। उनकी भाषा ठेठ नागपुरी है, यद्यपि कहीं-कहीं हिंदी और बंगला का प्रभाव भी दिखाई देता है।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं–

गंगा उत्पत्ति, रघुनाथ खंड, विंध्याचल खंड, नारद मोह, दशावतारी, चौंतीसा आदी।

बरजू राम ने लगभग 18,000 गीतों की रचना की तथा हनुमान सिंह ने एक लाख से अधिक गीतों की रचना की बताई जाती है।

घासी राम : नागपुरी के जनकवि

नागपुरी साहित्य में घासी राम का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उन्हें नागपुरी साहित्य का जनकवि कहा जाता है।
उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं–
नागवंशावली झूमर
उषा हरण
दुर्गा सप्तशती (अनुवाद)
सुदामा चरित
उनकी रचनाओं में कृष्ण भक्ति और राम भक्ति दोनों का प्रभाव मिलता है। उनकी भाषा सरल, सहज और लोकजीवन से जुड़ी हुई है। उनके लगभग 268 गीत नागपुरी संस्थान में उपलब्ध बताए जाते हैं।

नागपुरी गेय साहित्य की विशेषताएँ

नागपुरी गेय साहित्य में विभिन्न रसों का सुंदर समावेश मिलता है–
शृंगार रस
शांत रस
करुण रस
वीर रस
नागपुरी गीतों की अपनी विशिष्ट लय, राग, सुर और ताल है। इसके पद प्रायः छोटे होते हैं। होली और फगुआ गीतों में दोहा, चौपाई और छंदों का भी प्रयोग मिलता है।

कबीर पंथ का प्रभाव

नागपुरी पद्य साहित्य में कबीर पंथ का भी महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। इस परंपरा के प्रमुख कवि हैं–
सोबरन साय
महंत घासी
रूंगटू मलार
अर्जुन सिंह
विश्वनाथ धनुक
नारायण चमर
मंजित राम
विसेस राम
बोधन
इन कवियों ने निर्गुण भक्ति की परंपरा को आगे बढ़ाया।

धनीराम बख्शी का योगदान

धनीराम बख्शी को नागपुरी का भारतेंदु कहा जाता है।

स्वतंत्रता के बाद लगभग 1950 ई. में उन्होंने चाईबासा स्थित अपने हितैषी कार्यालय के माध्यम से नागपुरी भाषा और साहित्य के विकास का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने पर्व-त्योहार, विवाह, श्रमगीत और लोकसंस्कृति से संबंधित अनेक पुस्तकों का प्रकाशन कराया।

उन्होंने गाँव-गाँव जाकर बिना किसी स्वार्थ के नागपुरी साहित्य का प्रचार-प्रसार किया और नागपुरी भाषा को जन-जन तक पहुँचाया।

नागपुरी पद्य साहित्य के विविध रूप

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नागपुरी पद्य साहित्य के दो प्रमुख रूप हैं–

1. प्रबंध काव्य

जिसमें कथा का क्रमबद्ध विकास होता है।

इसके दो भेद हैं–

महाकाव्य

खंडकाव्य

नागपुरी में महाकाव्य हो या खंडकाव्य सभी प्रकार की रचनाएं मिलती हैं। नागपुरी में दो महाकाव्य हमें प्राप्त है- पहला रामायणी सितायन जिसके लेखक है मृत्युंजय नाथ शर्मा तथा दूसरी महाकाव्य है अबीनासी घासी जिससे रचनाकार डॉ० कृष्ण प्रसाद साहू कलाधर है। नागपुरी खंड काव्य में शारदा प्रसाद शर्मा की विप्लवी महान, भगवान एक पूरब के, सहनी उपेंद्र पाल नहन की मेवाड़ केसरी, बलदेव साहू की लव-कुश चरित, पौराणिक गौरीनंदन शर्मा की विर राघव चरित्त, दृगपाल राम देवघरीया की मधु-कलश, कृष्ण प्रसाद साहू कलाधर की ईशु चरित आदि प्रमुख हैं।

2. मुक्तक काव्य

ऐसी स्वतंत्र रचनाएँ जो किसी एक कथा से बंधी नहीं होतीं। नागपुरी में ऐसी असंख्य रचनाएं मिलती हैं।

इसके अतिरिक्त नागपुरी पद्य साहित्य के अन्य रूप हैंरू -

लोकगीत, भजन, झूमर, फगुआ गीत, करम गीत, श्रमगीत, विरह गीत, देशभक्ति गीत, सामाजिक गीत, आधुनिक कविता, आधुनिक नागपुरी पद्य साहित्य

1960 ई. के बाद नागपुरी साहित्य में आधुनिक काल का आरंभ माना जाता है।

आधुनिक नागपुरी कविता के प्रवर्तक प्रफुल्ल कुमार राय माने जाते हैं। उन्होंने अपनी कविता 'रिंगचिंगिया' के माध्यम से आधुनिक नागपुरी कविता को स्थापित किया।

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं–

रिंगचिंगिया, बहथी-बोहाथी, अंधार राती

उन्होंने मुक्त छंद और नवीन काव्य शिल्प का प्रयोग किया। उनके साहित्य में नया शिल्प, नया बिंब, नई भावभूमि, नया परिवेश और नई चेतना दिखाई देती है।

इसी क्रम में नागपुरी पद साहित्य के विकास में और भी साहित्यकार सामने आए।

आधुनिक साहित्यकार और उनकी रचनाएँ

डॉ. केशरी : सत्यार्चन

डॉ. रामदयाल मुंडा : फिन भेट आउर दूसर न गीत

लाल रण विजय नाथ शाहदेव : खोथा, पूजा कर फूल, जागी जवानी चमकी बिजुरी

प्रमोद कुमार राय : बीता भइर ठांव

शिव अवतार चौधरी : कुछ ओस कुछ अंगोर
मृत्युंजय नाथ शर्मा : रामायणी सितायन
शारदा प्रसाद शर्मा : भगवान एक पूरब के,
विप्लवी महान, गीत कुछ आइज के कुछ काइल के, मेघ गीत, पतई एक कोयनार के,
सीता कुछ मीठा, समकालीन नागपुरी कवि
नागपुरी को आधुनिकता की ओर ले जाने वाले प्रमुख कवि हैं–

डॉ. वासंती, गिरिराज, बिंदेश्वरी मिश्र, प्रमोद कुमार राय, क्षितिज कुमार राय, नंदू राम, कालीश्वर ठाकुर, रविन्द्र नाथ राय, मुकुंद राय, नईमुद्दीन मिरदाहा, जगनिवास तिवारी, सुरेश कुमार राय, जयप्रकाश राय, खालिक अहमद, त्रिवेणी नाथ साहू, उमेश नंद तिवारी, सविता केशरी, भरत महतो, महेंद्र सिंह मणि, सुधीर कुमार राय, शकुंतला मिश्र।

इनकी रचनाओं में झारखंड की सुंदरता, मिट्टी की गंध, अस्मिता, शोषण-विरोध, विस्थापन, सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक व्यंग्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

नागपुरी पद्य साहित्य की विशेषताएँ

1. लोकजीवन का सजीव चित्रण।
2. प्रकृति का सुंदर वर्णन।
3. भक्ति भावना की प्रधानता।
4. झारखंडी संस्कृति का संरक्षण।
5. सामाजिक चेतना और जनजागरण।
6. शोषण और अन्याय के विरुद्ध आवाज।
7. राजनीतिक व्यंग्य।
8. सरल और संगीतात्मक भाषा।
9. झारखंडी अस्मिता का चित्रण।
10. आधुनिक प्रयोगधर्मिता।

उपसंहार

नागपुरी पद्य साहित्य झारखंड की आत्मा का साहित्य है। इसमें लोकसंस्कृति, भक्ति, प्रकृति, सामाजिक संघर्ष, जनचेतना और आधुनिकता का सुंदर समन्वय मिलता है। रघुनाथ नृपति से लेकर प्रफुल्ल कुमार राय और समकालीन कवियों तक नागपुरी पद्य साहित्य निरंतर विकसित होता रहा है। यह केवल साहित्य नहीं, बल्कि झारखंड की सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक इतिहास का जीवंत दस्तावेज है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ० राम प्रसाद, स्वातंत्र्योत्तर नागपुरी साहित्य, झारखंड झरोखा रांची
2. डॉ० उमेश नंद तिवारी, आधुनिक नागपुरी साहित्य, झारखंड झरोखा रांची
3. डॉ० गुलाब राय, काव्य के तत्व और आयाम
4. डॉ० विशेश्वर प्रसाद केसरी, नागपुरी कवि एवं उनके काव्य, नागपुरी संस्थान पिठौरिया
5. डॉ० श्रावण कुमार गोस्वामी, नागपुरी शिष्ट साहित्य

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

नागपुरी काव्य में सौंदर्यबोध

श्रीकांत गोप
वरीष्ठ शोधार्थी
स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग रांची विश्वविद्यालय रांची।
मो. न.- 7903076197
ईमेल - shrikantgope007@gmail.com

प्रस्तावना

साहित्य का प्रमुख उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं, बल्कि जीवन, समाज, प्रकृति तथा संस्कृति के विविध रूपों का सौंदर्यपूर्ण चित्रण करना भी है। इसी कारण प्रत्येक साहित्य में सौंदर्यबोध का विशिष्ट स्थान होता है। नागपुरी काव्य भी इस दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। इसमें प्रकृति, लोकजीवन, प्रेम, विरह, भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक अस्मिता, मानवीय मूल्य तथा पर्यावरण चेतना का अत्यंत सजीव और कलात्मक चित्रण मिलता है। नागपुरी कवियों ने झारखंड की धरती, लोकसंस्कृति तथा जनजीवन को काव्य का आधार बनाकर सौंदर्य की एक विशिष्ट लोकधर्मी परंपरा विकसित की है।

प्रस्तुत लेख में नागपुरी के चयनित कविताओं के आधार पर नागपुरी काव्य में सौंदर्यबोध का आकलन किया गया है।

1. प्रकृति सौंदर्य

नागपुरी काव्य में प्रकृति सबसे महत्वपूर्ण सौंदर्य तत्व है। झारखंड की वर्षा, जंगल, नदी, पर्वत, खेत, हरियाली तथा ऋतु परिवर्तन का अत्यंत मनोहारी चित्रण मिलता है।

'पोड़िलो बरखा रीतु' कविता में कवि रघुनाथ नृपति ने वर्षा ऋतु का रमणीय चित्रण किया है–

''गरजे गगने घटा, बिजुली चमके छटा,
गुह भेल सरस कानन।''

यहाँ बादलों की गर्जना, बिजली की चमक तथा हरियाली केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं हैं, बल्कि विरही हृदय की संवेदना को भी व्यक्त करते हैं। प्रकृति यहाँ भावों की सहचरी बन जाती है।

2. करुण एवं विरह सौंदर्य

नागपुरी काव्य में विरह का सौंदर्य अत्यंत मार्मिक है।

'पोड़िलो बरखा रीतु' में नायिका प्रिय के बिना जीवन को अधूरा अनुभव करती है–

'पिया बिनु बाँचे ना जीवन।'

प्रकृति का प्रत्येक दृश्य उसे प्रिय की याद दिलाता है। इस प्रकार बाह्य सौंदर्य और अंतर्मन की पीड़ा का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

3. भक्ति सौंदर्य

''जनमे अवध रघुनंदन'' जैसे गीत में हनुमान सिंह ने भक्ति सौंदर्य का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण किया है।

जनमे अवध रघुनंदन, सुनु सयेल कुमारी। धु०।
रिसि संग लागे ताडुका मारे, तारे गौतम नारी।1।
जाये मिथिला धनु तोरेउ, ब्याही जनक दुलारी।2।

राम जन्म, सीता स्वयंवर, वनगमन तथा हनुमान की भक्ति लोकभाषा में अत्यंत सहज ढंग से व्यक्त हुई है। इन गीतों में भक्ति केवल धार्मिक नहीं, बल्कि लोकजीवन की सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक बन जाती है।

4. सांस्कृतिक सौंदर्य

'देस नागपुरे' कविता नागपुरी संस्कृति की गौरवगाथा है।

कवि प्रफुल्ल कुमार राय ने झारखंड की नदियों, पर्वतों, खनिज संपदा, धार्मिक स्थलों तथा विभिन्न जातियों की एकता का चित्रण करता है।

''जाति बहु भाँति, काम करयं पाँतापाँति।''

यहाँ विविधता में एकता भारतीय संस्कृति के सौंदर्य को अभिव्यक्त करती है।

5. लोकजीवन का सौंदर्य

नागपुरी कविता की आत्मा उसका लोकजीवन है।

'गाँव कर साँझ' कविता में कवि पांडेय रवीन्द्रनाथ राय ने ग्रामीण जीवन के बदलते स्वरूप का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। पहले गाँव की हरियाली, जंगल, पक्षियों का कलरव और सामूहिक जीवन थाय आज उसके स्थान पर उजड़ते जंगल, खनन और वीरानी दिखाई देती है।

''गाँव कर सांझ जइसे कोइ बांझ।
मुड़ली टोंगरी उजड़ल बन पतरा मोइर गेलयँ सभे मछरी और खखरा।
उटइक के धरती उकर चीरेला सीना तेउ नइ पावे भइर पेट कोनों दिना।''

कवि गाँव की सांझ के माध्यम से पूरे ग्रामीण समाज की बदलती संवेदनाओं को व्यक्त करता है। यह लोकजीवन के सौंदर्य के साथ-साथ उसके क्षरण की भी अभिव्यक्ति है।

6. पर्यावरण सौंदर्य एवं पर्यावरण चेतना

'तुलसी आउर केक्टस' नागपुरी साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीकात्मक कविता है। जिसके लेखक धनेन्द्र प्रवाही है।

तुलसी भारतीय संस्कृति, पवित्रता, प्रेम और जीवन मूल्यों का प्रतीक है, जबकि केक्टस आधुनिक भौतिकता, स्वार्थ, कठोरता और संवेदनहीनता का प्रतीक है।

कवि दिखाता है कि जिस आँगन में कभी तुलसी की पूजा होती थी, वहाँ आज काँटेदार केक्टस उग आए हैं।

अंगना के बीचोबीच ऊँच चउतरा बनायके पवितर मन से रोपल तुलसी कर बुदा नेमहा पानी ढाइर के जियाल मोर पिरीत मोर सरधान के ले गेलक उखराय के!

18 ला दुवाइर केर दुनों अर्रा
कुछ काँटा/उघरा-लंगटा
रोइप देलक कैकटस
के हर आइन के!

यह कविता केवल वनस्पतियों का वर्णन नहीं बल्कि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

7. राष्ट्रीय चेतना का सौंदर्य

'आजादी खातिर' कविता वीर रस तथा राष्ट्रीय चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

कवि लाल रणविजय नाथ शाहदेव अंग्रेजी शासन के अत्याचारों का वर्णन करते हुए स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का आह्वान करते है।

''भेल तैयार आजादी खातिर।''

यहाँ स्वतंत्रता केवल राजनीतिक उद्देश्य नहीं बल्कि राष्ट्रीय स्वाभिमान का सौंदर्य है।

8. सामाजिक यथार्थ का सौंदर्य

'गुंजे बी.डी.ओ. के नाम' कविता में कवि नईमुद्दीन ने सरकारी भ्रष्टाचार, योजनाओं की विफलता तथा ग्रामीण प्रशासन की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य किया गया है।

कवि यथार्थ का चित्रण करते हुए सामाजिक चेतना उत्पन्न करता है।

''गूँजे बी.डी.ओ. के नाम, काम खुले घूमा धाम, गाँवे गाँवे रास्ता बनावयँ गोइ साजइन मिली जुली रूपीया गनावयँ गोइ साजइन। ध्रु०।

देहु बी.डी.ओ. साहब कुछ तो रूपीया, काम करी कुली केर कलपत हिया, गोइ साजइन कोइ नहीं पंथ के चलइया, गोइ साजइन।1।''

यहाँ सौंदर्य केवल प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक जागरूकता में निहित है।

9. मानवीय चेतना और परिवर्तन का सौंदर्य

'फिन हियाँ आऊँ' कविता में कवि समाज परिवर्तन का संदेश देता है।

कवि प्रेम, साहित्य, क्रांति तथा मानवता के माध्यम से नए समाज की कल्पना करता है।

''सुतल समाज लाइत माइर के उठामूँ।''

यह कविता आशा, संघर्ष तथा नवजागरण के सौंदर्य को अभिव्यक्त करती है।

10. करुण यथार्थ का सौंदर्य

''नम रस बसु'' कविता अकाल, सूखा और भूख की भीषण त्रासदी का चित्रण करती है।

''नभ रस बसु ससि प्रचंड,
चलत पंथ लागत डंड,
बरखा नहीं करे,
संबत साठि साल भेल अकाल
काल कइसे टरे हो,
बहुत जीउ अन बिना मरे। ध्रु०।''

धरती की प्यास, सूखी नदियाँ तथा भूख से पीड़ित जनता का चित्र पाठक के मन में करुणा उत्पन्न करता है।

कवि दुःख को भी सौंदर्यात्मक अनुभूति में बदल देता है।

11. स्त्री एवं मातृत्व का सौंदर्य

धनेंद्र प्रवाही द्वारा लिखित ''लोर'' कविता में मातृत्व, स्त्री संघर्ष तथा सामाजिक पीड़ा का अत्यंत संवेदनशील चित्रण मिलता है।

नागपुरी काव्य में स्त्री केवल प्रेमिका नहीं बल्कि संघर्ष, त्याग, धैर्य तथा जीवन-संरक्षण की प्रतीक है।

यह मानवीय सौंदर्य का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है।

12. प्रतीकात्मक सौंदर्य

नागपुरी कवियों ने अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है—

तुलसी : भारतीय संस्कृति

केक्टस : आधुनिक स्वार्थ

वर्षा : प्रेम और विरह
गाँव की साँझ : बदलता समाज
जंगल : जीवन
सूखी धरती : मानवीय पीड़ा
प्रकाश : आशा
अंधकार : सामाजिक पतन
इन प्रतीकों के माध्यम से कविता अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

13. भाषा एवं शैली का सौंदर्य

नागपुरी काव्य की भाषा अत्यंत सहज, मधुर तथा लोकजीवन के निकट है।
इन कविताओं में :
लोकभाषा की मिठास, गीतात्मकता, लयात्मकता, अनुप्रास, पुनरुक्ति, बिंब योजना, प्रतीक योजना? लोकधुनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।
यही विशेषताएँ नागपुरी कविता को लोकमानस से जोड़ती हैं।

14. रस-सौंदर्य

इन कविताओं में अनेक रसों का सुंदर समन्वय मिलता है—
शृंगार रस : पोड़िलो बरखा रीतु
करुण रस : नम रस बसु, गाँव कर साँझ
भक्ति रस : जनमे अवध रघुनंदन
वीर रस : आजादी खातिर
हास्य-व्यंग्य रस : गुंजे बी.डी.ओ. के नाम
शांत रस : देस नागपुरे
वात्सल्य एवं मानवीय रस : लोर
प्रतीकात्मक एवं चिंतनपरक सौंदर्य : तुलसी आउर केक्टस

निष्कर्ष

नागपुरी काव्य का सौंदर्यबोध अत्यंत व्यापक, जीवनमूलक तथा लोकधर्मी है। यह केवल प्रकृति की रमणीयता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक अस्मिता, पर्यावरण चेतना, राष्ट्रीय भावना, मानवीय संवेदना, भक्ति, प्रेम और लोकजीवन के समग्र अनुभव को अपने भीतर समेटे हुए है। 'पोड़िलो बरखा रीतु' में प्रकृति और विरह का सौंदर्य, 'नम रस बसु' में करुण यथार्थ, 'जनमे अवध रघुनंदन' में भक्ति, 'देस नागपुरे' में सांस्कृतिक गौरव, 'गुंजे बी.डी.ओ. के नाम' में सामाजिक व्यंग्य, 'फिन हियाँ आऊँ' में नवजागरण, 'आजादी खातिर' में राष्ट्रप्रेम, 'तुलसी आउर केक्टस' में सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय चेतना, 'गाँव कर साँझ' में बदलते ग्रामीण जीवन की पीड़ा तथा 'लोर' में स्त्री-संवेदना और मानवीय करुणा का प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

इस प्रकार नागपुरी काव्य में सौंदर्यबोध बहुआयामी है। यह लोकसंस्कृति और जीवन के प्रत्येक पक्ष को कलात्मक रूप देकर पाठक को केवल आनंद ही नहीं देता, बल्कि उसे समाज, संस्कृति, प्रकृति और मानवता के प्रति संवेदनशील भी बनाता है। यही विशेषता नागपुरी काव्य को भारतीय लोकसाहित्य की समृद्ध परंपरा में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ० विशेश्वर प्रसाद केसरी, नागपुरी कवि एवं उनके काव्य, नागपुरी संस्थान पिठौरिया
2. डॉ० शकुंतला मिश्र, नागपुरी साहित्यकार आउर कलाकार, झारखंड झरोखा रांची
3. डॉ० कृष्ण कलाधर और डॉ० शकुंतला मिश्र, स्वर्ण मंजूषा, झारखंड झरोखा रांची
4. मनपुरन नायक, नागपुरी गीत राग एवं ताल का विश्लेषणात्मक अध्ययन, झारखंड झरोखा रांची
5. डॉ० विशेश्वर प्रसाद केसरी, नागपुरी भाषा : उद्‌गम और विकास, नागपुरी संस्थान पिठौरिया
6. डॉ० शकुंतला मिश्र एवं डॉ० उमेश नंद तिवारी, मंजर, झारखंड झरोखा रांची।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

अलवर राज्य की स्थापना का ऐतिहासिक अध्ययन

सौरभ बसवाल
शोधार्थी (इतिहास)

प्रस्तावना—राजस्थान का पूर्वी हिस्सा राजपूताना के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस क्षेत्र के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालने पर पाते हैं कि यहां आदि मानव ने अपनी विकास यात्रा शुरू की थी। इसके प्रमाण टहडीकर एवं मानसूर के हरसौरा (काला पहाड़) के शैल चित्रों में मिलते हैं। यह क्षेत्र पूरा सम्पदा एवं कला से परिपूर्ण है। महाभारत कालीन अवशेष तालवृक्ष व सरिस्का के पाण्डुपोल से प्राप्त होते हैं जबकि विराट नगर उस समय राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बिन्दु था। विराटनगर में खोजे गए मौर्य कालीन शिलालेख एवं बौद्ध स्तूप से यह प्रमाणित होता है कि यहां बौद्ध संस्कृति का प्रभाव लम्बे समय तक रहा है। इसके ठोस प्रमाण के रूप में वहां की बीजक पहाड़ी पर बौद्ध स्तूप का ढाँचा वर्तमान में भी देखा जा सकता है। इस क्षेत्र के उत्खनन में तांबे के बने हुए मछली पकड़ने के आँकड़े मिले हैं जो मछलियों की बहुलता की ओर संकेत करते हैं। साथ ही इस क्षेत्र का नाम मत्स्य भी इसी कारण पड़ा होगा, इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है। टहडीकर की पहाड़ी की एक कन्दरा में विशाल मछली का चित्रांकन भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है। पुराणों एवं महाकाव्यों में भी मत्स्य जनपद का उल्लेख मिलता है। यहां युनानियों को पराजित कर शकों ने उज्जयिनी, मथुरा तथा तक्षशिला में अपने केन्द्र बनाये। यहां की खुदाई से 'मेवक क्षत्रप' का एक सिक्का मिलना भी शकों के प्रभाव को प्रमाणित करता है। दूसरी सदी से 13वीं सदी तक इस क्षेत्र पर गुर्जर प्रतिहारों का शासन रहा है जिसके प्रमाण मत्स्यपुरी (माचाड़ी), देवती, राजगढ़, राजौरगढ़ आदि में कुओं, बावड़ियों, बांध, मंदिर, शिलालेख, महलों के अवशेष के रूप में मिलते हैं। इसी समय इस क्षेत्र के कई स्थल मीणा राज्यों के केन्द्र थे। इस क्षेत्र को दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने भी आक्रान्त किया। दिल्ली पर मुगल शासन कायम होने के बाद भी न केवल यह क्षेत्र बल्कि राजपूताना की महत्वपूर्ण रियासतें भी उसके अधीन हो गई। इसके बाद निकुम्भ क्षत्रियों के अधीन भी यह क्षेत्र रहा जिन्हें हसन खां मेवाती ने सत्ता हथिया ली और काफी समय तक राज्य किया।

अलवर राज्य की स्थापना से पूर्व यह क्षेत्र मराठों तथा भरतपुर के जाट शासकों से भी आक्रान्त रहा। नरूका जागीरदार कल्याणसिंह ने जयपुर राज्य के अधीन ढाई गांव की जागीर के साथ माचाड़ी से अपना शासन प्रारंभ किया। बाद में इस जागीर का विस्तार करते हुए राव राजा प्रतापसिंह ने 1775 ई. में भरतपुर के शासक से अलवर का किला लेकर स्वतंत्र अलवर राज्य की स्थापना की। अलवर की स्थापना के पश्चात नरूका शासकों ने इस राज्य को न केवल राजनीतिक ऊँचाइयों पर पहुँचाया, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध भी किया। अलवर राज्य में एक अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था उनके द्वारा कायम की गई। अलवर राज्य 18 मार्च 1948 को अपने निकटतम पड़ोसी राज्य भरतपुर, धौलपुर और करौली के साथ संघ में शामिल हुआ। अलवर 27°04" से 28°04" उत्तरी अक्षांश एवं 76°04' से 77°13' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस राज्य के उत्तर में पंजाब का गुड़गांव जिला, जयपुर राज्य की कोटकासिम तहसील एवं नाभा राज्य का बावल जिला था। इसके उत्तर-पश्चिम में पटियाला राज्य का नारनौल जिला है। इसके पूर्व में भरतपुर एवं दक्षिण व पश्चिम में जयपुर राज्य स्थित था। वर्तमान में भौगोलिक आधार पर अलवर जिले के उत्तर में हरियाणा राज्य का भू-भाग एवं दक्षिण में इसकी सीमा राज्य के दौसा एवं

जयपुर जिलों को स्पर्श करती है। इसके पूर्व में भरतपुर तथा पश्चिम में जयपुर जिले की सीमा लगती है। अलवर जिले को राजस्थान के 'सिंहद्वार' के नाम से भी पहचाना जाता है, जो राजस्थान की राजधानी जयपुर तथा भारत की राजधानी नई दिल्ली के मध्य राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 08 पर अरावली पर्वतमाला की गोद में बसा हुआ है। अरावली पर्वत-श्रृंखला की तलहटी में बसा होने से अलवर पूर्वी राजस्थान के 'कश्मीर' नाम से भी विख्यात है। अलवर जिला उत्तर से दक्षिण में 80 मील तथा पूर्व से पश्चिम में 60 मील की दूरी तक फैला हुआ है। सामान्य रूप से इस जिले की लम्बाई चौड़ाई की तुलना में अधिक है और इसका आकार एक खड़े आयात के समान है। यह क्षेत्र राज्य के अर्द्धशुष्क जलवायु क्षेत्र में आता है। समुद्र तल से अलवर जिले की औसत ऊँचाई 268 मीटर है। अलवर जिले की जनसंख्या 2011 में की जनगणना के अनुसार 3671999 है जो राजस्थान की कुल जनसंख्या का 5.29 प्रतिशत है। जनसंख्या की दृष्टि से अलवर जिला जयपुर के बाद दूसरे स्थान पर आता है। यहाँ की मुख्य नदी साबी व रूपारेल है। अर्द्धचावल की पहाड़ियाँ, राजस्थान का सीरीसतान और उत्तर प्रदेश जैसी समतल भूमि, सभी में दृश्य अलवर के भौगोलिक क्षेत्र में हैं।

अलवर का विस्तार, राजपूताना काल से वर्तमान तक

इस राज्य के 7 मुख्य भाग हैं—नरूखण्ड, राजावाटी, वाल, राठ और मेवात, नेहड़ा और काठ।

नरूखण्ड—नढ़खण्ड में ज्यादातर नरूका राजपूत हैं। यह राज्य का दक्षिणी भाग है और इसका क्षेत्रफल लगभग 755 वर्ग मील है।

राजावाटी—राजावाटी में ज्यादातर जयपुर के राजावत राजपूत रहते हैं। यह दक्षिण पश्चिमी भाग है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग 365 वर्गमील है।

वालपहाड़ी—वाल पहाड़ी क्षेत्र है और साबी नदी तक पश्चिम की ओर चला गया है। इसका क्षेत्रफल लगभग 226 वर्गमील है।

राठ क्षेत्र—राव क्षेत्र उत्तर पूर्व में है। इसका क्षेत्रफल लगभग 563 वर्ग मील है। इसमें ज्यादातर चोहान राजपूत रहते हैं।

मेवात क्षेत्र—मेवात क्षेत्र रूपारेल नदी से लेकर भरतपुर में डीग तक और उत्तर में रेवाड़ी तक फैला हुआ है। इसका क्षेत्रफल 1170 वर्गमील है। जिसमें मुख्यतः मेव लोग रहते हैं। अलवर नगर इसी क्षेत्र में स्थित है।

काठेड क्षेत्र—कठूमर परगना का पूर्वी भाग काठ क्षेत्र कहलाता है।

नेहड़ा क्षेत्र—थानागाजी के पश्चिम भाग को नेहड़ा कहा जाता है।

क्षेत्रफल—भारतीय भू-सर्वेक्षण विभाग के अनुसार जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8382 वर्ग कि.मी. है, जो कि राजस्थान के क्षेत्रफल का 2.45 प्रतिशत है। ऐतिहासिक आधार पर अलवर राज्य का क्षेत्रफल 3217 वर्ग मील था जो राजपूताना (राजस्थान) राज्य के सातवें स्थान पर आता था।

प्रशासनिक क्षेत्र—प्रशासनिक दृष्टि से अलवर जिला 2001-02 तक 12 उपखण्ड थे। वर्ष 2015-16 में इनकी संख्या बढ़कर 14 हो गई। यहाँ 16 तहसील, 9 उपतहसील व 512 ग्राम पंचायतें हैं।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

मत्स्य प्रदेश का इतिहास बहु-प्रचलित रहा है। इसकी भौगोलिक सीमाएँ भी समय के साथ बदलती रही हैं। पुरातात्विक एवं पौराणिक तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव सभ्यता के विकास चरण में इस क्षेत्र का काफी सहयोग रहा है। मत्स्य शब्द का उल्लेख अलग-अलग ऐतिहासिक स्रोतों में भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ है। पुरातत्ववेत्ता जनरल कनिंघम ने अलवर प्रदेश का प्राचीन नाम मत्स्य देश बताया है। शूरसेनकाः एव ब्रह्मर्षि देशों ये ब्रह्मावर्तादनन्तर। अर्थात् कुरु वर्तमान हरियाणा, मत्स्य अलवर, भरतपुर, जयपुर, शूरसेन मथुरा प्रदेश आदि ब्रह्मर्षि देश था। उपर्युक्त विवेचना से मत्स्य क्षेत्र की

भौगोलिक स्थिति पूर्वोत्तर राजस्थान में सिद्ध होती है। यह अलवर, जयपुर को बैराठ, भरतपुर, दौसा क्षेत्रों तक फैला हुआ था।

मत्स्य नामकरण—इस क्षेत्र का नाम मत्स्य कैसे पड़ा? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके बारे में कई अवधारणाएँ हैं—

(1) मत्स्यपुराण के अनुसार—जब ब्रह्मा जी की महाकाल रात्रि प्रारम्भ हुई तो ब्रह्मा जी को जम्हाई आने लगी। ब्रह्माजी को अर्द्ध-निद्रा में देखकर अहितुण्ड नामक राक्षस वेदों को उठाकर पाताल लोक भाग गया। इस पर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की कि ज्ञान के भंडार वेदों को राक्षस से मुक्त करवायें। विष्णु जी मत्स्य का अवतार लेकर पाताल लोक पहुँचे तथा राक्षस का वध करके वेदों को लेकर सबसे पहले पृथ्वी के इस स्थान पर पहुँचे। कर वेदों को रख दिया और तभी से यह स्थान मत्स्य क्षेत्र कहलाता।

(2) मत्स्य जनपद का नाम सम्राट मत्स्य या मत्सिल जो बड़ा प्रतापी शासक था ने अपने नाम पर मत्स्य देश रखा। इस राजा का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है।

(3) विराट नगर (वर्तमान में जयपुर की सीमा क्षेत्र में) की पुरातात्विक खुदाई के दौरान पुरातत्ववेत्ताओं को विभिन्न अवशेषों के साथ ताँबे के मछली पकड़ने के आँकड़े (काँटे) प्राप्त हुए हैं, जो मत्स्य उद्योग की प्रधानता की ओर संकेत करते हैं। अधिक मछली उद्योग के आधार पर इस प्रदेश का नाम मत्स्य पड़ा।

इस क्षेत्र का नाम किसी भी प्रकार पड़ा हो परन्तु प्राचीन काल से लेकर 18 मार्च 1948 में मत्स्य संघ की स्थापना तक 'मत्स्य' शब्द अपरिवर्तित रहा। समय के साथ इस प्रदेश की भौगोलिक सीमाएँ बदलती रही हैं। किसी समय मत्स्य प्रदेश में वर्तमान हरियाणा, पंजाब राज्य का कुछ भाग, दूँदाड़, शेखावाटी, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली तक का क्षेत्र शामिल था।

मत्स्य निवासियों का सबसे प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है—'परेयुका इतर्वशों। यदुषुरासीद्ये मत्स्यासोनिशिता अपीव, धृष्टचक्रु दुर्गवद्धव्रश्च सखा सखायाम्तर द्विषुषोः।' इस उद्धरण में मत्स्यों का वैदिक काल के प्रसिद्ध राजा सुदास के शत्रुओं के साथ उल्लेख हुआ है। उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में उल्लिखित जनपदों में मत्स्य का जनपद के रूप में वर्णन किया गया है। शतपथ ब्राह्मणङ में मत्स्य नरेश ध्वसन का उल्लेख मिलता है, जिससे सरस्वती और खेतवन सरोवर की भौगोलिक स्थिति इंगित होती है। गोपथ ब्राह्मण में मत्स्य, साल्व एवं वसों का एक साथ उल्लेख—'काशि कोशिलेषु शाल्व मत्स्येषु सर्वसः. उशीनरेषु' किया है। जबकि कौशीतकी उपनिषद में कुरुओं एवं वसों का वर्णन—'सो वसद उशीनरेषु सर्वसन् मत्स्येषु कुरु पाञ्च चोलेषु काशिविदेहिष्विति' किया है। 'महाभारत में त्रिगर्तों और चेदियों के साथ उल्लेख—'सहजश्चैदिमत्स्यानां प्रवीराणां वृपध्वजः. ' है।' मनु संहिता में मत्स्यवासियों को पांचाल और शूरसेन के निवासियों के साथ ही ब्रह्मर्षि देश में स्थित माना है। शूरसेनकाः एव ब्रह्मर्षि देशों ये ब्रह्मावर्तादनन्तर। अर्थात् कुरु वर्तमान हरियाणा, मत्स्य अलवर, भरतपुर, जयपुर, शूरसेन मथुरा प्रदेश आदि ब्रह्मर्षि देश था। उपर्युक्त विवेचना से मत्स्य क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति पूर्वोत्तर राजस्थान में सिद्ध होती है। यह अलवर, जयपुर को बैराठ, भरतपुर, दौसा क्षेत्रों तक फैला हुआ था।

मत्स्य नामकरण—इस क्षेत्र का नाम मत्स्य कैसे पड़ा? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके बारे में कई अवधारणाएँ हैं—

(1) मत्स्यपुराण के अनुसार—जब ब्रह्मा जी की महाकाल रात्रि प्रारम्भ हुई तो ब्रह्मा जी को जम्हाई आने लगी। ब्रह्माजी को अर्द्ध-निद्रा में देखकर अहितुण्ड नामक राक्षस वेदों को उठाकर पाताल लोक भाग गया। इस पर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की कि ज्ञान के भंडार वेदों को राक्षस से मुक्त करवायें। विष्णु जी मत्स्य का अवतार लेकर पाताल लोक पहुँचे तथा राक्षस का वध करके वेदों को लेकर सबसे पहले पृथ्वी के इस स्थान पर पहुँचे। कर वेदों को रख दिया और तभी से यह स्थान मत्स्य क्षेत्र कहलाता।

(2) मत्स्य जनपद का नाम सम्राट मत्स्य या मत्सिल जो बड़ा प्रतापी शासक था ने अपने नाम पर मत्स्य देश रखा। इस राजा का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। (3) विराट नगर (वर्तमान में जयपुर की सीमा क्षेत्र में) की पुरातात्विक खुदाई के दौरान पुरातत्ववेत्ताओं को विभिन्न अवशेषों के साथ ताँबे के मछली पकड़ने के आँकड़े (काँटे) प्राप्त हुए हैं, जो मत्स्य उद्योग

की प्रधानता की ओर संकेत करते हैं। अधिक मछली उद्योग के आधार पर इस प्रदेश का नाम मत्स्य पड़ा।

इस क्षेत्र का नाम किसी भी प्रकार पड़ा हो परन्तु प्राचीन काल से लेकर 18 मार्च 1948 में मत्स्य संघ की स्थापना तक 'मत्स्य' शब्द अपरिवर्तित रहा। समय के साथ इस प्रदेश की भौगोलिक सीमाएँ बदलती रही हैं। किसी समय मत्स्य प्रदेश में वर्तमान हरियाणा, पंजाब राज्य का कुछ भाग, दूँदाड़, शेखावाटी, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली तक का क्षेत्र शामिल था।

जोरावरसिंह की मृत्यु के पश्चात हाथीसिंह व मुहब्बतसिंह माचेड़ी के जागीरदार बने। 1735 ई. में जोरावरसिंह का पुत्र मोहब्बतसिंह माचेड़ी की गद्दी पर बैठा। रानी बख्तकँवर ने 1 जून 1740 ई. को प्रतापसिंह को जन्म दिया।

1756 ई. में चौथ का बरवाड़ा युद्ध में मोहब्बतसिंह जयपुर की सेना की ओर मल्हार राव होल्कर मराठा के विरुद्ध लड़ते हुए मारे गये। प्रतापसिंह ने पिता की याद में राजगढ़ के रामबाग में विशाल छतरी का निर्माण करवाया। 14 दिसम्बर 1767 को मांडोली के युद्ध में भरतपुर व जयपुर की सेना के मध्य हुए युद्ध में प्रतापसिंह ने जयपुर सेना का साथ देकर विजय श्री दिलाई। जयपुर नरेश ने प्रतापसिंह को 'राव' की उपाधि दी। साथ ही राजगढ़ किला बनाने की अनुमति भी दी। 1770 में टहला व राजपुर के दुर्गों का निर्माण प्रतापसिंह ने करवाया। 1771 में राजगढ़ में टहला व राजपुर के दुर्गों को आबाद करने के साथ देवती झील में जलमहल के साथ आनंद बाग लगवाया।

प्रतापसिंह बहुत शक्तिशाली हो चुका था, जिसने 1773 ई. में बलदेवगढ़, संथैल, मेढ़, आवेला भांवरा, ताला, धौला, डब्बी, हरदेवगढ़, सिकराय, बावड़ी, खेड़ा गांव उसके अधिकार में आ गये। 1779 ई. में बलदेवगढ़, प्रतापगढ़, कांकवाड़ी, गाजी का थाना (थानागाजी) और अजबगढ़ में किले बनवाये।

इसी समय मुगल बादशाह के सेनापति नजफखां को राव प्रतापसिंह ने भरतपुर के जाट शासक के विरुद्ध आगरा दुर्ग जीतने में सहायता दी। इससे खुश होकर मुगल बादशाह शाहआलम ने 1774 ई. में पाँच हजारी जात और पाँच हजारी मनसब के खिताब 'राव राजा बहादुर' की उपाधि देने के साथ माचेड़ी की स्वतंत्र जागीर को मान्यता दी। अब यह जागीर जयपुर से हमेशा के लिए स्वतंत्र हो गई।

अलवर किला भरतपुर के जाट शासक के अधीन था। इसके दुर्गाध्यक्ष नवलसिंह, दुर्गपाल ठाकुरदास तथा दुर्गरक्षक चूड़ामणि और राजसिंह आदि रक्षकों को वेतन न मिलने से ये असन्तुष्ट थे। प्रतापसिंह जब कांकवाड़ी किले में था तब खुशीराम के सहयोग से भरतपुर नरेश से बात कर यह निश्चित किया कि यदि प्रतापसिंह सैनिकों को वेतन दे तो अलवर किला ले सकता है। इस पर प्रतापसिंह ने सैनिकों को वेतन दे दिया और किला भरतपुर के अधिकार से निकल कर प्रतापसिंह के अधीन हो गया। अलवर किला में मार्गशीर्ष शुक्ला 3 विक्रम संवत 1832 (25 नवम्बर 1775 ई.) को लक्ष्मणपोल दरवाजे से प्रवेश किया। अब माचेड़ी से राजगढ़ और राजगढ़ के स्थान पर अलवर को राजधानी बनाया। राज्याभिषेक कराकर प्रतापसिंह ने अलवर राज्य की स्थापना की।

संदर्भ ग्रंथ

1. दशरथ शर्मा—राजस्थान थ्रो द एजेज, जिल्द-1, पृष्ठ 12
2. मायाराम—राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृष्ठ 49
3. मेजर पी. डब्ल्यू. पाउलेट—गजेटियर ऑफ उलवर 1878 (अनुवादक अनिल जोशी), पृष्ठ 13
4. विनय, अलवर-अंक, जनवरी 1969, राजर्षि महाविद्यालय, अलवर, पृष्ठ 48
5. क्रमांक 181, 138, 476 बस्तांक 26, 19, 68 ग्रंथांक 2,5,2, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर
6. विनय, अलवर-अंक जनवरी 1969, राजर्षि महाविद्यालय, अलवर, पृष्ठ 7
7. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द-4, पृष्ठ 17
8. मेजर पी. डब्ल्यू. पाउलेट—गजेटियर ऑफ उलवर 1878 (अनुवादक अनिल जोशी), पृष्ठ 7

9. क्रमांक 181, बस्तांक 26, ग्रंथांक 27-28, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर
10. रावत सारस्वत–मीणा इतिहास, पृष्ठ 117-183 मनुस्मृति 2, 19
11. कल्याण (भगवत विशेषांक) मत्स्यपुराण, पृष्ठ 545-595
12. छूट्टन लाल शर्मा–मत्स्य संघ का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास
(i) क्रमांक 206, बण्डांक 27, ग्रन्थांक 16, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर (राज.)
(ii) शतपथ ब्राह्मण 4,5,8,9
13. क्रमांक 206, बण्डांक 27, ग्रन्थांक 16, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर (राज.)

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

सन्त साहित्य में अन्तर्निहित सामाजिक चेतना

डॉ. कमलेश देवी
सह-प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
गुरु गोरखनाथ जी राजकीय महाविद्यालय हिसार

हिन्दी साहित्य का पूर्वमध्यकाल जोकि भक्तिकाल के नाम से भी जाना जाता है पर पर चर्चा करते ही हमारे मानस पटल पर अध्यात्म, भक्ति एवं सामाजिक जन चेतना का प्रतिबिम्ब उभरने लगता है। इस काल में समाज विभिन्न मत-मतों एवं सम्प्रदायों में विभक्त था। विभिन्न सम्प्रदायों और मतों के लोगों ने अपनी वाणी एवं विचारात्मक अनुभूतियों से समाज में एक नई चेतना लाने का प्रयास किया। जिसमें संत मत के लोग प्रमुख थे। मध्यकालीन भारतीय समाज निश्चित ही आज के समाज से भिन्न था, किन्तु बहुत सी समस्याएं जिन्हें संतों ने अपने समाज में देखा था और जिनसे उनका चिन्तन एवं वाणी प्रभावित भी हुई आज भी स्थिति वैसी ही है। किव या रचनाकार की प्रासंगिकता ऐसी स्थिति में बिल्कुल निर्विवाद है यदि उसके द्वारा उठाई गई समस्याएं और प्रस्तुत किए गए समाधान दोनों ही वास्तविक और उपयुक्त हों।

संतों का युग सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से अनास्था, विघटन और वजर्नाओं का युग था। उस युग में सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति के लिए आध्यात्मिक मार्ग के अलावा कोई दूसरा विकल्प असंभव था। भारत जो संतों, पीरों, फकीरों की भूमि रही है, यहां तत्व ज्ञान को जानने वाले अनेक सन्त लोग समय-समय पर अवतरित हुए हैं। उनमें कबीरदास, रैदास, नामदेव दादू, धन्ना, पीपा, मलूक, जंभनाथ, बुल्ला साहब, गुरु नानक, तेग बहादुर आदि प्रमुख थे। संतकाव्य परम्परा के इन लोगों ने अपनी वाणी के आलोक से समाज में व्याप्त ऊंच-नीच, अस्पृश्यता, कमर्काण्ड और पाखण्डों का विरोध कर समाज में अपनी वाणी की क्रान्ति से एक ऐसी दिशा प्रदान की जिसके आलोक ने युगों-युगों की काल सन्धियों में छिपी सिपाही कलौंस को पौधकर अलौकिक आलोक का प्रसार किया। सन्त कवियों ने सामाजिक व्यवस्था पर अपनी वाणी द्वारा सर्वाधिक, अभिव्यक्ति प्रदान की।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम को बहुत अधिक महत्व था। संत युगीन समाज में नीची जाति की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। नीची जाति वालों को समाज में कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। वे अवमानना के भाजन बने हुए थे। संत कवियों ने अपनी वाणी में समाज में व्याप्त वणार्श्रम पर तीखा प्रहार किया है। संतों ने कहा कि ब्राह्मण, शुद्र सब में एक ही प्रकार का हाड़, मांस, रक्त आदि रहता है, इसलिए किसी को अछूत मानकर उसकी उपेक्षा करना अनुचित है, उनका मत है कि मनुष्य में ही परमात्मा की ज्योति को समझने का प्रयत्न करना चाहिए, जाति-पाति की इस तुच्छ उलझन में नहीं पड़ना चाहिए। बुल्ला साहब ने अपनी वाणी में कहा है कि

कौम छतीस एकै जाति। एक कु ल एके पिरवारा। एक बीज सबकी उत्पाति।(1)

संतों ने अपनी वाणी में आन्तिरक नैतिक बल और स्वाभिमान के सहारे छुआछूत की व्याप्त भावना के विरूद्ध आवाज उठाई। समाज में मानवतावादी दृष्टिकोण के पक्षधर ये लोग मानव को परमात्मा की उत्कृष्ट रचना मानते हैं फिर इसमें अस्पृश्यता की भावना निन्दनीय है, एक आदर्श समाज में ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए। अस्पृश्यता की यह भावना तत्युगीन

समाज की विषमता का प्रमुख कारण था। उन्होंने उन सबको अपवित्र ठहराया जो छुआ-छूत को लेकर संत कवियों ने अपनी वाणी में हिन्दू और मुसलमान दोनों के विषय में व्यंग्यात्मक रूप से फटकार लगाई है। वे कहते हैं कि ये लोग मानवता को भूलकर एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि ये दोनों ही नीच एवं पथ भ्रष्ट है—

अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायनतर सौवे, यह देखो हिन्दुआई।।
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई।
खाला के री बेटी-ब्याहे, घर ही में करे सगाई।[2]

संतों की वाणी में ब्रह्माचारों पर जो आघात किए गए हैं वे तर्क एवं युक्ति संगत हैं। इन संत कवियों का खण्डन भावुकता पर टिका न होकर बुद्धि की ठोस आधार भूमि पर टिका था। यही कारण है कि इनके उपदेशों के सम्मुख सभी विरोधी तत्व निरूत्तर हो जाते थे। बाह्य दिखावे का खण्डन लगभग सभी संत कवियों ने किया है। इन पाखण्डों से भगवान के प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकती, ऐसे व्यक्तियों का खोटे-दिखावे और तज्जन्य पाप ही बबार्द कर देते हैं—

पाखण्डी प्रेम न पाईए, खोटा पापु खुआः [3]

तत्कालीन समाज में व्याप्त ब्रह्माचारों में हिन्दुओं की तीर्थयात्रा एवं मुसलमानों की यात्रा पर संतों की वाणी में आक्रोश प्रकट होता है, वे परमात्मा को पाने के ऐसे प्रयासों का व्यर्थ मानते हैं। परमात्मा मानव घट में वास करता है। बाह्य दिखावे में कोई लाभ नहीं, भीखा साहब ने कहा है-

राम नाम तीरथ घर में है,
दिल द्वारिका और काया काशी।[4]

परमात्मा के इसी असीम स्वरूप के बारे में गुरु तेग बहादुर का कथन भी दृष्टव्य है-

काहे रे बन, खोजन जाई। सर्व निवासी, सदा अलेपा, तो ही अंग समाई।

पुस्तकीय ज्ञान व शास्त्र-पुराण की आधार बनाकर जनमानस में अंधविश्वास एवं रूढ़िवादिता का प्रचार-प्रसार करने वाले धर्म के ठेकेदारों पर सन्त कवियों ने कड़ा व्यंग्य किया है। उनका कथन है कि ये लोग अपने निज-स्वार्थों की पूर्ति के लिए मोली-भाली जनता को मूर्ख बना रहे हैं। शाब्दिक भ्रम एवं छलावे के द्वारा लोगों को अंधविश्वास की दल-दल में धकेल रहे हैं। जिसके कारण मानव अपने मूल उत्स को भूल रहा है।

पोथी पतरा गीता गावहु। भेद नहीं तब वेद मुलावहु।।[5]

सन्त कवियों द्वारा की जाने वाली ग्रन्थ निन्दा का तात्पर्य उनका अनादर करना नहीं था। इसका तात्पर्य केवल उन ग्रन्थों से प्राप्त ज्ञान के दुरुपयोग से था। जो व्यक्ति उन ग्रन्थों के ज्ञान के वास्तविक अर्थों को न जानकर अर्थ का अनर्थ कर रहे थे। वाणी की अभिव्यक्ति के माध्यम से सन्त लोगों ने अवतारवाद को किसी भी रूप में ग्रहण नहीं किया। वे इस सिद्धान्त के ही विरोधी हैं कि ईश्वर नर देह धारण करते हैं। उन्होंने निराकार ब्रह्म की कल्पना की थी और इस बात को स्वीकार किया था कि ब्रह्म, निर्लेप, निराकार और अनन्त है। सन्त रैदास का कहना कि-

हिरसा हीरा छाँड के, करिहं आन की आस, ते नर दोजब जाहिगे, सत भाणे रविदास।[6]

सन्त कवियों ने मनुष्य मात्र को समान समझते हुए राम-रहीम का भेद-भाव नहीं रखा। वे सबकी उत्पत्ति को परमात्मा प्रदत मानते हैं, फिर ये संकीर्ण भावना के द्वारा समाज के मध्य वैमनस्य की खाई को चौड़ी करना गलत है, सन्तों ने अपनी वाणी में कहा है कि-

कहै कबीरा, दास फकीरा, अपनी राह चिल भाई।
हिन्दू तुरूक का करता एकै, ता गति लिखी न जाई।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सन्त कवियों ने अपनी वाणी की क्रान्ति द्वारा समाज में एक नई चेतना लाने का काम किया ''उनकी सोच तत्कालीन युग तक सीमित न रह कर वतर्मान दौर तक भी प्रासंगिक है।''

संत कबीर की वाणी में एक 'आग' थी, जो उस समय की सामाजिक असमानता की जड़ों पर सीधा प्रहार करती थी। कबीर का विरोध केवल भावनात्मक नहीं था, बल्कि उन्होंने 'बुद्धि की ठोस आधार भूमि' पर अपने तर्क रखे। उन्होंने जाति व्यवस्था की दैवीय उत्पत्ति पर सवाल उठाते हुए जीवविज्ञान (Biology) का सहारा लिया उनका तर्क था कि यदि ब्राह्मण और शूद्र दोनों के शरीर में एक ही तरह का रक्त, मांस और हड्डियाँ हैं, तो एक 'पवित्र' और दूसरा 'अछूत' कैसे हो सकता है? कबीर ने एक 'आध्यात्मिक लोकतंत्र' की नींव रखी, जहाँ भक्ति का अधिकार जन्म से नहीं, बल्कि प्रेम और सत्य की खोज से तय होता था। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपने बाहरी कमकांडों में उलझकर मार्ग से भटक गए थे। आज भी दलित विमर्श और आधुनिक समाज सुधारकों, जैसे डॉ. बी.आर. अंबेडकर, के लिए कबीर एक मागर्दर्शक स्तंभ बने हुए हैं। संतों का आविर्भाव उस कालखंड में हुआ जिसे अक्सर सामाजिक विघटन और 'अनास्था' का युग कहा जाता है। उस समय का समाज वणार्श्रम व्यवस्था की कठोरता से इतना जकड़ा हुआ था कि 'निचली' जातियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी; वे न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित थे, बल्कि लगातार अपमान और बहिष्कार का शिकार भी हो रहे थे। मध्यकालीन भारत में जब राजनीतिक सत्ताएँ बदल रही थीं और मुगल साम्राज्य के साथ-साथ क्षेत्रीय शक्तियों का उदय-पतन हो रहा था, तब आम जनता नैतिक भ्रम और असुरक्षा के दौर से गुजर रही थी। संतों ने महसूस किया कि इस वातावरण में आध्यात्मिक मार्ग ही एकमात्र रास्ता है जो सामाजिक और सांस्कृतिक मुक्ति दिला सकता है। कबीर, रैदास, नामदेव और दादू दयाल जैसे संतों ने, जो स्वयं समाज के हाशिए से आए थे, अपने 'दिव्य अनुभवों' को तर्क की कसौटी पर कसकर सत्ता और धर्म के ठेकेदारों को चुनौती दी। जहाँ कबीर की आवाज़ तीखी और विद्रोही थी, वहीं संत रैदास (रविदास) ने अत्यंत विनम्र लेकिन दृढ़ भाषा में समानता का संदेश दिया। रैदास का सबसे बड़ा योगदान 'श्रम की प्रतिष्ठा' को आध्यात्मिक दर्जा देना था। चमार जाति से होने के कारण उन्होंने कभी अपनी पहचान नहीं छिपाई, बल्कि उसे दिव्य कृपा का प्रतीक बना दिया। उनका प्रसिद्ध विचार था कि जूता गाँठना भी उतना ही पवित्र कार्य है जितना मंदिर में पूजा करना, बशर्ते मन शुद्ध हो। रैदास ने 'बेगमपुरा' (बिना गम का शहर) की कल्पना की, जो एक ऐसे समतावादी समाज का प्रतीक था जहाँ न कोई टैक्स हो, न शोक और न ही भेदभाव। उनकी यह 'यूटापियन' दृष्टि आज के कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के बहुत करीब है। पंजाब की धरती से गुरु नानक देव जी ने उन आदर्शों को व्यावहारिक रूप दिया जिनकी कल्पना भक्तिकाल के अन्य संत कर रहे थे। नानक का सामाजिक विजन 'संगत और पंगत' के माध्यम से प्रकट हुआ। उन्होंने 'लंगर' की संस्था शुरू की, जहाँ राजा और रंक, ब्राह्मण और अछूत एक ही पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे। यह छूआछूत और ऊँच-नीच के पाखंड को जड़ से मिटाने का एक अनूठा प्रयोग था। इसके अलावा, नानक ने महिलाओं के अधिकारों की भी पुरज़ोर वकालत की। उन्होंने सवाल उठाया कि उस स्त्री को 'मंदा' (बुरा) कैसे कहा जा सकता है जो राजाओं और संतों को जन्म देती है?

नानक की शिक्षाएँ 'किरत करो' (ईमानदार कमाई), 'नाम जपो' (ईश्वर का ध्यान) और 'वंड छको' (साझा करना) आज के आधुनिक लोकतांत्रिक और समाजवादी मूल्यों का आधार प्रतीत होती हैं। पंजाब के सूफी संत बुल्लेशाह को 'जनता का कवि' कहा जाता है। उन्होंने मुल्लाओं और पंडितों की कट्टरता पर व्यंग्य करते हुए कहा कि वे दूसरों को प्रकाश दिखाते हैं लेकिन खुद अंधेरे में हैं। उनकी कविता में सूफीवाद और मानवीय समानता का एक ऐसा संगम मिलता है जो मजहबी सीमाओं को तोड़ देता है। इसी तरह बिहार के संत दरिया साहब ने 'ज्ञान दीपक' और 'दरिया सागर' जैसी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक सद्भाव और अहिंसा का प्रचार किया। उन्होंने अवतारवाद और कर्मकांड का विरोध करते हुए एक 'सत्य पुरुष' की उपासना पर ज़ोर दिया, जो किसी धर्म विशेष का न होकर पूरी मानवता का है। संत साहित्य का एक ऐसा पहलू जो आज वैश्विक स्तर पर चर्चा में है, वह है 'पयार्वरण संरक्षण'। राजस्थान के संत जंभोजी (गुरु जंभेश्वर) ने 1485 में बिश्नोई संप्रदाय की स्थापना की और 29 नियम दिए। इनमें से 'नियम सीधे तौर पर प्रकृति और वन्यजीवों की रक्षा से जुड़े थे। उन्होंने 'हरे वृक्ष न काटने' और 'जीवों पर दया करने' को धर्म का अनिवार्य हिस्सा बनाया। इसी प्रेरणा का परिणाम था 1730 का

'खेजड़ली बलिदान', जहाँ अमृता देवी के नेतृत्व में 363 लोगों ने पेड़ों को बचाने के लिए अपने सिर कटवा दिए। यह दुनिया का पहला संगठित पर्यावरण आंदोलन माना जाता है, जो बताता है कि संतों की चेतना केवल मानव संबंधों तक सीमित नहीं थी, बल्कि पूरे पारिस्थितिकी तंत्र के लिए थी। गुरु तेग बहादुर जी का जीवन और बलिदान मानवाधिकारों के इतिहास में एक मील का पत्थर है। उन्हें 'हिन्द की चादर' कहा जाता है क्योंकि उन्होंने कश्मीरी पंडितों की धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अपना शीश कुर्बान कर दिया। उनका यह बलिदान किसी एक धर्म के लिए नहीं, बल्कि हर व्यक्ति के अपने विश्वास के अनुसार जीने के अधिकार के लिए था। उनकी कविताएं, जो गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज हैं, वैराग्य और साहस का अद्भुत मिश्रण हैं। वे सिखाते हैं कि एक सच्चा 'जीवण मुक्त' वही है जो न किसी से डरता है और न ही किसी को डराता है। यह संदेश आधुनिक संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणापत्र की मूल भावना के अनुरूप है। संतों ने भाषाई स्तर पर भी एक महान क्रांति की। उन्होंने संस्कृत के 'एकाधिकार' को चुनौती देते हुए जनभाषाओं जैसे सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी और मराठी को ज्ञान का माध्यम बनाया। यह केवल भाषा का चुनाव नहीं था, बल्कि ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया थी। जब कबीर 'संसकृत है कूप जल, भाखा बहता लोय' कहते हैं, तो वे उस जड़ता पर प्रहार करते हैं जो शिक्षा को केवल कुछ वर्गों तक सीमित रखना चाहती थी। इस भाषाई विविधता ने न केवल क्षेत्रीय अस्मिताओं को मजबूत किया, बिल्क हाशिए के समूहों को भी अपनी बात कहने का साहस दिया। संतों के विचार और भारतीय संविधान के मूल्यों के बीच एक सीधा वैचारिक सेतु है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने स्वीकार किया था कि उनके जीवन के तीन मुख्य गुरुओं में से एक संत कबीर थे। संविधान की प्रस्तावना में निहित 'स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व' के विचार संतों के 'आध्यात्मिक बंधुत्व' (Spiritual Fraternity) के ही आधुनिक कानूनी रूप हैं। अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद 17), धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25-28) और सामाजिक न्याय के प्रावधान उस संघर्ष की परिणति हैं जो संतों ने सदियों पहले शुरू किया था। संतों की 'निर्गुण भक्ति' ने वास्तव में उस 'सामाजिक लोकतंत्र' की नींव रखी थी जिसके बिना राजनीतिक लोकतंत्र अधूरा है।

संत साहित्य केवल भक्ति के पदों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह मानवीय गरिमा का एक जीवंत दस्तावेज़ है। कबीर के तर्कों से लेकर रैदास के 'बेगमपुरा' तक और नानक के 'लंगर' से लेकर बिश्नोईयों के 'वृक्ष संरक्षण' तक, यह परपंरा हमें एक बेहतर मनुष्य बनने की प्रेरणा देती है। संतों ने सिखाया कि धर्म और अध्यात्म का असली उद्देश्य मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि 'घट-घट' (हर मनुष्य के हृदय) में व्याप्त सत्य को पहचानना और उसे सामाजिक न्याय में बदलना है। आज जब दुनिया फिर से संकीणर्ताओं की ओर बढ़ रही है, इन संतों की वाणी हमें एक समावेशी और करुणामय भविष्य का रास्ता दिखाती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सन्तवाणी संग्रह-भाग-2 पृ० 185
2. अयोध्यासिंह उपाध्याय, कबीर ग्रन्थावली पृ० 242
3. स० जयराम मिश्र, नानक वाणी पृ० 133
4. भीखा साहब की बानी, पृ० 9
5. दरियासागर पृ० 96
6. सन्त सुधा सागर, रैदास खण्ड-1 पृ० 197
7. स० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली पृ० 83
8. के.एन. उपाध्याय. (रा।)। दरिया साहब (बिहार के संत)। https:// occultnthings.com/products/dariya-sahib-saint-of-bihar-idj353
9. कबीर की जाति व्यवस्था की आलोचना, https://www.scribd.com/document/897513540/If-Caste-and-Was-What-the-Creator-Had-in-Mind-Kabir-docx

10. सदानंद शाही, संत रविदास : जीवन और लेखन, https:// theaidem.com/en-book-baithak-sant-ravidas-life-and-writings-sadanandshahi-transcript/.
11. गुरु नानक की सामाजिक दृष्टि और प्रासंगिकता, https://www.worldsikh.org/ guru_nanak_the_sikh_ideal_of_activism.
12. जेम्स बीन, बिहार के दरिया साहिब : संत मत के इतिहास में एक महान व्यक्तित्व, https://medium.com/ sant-mat-meditation-and-spirituality/dariya-sahib-of-bihar-atowering-figure-in-sant-mat-history-e6d1c283be6b.
13. श्रीविद्या सोमन्ना, बिश्नोइज्म : इकोधर्म, https://medium.com/@shrividyasomanna/bishnoism-bda5776bc0ee
14. बिश्नोई : धार्मिक पयार्वरणवाद का पुनरावलोकन, ARCADIA (2024), https://www.environmentandsociety.org/arcadia/bishnoi-revisiting-religiousenvironmentalism-and-traditional-forest-and-wildlife-management.
15. गुरु तेग बहादुर की शिक्षाएँ, ZENODO (2024), https://zenodo.org/records/18722927/files/1-E.pdf.
16. मिथलेश कुमार झा, भारत में भाषा आंदोलन और लोकतंत्र, LSE REV. BOOKS (Dec. 13, 2018), https://blogs.lse.ac.uk/lsereviewofbooks/2018/12/13/feature-essaylanguage-movements-and-democracy-in-india-by-mithilesh-kumar-jha/
17. अंबेडकर की लोकतंत्र की व्याख्या, 2 INT'L J. REVIEWS & RSCH. SOC. SCIS. 4 (2024), https://ijrrssonline.in/HTMLPaper.aspx?
Journal=International%20Journal%20of%20Reviews%20and%20Research%
20in%20Social%20Sciences;PID=2024-12-4-4

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

मानवता के उपासक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी

डॉ. रीता रानी रिहालिया
राजनीति विज्ञान
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला-171005
ईमेल- reetaranirehaliya@gmail.com

कुंजी शब्द : प्रकाश स्तम्भ, मानवता के उपासक, सक्रिय राजनीति, शिक्षाविद्, चिन्तक, भारतीय जनसंघ, संस्थापक, पथप्रदर्शक एवं प्रेरणापुंज, आधारभूत सत्य, वजीरे-आजम।

सारांश

महान पुरुषों का जीवन जहां स्वयं एक कीर्तिस्तंभ हैं वहाँ आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रकाश स्तम्भ का भी कार्य करता है। डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी का आधी शताब्दी से आगे निकला हुआ जीवन उनके अनुपम त्याग-बलिदान और आदर्श स्वरूप को देखकर कई शताब्दियों का संचित इतिहास प्रतीत होता है। डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी सच्चे अर्थों में मानवता के उपासक और सिद्धान्तवादी थे। इसलिए उन्होंने सक्रिय राजनीति कुछ आदर्शों और सिद्धान्तों के साथ प्रारम्भ की थी। सार्वजनिक जीवन में पदार्पण करने के पश्चात् उन्होंने अपनी प्रखर विचारधारा से, सम्मेलनों, जनसम्पर्क एवं सभाओं के माध्यम से, अपने ज्वलन्त उद्बोधनों से, जनता के मन में एक नयी ऊर्जा व नये प्राण का संचार किया। उनकी लोकप्रियता और उनकी ख्याति दिनों-दिन बढ़ती गयी।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी महान शिक्षाविद्, चिन्तक और भारतीय जनसंघ के संस्थापक थे। एक प्रखर राष्ट्रवादी के रूप में वे सदैव भारत के हित में कार्य करते रहे। एक समर्पित राष्ट्रभक्त के रूप में उनका उदाहरण दिया जाता है। भारतीय इतिहास उन्हें एक जुझारू, कर्मठ विचारक और चिन्तक के रूप में स्वीकार करता है। भारत के लाखों लोगों के मन में एक निरभिमानी देशभक्त की उनकी छवि अमिट रूप से अंकित है। वे आज भी बुद्धिजीवियों और मनीषियों के आदर्श हैं। वे लाखों भारतवासियों के मन में एक पथप्रदर्शक एवं प्रेरणापुंज के रूप में आज भी समाए हुए हैं। मुस्लिम लीग की राजनीति से बंगाल का वातावरण दूषित हो रहा था। वहां साम्प्रदायिक विभाजन की नौबत आ रही थी। साम्प्रदायिक लोगों को ब्रिटिश सरकार प्रोत्साहित कर रही थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में उन्होंने यह सुनिश्चित करने का बीड़ा उठाया कि बंगाल के हिन्दुओं की उपेक्षा न हो। अपनी विशिष्ट रणनीति से उन्होंने बंगाल के विभाजन के मुस्लिम लीग के प्रयासों को पूरी तरह से विफल कर दिया। उनके प्रयत्नों से हिन्दुओं के हितों की रक्षा हुई।

सन् 1942 में जब ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न राजनैतिक दलों के छोटे-बड़े सभी नेताओं को जेलों में ठूंस दिया और देश नेतृत्वहीन और दिशाहीन दिखाई देने लगा, ऐसी कठिन परिस्थितियों में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने बंगाल के पक्ष में मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देकर भारत को नयी दिशा दी। डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी इस धारणा के प्रबल समर्थक थे कि सांस्कृतिक

दृष्टि से हम सब एक हैं। इसलिए धर्म के आधार पर वे विभाजन के कट्टर और विरोधी थे। वे मानते थे कि विभाजन सम्बन्धी उत्पन्न हुई परिस्थिति ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों से थी। वे मानते थे कि आधारभूत सत्य यह है कि हम सब एक हैं। हममें कोई अन्तर नहीं है। हम सब एक ही रक्त के हैं। एक ही भाषा, एक ही संस्कृति और एक ही हमारी विरासत है परन्तु उनके इन विचारों को अन्य राजनीतिक दल के तत्कालीन नेताओं ने अन्यथा रूप से प्रचारित-प्रसारित किया। फिर भी लोगों के दिलों में उनके प्रति अथाह प्यार और समर्थन बढ़ता गया।

ब्रिटिश सरकार की भारत विभाजन की गुप्त योजना और षड्यंत्र को कांग्रेस के नेताओं ने अखण्ड भारत सम्बन्धी अपने वादों को ताक पर रखकर स्वीकार कर लिया। उस समय डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की मांग उठाकर प्रस्तावित पाकिस्तान का विभाजन कराया और आधा बंगाल और आधा पंजाब खण्डित भारत के लिए बचा लिया। महात्मा गांधी और सरदार पटेल के अनुरोध पर वे खण्डित भारत के पहले मंत्रिमंडल में शामिल हुए। राष्ट्रीय हितों की प्रतिबद्धता को अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता मानने के कारण उन्होंने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने प्रतिपक्ष के सदस्य के रूप में अपनी भूमिका निर्वहन को चुनौती के रूप में स्वीकार किया और शीघ्र ही अन्य राष्ट्रवादी दलों और तत्वों को मिलाकर एक नयी पार्टी बनाई जो उस समय विरोधी पक्ष के रूप में सबसे बड़ा दल था।

1943 में बंगाल में पड़े अकाल के दौरान श्यामा प्रसाद का मानवतावादी पक्ष निखर कर सामने आया, जिसे बंगाल के लोग कभी भुला नहीं सकते। भले ही उनमें से कुछ को उनकी राजनीति पसंद नहीं थीं। बंगाल पर आए संकट की ओर देश का ध्यान आकर्षित करने के लिए और अकाल-ग्रस्त लोगों के लिए व्यापक पैमाने पर राहत जुटाने के लिए उन्होंने प्रमुख राजनेताओं, व्यापारियों समाजसेवी व्यक्तियों को जरूरतमंद और पीड़ितों को राहत पहुंचाने के उपाय खोजने के लिए आमंत्रित किया। फलस्वरूप बंगाल राहत समिति गठित की गई और हिन्दू महासभा राहत समिति भी बना दी गई। श्यामा प्रसाद इन दोनों ही संगठनों के लिए प्रेरणा के स्रोत थे। लोगों से धन देने की उनकी अपील का देशभर में इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि बड़ी-बड़ी राशियां इस प्रयोजनार्थ आनी शुरू हो गई। इस बात का श्रेय उन्हीं का जाता है कि पूरा देश एकजुट होकर राहत देने में लग गया और लाखों लोग मौत के मुंह में जाने से बच गए।

वह केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट नहीं करते थे बल्कि ऐसे व्यावहारिक सुझाव भी देते थे, जिनमें सहृदय मानव-हृदय की झलक मिलती जो मानव पीड़ा को हरने के लिए सदैव लालायित और तत्पर रहता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्होंने संसद में एक बार कहा था, अब हमें 40 रू. प्रतिदिन मिलते हैं, पता नहीं भविष्य में लोक सभा के सदस्यों के भत्ते क्या होंगे। हमें स्वेच्छा से इस दैनिक भत्ते में 10 रूपए प्रतिदिन की कटौती करनी चाहिए और इस कटौती से प्राप्त धन को हमें इन महिलाओं और बच्चों (अकाल ग्रस्त क्षेत्रों के) के रहने के लिए मकान बनाने और खाने-पीने की व्यवस्था करने के लिए रख देना चाहिए।

बंगाल में खाद्य-स्थिति 1943 के प्रारम्भ से ही बिगड़ती जा रही थी। इसके अनेक कारण थे। अक्टूबर में आने वाले मिदनापुर के तूफान ने उस जिले की तमाम फसल नष्ट कर दी थी। बाढ़ से भी इसी तरह कई जिलों की फसल बर्बाद हुई थी। डॉ० मुकर्जी, जिन्होंने पहले मिदनापुर के लोगों पर आपत्ति का पहाड़ टूटते देखा था और निजी प्रयत्नों द्वारा बृहत् परिणाम में सहायता की व्यवस्था की थी, काल के सर्वग्रासी मुख में बंगाल को जाते न देख सके। उन्होंने बंगाल की विपत्तियों पर देशवासियों का ध्यान खींच अकालपीड़ितों की बृहत् परिमाण में सहायता के आयोजन करने का निश्चय किया। इस दृष्टि से उन्होंने इस समस्या पर विचार कर इसे सुलझाने के उपाय निश्चित करने के उद्देश्य से 29 जुलाई को कुछ प्रमुख नागरिकों, राजनीतिज्ञों, व्यापारियों और दानवीरों की एक सभा की। परिणामस्वरूप बंगाल रिलीफ कमेटी बनाई गई। सर बद्रीदास गोयनका इसके अध्यक्ष और डॉ० मुकर्जी उपाध्यक्ष बने।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी जम्मू-कश्मीर को भारत का पूर्ण और अभिन्न अंग बनाना चाहते थे। उस समय जम्मू-कश्मीर का अलग झण्डा और अलग संविधान था। वहां का मुख्यमन्त्री वजीरे-आजम अर्थात् प्रधानमंत्री कहलाता था। संसद में अपने ऐतिहासिक भाषण में डॉ० मुखर्जी ने धारा-370 को समाप्त करने की भी जोरदार वकालत की। वे जानते थे कि यदि आज

एक राज्य पृथक्करण का रास्ता थाम लेगा तो अन्य प्रांतों में भी अलगाव की आग धधक उठेगी और देश का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। अगस्त, 1952 में जम्मू की विशाल रैली में उन्होंने अपना संकल्प व्यक्त किया था, या तो मैं आपको भारतीय संविधान प्राप्त कराऊंगा या फिर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना जीवन बलिदान कर दूंगा। उन्होंने तात्कालीन नेहरू सरकार को चुनौती दी तथा अपने दृढ़ निश्चय पर अटल रहे। अपने संकल्प को पूरा करने के लिए वे 1953 में बिना परमिट लिए जम्मू-कश्मीर की यात्रा पर निकल पड़े। वहां पहुंचते ही उन्हें गिरफ्तार कर नज़रबन्द कर लिया गया। 23 जून, 1953 को रहस्यमय परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गयी।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने अल्प आयु में ही बहुत बड़ी राजनैतिक ऊंचाइयों को पा लिया था। भविष्य का भारत उनकी ओर एक आशा भरी दृष्टि से देख रहा था। जिस समय लोग यह अनुभव कर रहे थे कि भारत एक संकटपूर्ण स्थिति से गुजर रहा है, उन्होंने अपनी दृढ़ संकल्पशक्ति के साथ भारत के विभाजन की पूर्व स्थितियों का डटकर सामना किया। देशभर में विप्लव, दंगा-फसाद, साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने के लिए भाषायी एवं दलीय आधार पर खूनी संघर्ष की घटनाओं से पूरा देश आक्रान्त था किन्तु इन विषम परिस्थितियों में भी डटकर, सीना तानकर एकला चलो के सिद्धान्त का पालन करते हुए डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी अखंड राष्ट्रवाद का पावन नारा लेकर महासमर में संघर्ष करते रहे। वे एक ऐसे नेता थे जिन्होंने आपने पुरुषार्थ से देशहित की वाणी को मुखर तथा तुष्टिकरण की नीति का विरोध किया। इस तरह देश की एकता और अखंडता के लिए समर्पित डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के रूप में एक राष्ट्रवादी व्यक्तित्व सदा के लिए सो गया किन्तु उनके द्वारा जलाई गई देशप्रेम की अलख आज भी सतत रूप में जल रही है।

निष्कर्ष

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जीवन निस्सन्देह संघर्ष का जीवन था। उन्होंने जीवनपर्यन्त बड़े साहस के साथ देश की सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया, मातृभूमि के संगठन लिए संघर्ष किया और स्वातंय सुप्रभात के बाद सत्तारूढ़ों की बढ़ती हुई तानाशाही प्रवृत्ति के विरूद्ध जनतंत्र को बल देने के लिए संघर्ष किया। अन्ततोगत्वा उन्होंने अपनी आहुति भी दे डाली। वे वास्तव में नागरिक स्वाधीनता, जनतंत्र और भारत की एकता के लिए शहीद हो गए। एक सच्चे कर्मयोगी के समान उन्होंने एक सैनिक का जीवन व्यतीत किया और शहीद की मृत्यु पाई। वे जीवन में तो महान् थे ही, मृत्यु ने उन्हें और भी महान् बना दिया।

संदर्भ

1. संजय दुबे, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. श्री गुरुदत्त, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की अंतिम यात्रा, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली
3. राकेश कुमार जैन, स्पष्ट दृष्टा डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, अर्चना प्रकाशन, भोपाल
4. शिवकुमार गोयल, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली
5. अटल द्विवेदी, राष्ट्र के लिए शहादत पर गर्व है श्यामा प्रसाद मुखर्जी, साक्षर प्रकाशन, इलाहाबाद
6. डॉ० नन्द किशोर गर्ग, नम्रता शर्मा, डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी एक शिक्षाविद्, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
7. आचार्य मायाराम पतंग, एकात्म भारत के प्रणेता डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

Yoga Education as a Marketing Tool

Dr. Arpita Negi
Assistant Professor Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5
Sanjay Dutt
Ph.D. research scholar Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5

Abstract

Yoga, rooted in ancient Indian philosophy, has evolved into a global phenomenon influencing not only health and spirituality but also modern marketing practices. Yoga education today acts as a powerful marketing tool by creating emotional, ethical, and experiential connections with consumers. This paper explores the integration of traditional yogic knowledge from texts such as the Yoga Sutras of Patanjali, Bhagavad Gita, and Hatha Yoga Pradipika with contemporary marketing strategies. It highlights how authenticity, spirituality, and holistic well-being enhance brand value and consumer engagement.

1. Introduction

Yoga has transitioned from a sacred discipline practiced in ancient India to a globally recognized system of health and wellness. Traditionally, yoga was meant for self-realization and liberation (moksha), but in the contemporary era, it has become a significant part of the wellness economy. Yoga education, which involves teaching yogic philosophy, ethics, and practices, now plays a vital role in influencing consumer perceptions and behaviors.

In today's competitive market, businesses are constantly seeking meaningful ways to connect with consumers. Yoga education provides a unique opportunity because it is not merely a product but a **value-driven experience** rooted in trust, discipline, and inner transformation. This makes it a highly effective marketing tool.

2. Traditional Foundations of Yoga Education

2.1 Yoga in Patanjali Yoga Sutras

The Yoga Sutras of Patanjali define yoga in a profound and concise manner through the famous aphorism: "yogashchittavritti nirodha" (Yoga is the cessation of the fluctuations of the mind). This definition emphasizes that yoga is not merely a physical exercise but a disciplined practice aimed at achieving mental stability, inner peace, and self-realization. It highlights the importance of controlling thoughts, emotions, and distractions to attain a higher state of awareness. In today's fast-paced and stress-driven world, this concept holds immense relevance as individuals increasingly seek methods

to calm their minds and enhance focus.

From a marketing perspective, this philosophical depth gives yoga a unique advantage over ordinary fitness regimes. Modern consumers are not only interested in physical health but also mental well-being and emotional balance. The idea of "chittavritti nirodh" resonates strongly with people dealing with anxiety, stress, and digital overload. As a result, wellness brands, yoga studios, and online platforms use this principle to promote yoga as a holistic solution for both mind and body.

- Emphasizes mental discipline and control over thoughts
- Positions yoga as more than just physical exercise
- Appeals to stress relief and mental clarity needs
- Enhances credibility through ancient philosophical roots
- Differentiates yoga from modern fitness trends
- Attracts health-conscious and mindfulness-oriented consumers

Thus, the teachings of Patanjali continue to influence not only spiritual practices but also contemporary wellness marketing strategies.

2.2 Yoga in Bhagavad Gita and Its Modern Relevance

The *Bhagavad Gita* presents yoga not merely as physical exercise but as a holistic approach to life. The famous verse, **"**yogah karmasu kaushalam**"** (Yoga is excellence in action), highlights the importance of performing one's duties with skill, awareness, and dedication. This philosophy is highly relevant in today's fast-paced professional and corporate environments, where efficiency, focus, and productivity are essential for success. Modern organizations increasingly adopt these yogic principles in their branding and workplace culture to promote balance, discipline, and mental well-being.

- **Excellence in Work:**

The teaching emphasizes performing tasks with precision and full attention, encouraging professionals to strive for quality and efficiency.

- **Mindfulness and Focus:**

Yoga in the *Gita* promotes being present in the moment, which enhances concentration and reduces workplace stress.

- **Detachment from Results:**

It teaches individuals to focus on effort rather than outcomes, reducing anxiety and improving decision-making.

- **Work-Life Balance:**

The balanced approach of yoga helps maintain harmony between personal and professional life.

- **Corporate Branding Strategy:**

Many organizations use yogic values to position themselves as promoters of wellness, discipline, and ethical practices.

- **Employee Well-being:**

Companies integrate yoga and mindfulness programs to improve mental health, productivity, and job satisfaction.

- **Ethical and Responsible Action:**

The *Gita* encourages righteous action (*dharma*), which aligns with modern concepts of corporate social responsibility.

In conclusion, the teachings of the *Bhagavad Gita* provide timeless guidance that connects traditional wisdom with modern professional excellence, making yoga a powerful tool for both personal growth and organizational success.

2.3 The **Hatha Yoga Tradition**

Especially as presented in the Hatha Yoga Pradipika, emphasizes purification of the body and balance of vital energy. The verse *"*`tapasa shuddhyate dehah`*"* highlights that discipline (tapas) leads to bodily purification. In the modern context, this ancient idea has been effectively adapted into yoga marketing strategies, particularly in the wellness and fitness industries.

Today, yoga is often promoted as a holistic detoxification system that cleanses both body and mind. Wellness brands and fitness centers align their messaging with traditional Hatha Yoga principles to create authenticity and trust. Concepts like internal cleansing, energy balance , and disciplined practice are translated into appealing modern terms such as "detox programs," "body reset," and "mind-body balance."

- **Traditional Foundation:** Based on teachings of the Hatha Yoga Pradipika, focusing on purification and discipline.
- **Physical Detoxification:** Promoted as a method to remove toxins and improve bodily functions through asanas and kriyas.
- **Energy Balance:** Emphasizes harmonizing prana (vital energy), often marketed as stress relief and vitality enhancement.
- **Modern Branding:** Fitness industries use terms like "detox yoga," "cleanse programs," and "wellness retreats."
- **Consumer Appeal:** Traditional authenticity builds credibility and attracts health-conscious individuals.
- **Holistic Wellness:** Combines physical fitness with mental clarity and emotional stability.
- **Commercial Adaptation:** Ancient yogic ideas are simplified and repackaged for global audiences.

Thus, the integration of Hatha Yoga philosophy into modern marketing demonstrates how ancient wisdom continues to shape contemporary wellness trends while retaining its core essence of discipline and purification.

3. Concept of Yoga Education

Yoga education is a comprehensive system that goes far beyond physical exercise, encompassing ethical discipline, mental control, and spiritual development. Rooted in the principles of Yama (moral restraints) and Niyama (personal observances), it guides individuals toward a balanced and meaningful

life. Along with practices such as Pranayama (breathing techniques) and Dhyana (meditation), yoga education offers a holistic approach that addresses the body, mind, and soul. In today's fast-paced and stressful world, this multidimensional nature of yoga makes it highly relevant and marketable across diverse populations.

• **Physical Well-being:** Yoga enhances flexibility, strength, posture, and immunity. Regular practice helps prevent lifestyle diseases such as obesity, hypertension, and diabetes. This makes yoga highly attractive to health-conscious individuals and fitness markets.

• **Mental Stability:** Through meditation and controlled breathing, yoga reduces stress, anxiety, and mental fatigue. It improves concentration, clarity, and emotional regulation, which appeals to students, professionals, and corporate sectors.

• **Emotional Balance:** Yoga encourages self-awareness and inner harmony. It helps individuals manage emotions effectively, build resilience, and maintain a positive outlook, thereby improving interpersonal relationships and overall well-being.

• **Spiritual Growth:** Yoga provides a deeper sense of purpose and connection with the self. It promotes mindfulness, self-realization, and inner peace, leading to long-term commitment and engagement with yoga practices.

These integrated benefits make yoga education not only a tool for personal transformation but also a powerful and sustainable concept in modern wellness marketing.

4. Yoga Education as a Marketing Tool

4.1 Building Brand Identity through Authenticity

Yoga education plays a crucial role in shaping a brand's identity by grounding it in authenticity and traditional wisdom. Rooted in ancient Indian philosophy, especially teachings from texts like the Yoga Sutras of Patanjali, yoga represents discipline, mindfulness, and holistic well-being. When brands incorporate these authentic principles into their identity, they differentiate themselves from superficial wellness trends and create a deeper emotional connection with consumers.

Authenticity in yoga-based branding reflects sincerity, ethical practices, and respect for tradition. Consumers today are more aware and selective; they prefer brands that promote genuine wellness rather than commercialization. By aligning with traditional yogic values such as simplicity, balance, and self-awareness, companies enhance their credibility and establish long-term trust. This trust becomes a foundation for customer loyalty and brand recognition.

Moreover, integrating yoga education into branding allows companies to communicate a meaningful purpose. Instead of just selling products or services, brands present themselves as facilitators of a healthy and conscious lifestyle. This purpose-driven approach appeals strongly to modern audiences seeking mental peace, stress relief, and sustainable living.

- **Cultural Authenticity:** Reflects traditional yogic teachings, enhancing brand credibility.
- **Trust Building:** Genuine practices increase consumer confidence and loyalty.
- **Ethical Image:** Promotes values like honesty, simplicity, and well-being.
- **Emotional Connection:** Aligns with consumers' desire for holistic health and mindfulness.

- **Differentiation:** Stands out from commercialized or trend-based wellness brands.
- **Long-term Identity:** Builds a sustainable and respected brand image over time.

4.2 Emotional and Spiritual Connection in Yoga-Based Marketing

Yoga-based marketing goes beyond traditional promotional strategies by fostering a deep emotional and spiritual connection between brands and consumers. Rooted in the teachings of Yoga Sutras of Patanjali and the philosophy of mindfulness, such marketing emphasizes inner awareness, balance, and authenticity. These values resonate strongly with modern consumers who seek meaning, peace, and purpose in their lives. Unlike conventional marketing, which often focuses on external appeal and material benefits, yoga-based marketing connects with the inner self of individuals. It encourages self-reflection and emotional engagement, making the brand experience more personal and memorable. As a result, consumers develop trust and long-term loyalty toward brands that align with their spiritual values.

- **Emotional Engagement:** Yoga promotes self-awareness and emotional balance, helping consumers feel a deeper connection with brands.
- **Spiritual Alignment:** Brands that incorporate yogic principles like mindfulness and harmony appeal to individuals seeking inner peace.
- **Authenticity and Trust:** Teachings from texts like the Bhagavad Gita enhance credibility, making brands appear genuine and ethical.
- **Mindfulness-Based Branding:** Marketing strategies that focus on present-moment awareness create meaningful consumer experiences.
- **Long-Term Loyalty:** Emotional and spiritual connections lead to stronger brand loyalty compared to purely transactional relationships.
- **Holistic Appeal:** Yoga-based marketing addresses mental, emotional, and spiritual needs, not just physical or material desires.
- **Personal Transformation:** Consumers associate such brands with self-growth, well-being, and positive lifestyle changes.

In conclusion, yoga-based marketing creates a powerful bond by appealing to both the heart and soul, transforming consumers into loyal and conscious participants in the brand journey.

4.3 Experiential Marketing through Yoga Education

Yoga education naturally aligns with experiential marketing because it focuses on direct participation and personal experience rather than passive consumption of information. In today's competitive market, consumers are more inclined toward meaningful and transformative experiences rather than traditional advertisements. Yoga classes, retreats, and workshops provide individuals with an opportunity to actively engage in practices that improve their physical, mental, and emotional well-being.

When individuals participate in yoga sessions, they do not just learn about its benefits—they actually feel them. This firsthand experience creates a deeper level of trust and authenticity, which is often missing in conventional marketing methods. As a result, yoga-based experiential marketing builds a stronger emotional connection between the consumer and the brand.

• **Direct Experience:** Yoga sessions allow consumers to personally experience relaxation, flexibility, and mental clarity rather than just hearing about them.

• **Emotional Connection:** Experiencing inner peace and mindfulness helps consumers develop a strong emotional bond with yoga brands or services.

• **Personal Transformation:** Regular practice leads to visible physical and psychological improvements, enhancing customer satisfaction and belief in the product or service.

• **Word-of-Mouth Promotion:** Satisfied participants often share their experiences with others, creating organic and trustworthy promotion.

• **Long-Term Engagement:** Unlike one-time advertisements, experiential learning encourages continuous participation, ensuring customer retention.

• **Authenticity and Trust:** Real experiences build credibility, making consumers more loyal and connected to the brand.

In conclusion, experiential marketing through yoga education is highly effective because it engages individuals at a deeper level, fosters transformation, and creates lasting relationships with consumers.

4.4 Influence on Consumer Behavior through Yoga Education

Yoga education plays a significant role in shaping consumer behavior by encouraging mindfulness, awareness, and conscious decision-making. Unlike impulsive buying patterns, individuals who practice yoga develop a deeper understanding of their needs and values. This leads to more thoughtful and responsible consumption habits. Yoga emphasizes principles such as non-violence (*Ahimsa*), truthfulness (*Satya*), and simplicity (*Aparigraha*), which directly influence how individuals interact with products and brands.

As a result, yoga practitioners often move away from materialistic lifestyles and focus on sustainability and ethical choices. Their purchasing decisions are guided not only by price and convenience but also by the impact of products on health, society, and the environment. This shift creates a demand for brands that align with these values, encouraging companies to adopt more transparent and responsible practices.

- **Preference for Organic Products:** Yoga practitioners prioritize natural and chemical-free products that support physical and mental well-being.
- **Inclination towards Eco-friendly Brands:** Awareness of environmental sustainability leads to choosing products with minimal ecological impact.
- **Support for Ethical Businesses:** Consumers favor brands that follow fair trade practices, cruelty-free production, and ethical sourcing.
- **Reduced Impulsive Buying:** Mindfulness cultivated through yoga reduces unnecessary consumption and promotes need-based purchasing.
- **Focus on Quality over Quantity:** Yoga encourages a simple lifestyle, leading consumers to value durability and authenticity rather than excess.
- **Health-conscious Decisions:** Individuals choose products that contribute to holistic wellness, including food, clothing, and lifestyle goods.

In conclusion, yoga education indirectly transforms consumer behavior by promoting conscious

living, thereby influencing markets to become more ethical, sustainable, and health-oriented.

4.5 Relationship Marketing and Community Building

Yoga education plays a significant role in strengthening relationship marketing by fostering a deep sense of community among practitioners. Unlike traditional marketing, which often focuses on one-time transactions, yoga-based marketing emphasizes long-term engagement, trust, and emotional connection. Through regular interaction in yoga environments, individuals feel a sense of belonging and shared purpose. This community-oriented approach reflects the concept of *Sangha*, which refers to a supportive and like-minded community. When consumers feel connected to a group, they are more likely to remain loyal to the brand or organization facilitating that experience. Yoga centers, wellness brands, and instructors leverage this by creating spaces where people can grow physically, mentally, and spiritually together. As a result, relationship marketing in yoga goes beyond selling services—it builds meaningful human connections that encourage continued participation and brand advocacy.

• **Group Classes:** Regular yoga sessions create interaction among participants, promoting friendship, trust, and a shared wellness journey.

• **Workshops and Retreats:** Special events provide deeper learning experiences and strengthen emotional bonds between participants and the brand.

• **Spiritual Gatherings:** Meditation sessions, satsangs, and wellness circles enhance inner connection and collective growth.

• **Sense of Belonging:** Community engagement makes individuals feel valued and connected, increasing long-term loyalty.

• **Word-of-Mouth Promotion:** Strong communities naturally promote brands through personal recommendations.

• **Customer Retention:** Emotional and social connections encourage repeat participation and sustained engagement.

• **Brand Trust:** Continuous interaction builds credibility and authenticity in the eyes of consumers.

• **Holistic Connection:** Yoga communities connect people beyond physical practice, fostering mental and spiritual unity.

4.6 Yoga in Wellness Tourism

India is widely recognized as the global hub of yoga, deeply rooted in ancient traditions and spiritual philosophy. As the birthplace of yoga, the country leverages yoga education to attract international tourists seeking authentic and transformative experiences. Wellness tourism in India is not just about relaxation but about holistic healing, combining physical, mental, and spiritual well-being. Destinations like Rishikesh and Kerala have become popular centers for yoga tourism, offering serene environments ideal for self-discovery and rejuvenation. Through structured programs and immersive experiences, yoga education plays a vital role in enhancing India's global cultural identity and tourism appeal.

• **Yoga Retreats:** India offers a wide range of yoga retreats that provide immersive experiences, combining asanas, meditation, and nature therapy. These retreats attract global tourists seeking peace and healing.

• **Ashram Education Programs:** Traditional ashrams such as Parmarth Niketan Ashram provide structured yoga education, spiritual teachings, and disciplined lifestyles, offering authentic learning experiences.

• **Meditation Camps:** Meditation programs help individuals manage stress, anxiety, and emotional imbalance, making them highly attractive for wellness tourists.

• **Cultural Immersion:** Tourists experience Indian traditions, Ayurveda, and spiritual practices, enhancing their understanding of holistic living.

• **Global Branding:** Yoga tourism strengthens India's image as a center of spirituality and wellness, increasing its international recognition.

• **Economic Growth:** Wellness tourism generates revenue, creates employment, and supports local communities.

In conclusion, yoga education significantly contributes to wellness tourism by offering meaningful experiences that go beyond conventional travel, while also promoting India's cultural heritage worldwide.

4.7 Corporate Marketing, Workplace Wellness, and Yoga

Corporate marketing today increasingly integrates workplace wellness and yoga as strategic tools to enhance organizational performance and brand value. Workplace wellness programs focus on improving employees' physical, mental, and emotional health, while yoga adds a holistic and traditional dimension to these initiatives. Rooted in ancient Indian knowledge, yoga promotes balance between body and mind through practices like **asana (postures), pranayama (breathing techniques), and meditation**. Companies that incorporate yoga into their wellness strategies project a positive and culturally rich image, especially in global markets. Yoga sessions at the workplace help reduce stress, improve concentration, and enhance emotional stability among employees. This not only boosts productivity but also strengthens employee satisfaction and loyalty. By promoting yoga, organizations align themselves with sustainable and holistic well-being, which becomes a powerful corporate marketing message reflecting care, responsibility, and innovation.

Key Points:

- Enhances corporate image through holistic wellness approach
- Incorporates traditional yoga practices for mental and physical health
- Reduces stress, anxiety, and workplace burnout
- Improves focus, creativity, and decision-making ability
- Strengthens employee engagement and job satisfaction
- Decreases absenteeism and healthcare costs
- Promotes work-life balance and emotional well-being
- Supports Corporate Social Responsibility (CSR) initiatives
- Attracts health-conscious talent and clients
- Positions the company as progressive and culturally aware

Thus, integrating yoga into workplace wellness not only benefits employees but also acts as an effective corporate marketing strategy, highlighting a company's commitment to overall well-being and sustainable growth.

4.8 Digital Marketing and Online Yoga Education

Digital marketing has transformed the way yoga education is delivered, making it more accessible, flexible, and globally connected. With the rise of platforms like YouTube, Instagram, and Zoom, yoga instructors and institutions can now reach a wider audience beyond geographical boundaries. Online yoga education integrates traditional yogic knowledge with modern communication technologies, creating a dynamic learning environment.

Key Points:

- **Global Reach:** Digital marketing enables yoga teachers to connect with students worldwide, promoting courses, workshops, and certifications across different countries.
- **Cost-Effective Promotion:** Social media ads, email marketing, and content marketing reduce the cost compared to traditional advertising methods.
- **Content-Based Learning:** Blogs, videos, and live sessions help in spreading authentic yogic knowledge, including teachings from classical texts like Patanjali Yoga Sutras.
- **Personal Branding:** Yoga instructors can build their identity through consistent online presence, testimonials, and engaging content.
- **Interactive Learning:** Platforms like Google Meet allow live classes, doubt-clearing sessions, and real-time feedback.
- **Flexibility:** Students can learn at their own pace through recorded sessions, making yoga education more inclusive.
- **Community Building:** Online groups and forums create a sense of belonging and support among learners.
- **Data Analytics:** Digital tools help track user engagement, preferences, and progress, improving teaching strategies.

In conclusion, digital marketing plays a crucial role in expanding yoga education by blending ancient wisdom with modern technology, ensuring its relevance in today's digital age.

5. Advantages of Yoga Education as a Marketing Tool

5.1 High Trust Value

Since yoga is rooted in ancient wisdom, it carries a high level of trust and authenticity.

5.2 Global Acceptance

Yoga transcends cultural and geographical boundaries, making it universally appealing.

5.3 Cost-Effective Promotion

Word-of-mouth and community engagement reduce the need for expensive advertising.

5.4 Long-Term Customer Loyalty

Yoga creates lasting lifestyle changes, leading to long-term customer relationships.

6. Challenges

6.1 Commercialization vs Authenticity

Excessive commercialization can distort the true essence of yoga.

6.2 Cultural Dilution

Ignoring traditional teachings reduces yoga to mere physical exercise.

6.3 Ethical Concerns

Using spirituality purely for profit raises moral questions.

7. Integration of Tradition and Modern Marketing

Integration of Tradition and Modern Marketing for Yoga

The integration of traditional yogic values with modern marketing strategies is essential for preserving authenticity while expanding global reach. Rooted in ancient texts like the Yoga Sutras of Patanjali, yoga emphasizes spirituality, discipline, and self-realization. However, in today's digital age, effective marketing is necessary to communicate these values to a wider audience. A balanced approach ensures that commercialization does not dilute the essence of yoga.

- **Preservation of Authenticity**

Traditional teachings such as *Ashtanga Yoga* and *Dhyana* should remain central, ensuring yoga is not reduced to mere physical exercise.

- **Use of Digital Platforms**

Platforms like Instagram and YouTube help yoga practitioners share knowledge globally through videos, live sessions, and tutorials.

- **Content-Based Marketing**

Blogs, e-books, and online courses incorporating references from texts like the Bhagavad Gita enhance credibility and depth.

- **Branding with Cultural Identity**

Yoga institutions can highlight Indian heritage, Sanskrit terminology, and traditional practices to create a unique identity.

- **Influencer and Community Engagement**

Collaboration with authentic yoga gurus and wellness influencers builds trust and wider outreach.

- **Hybrid Learning Models**

Combining offline gurukul-style teaching with online classes ensures accessibility without losing traditional essence.

- **Ethical Marketing Practices**

Avoiding over-commercialization and maintaining respect for yoga's spiritual roots is crucial.

- **Global Adaptation with Local Roots**

While adapting to global audiences, maintaining core values rooted in Indian philosophy ensures sustainability.

In conclusion, the integration of tradition and modern marketing creates a sustainable model where yoga remains both authentic and accessible, benefiting practitioners worldwide.

8. Conclusion

Yoga education has evolved into a powerful and distinctive marketing tool that bridges the gap between ancient spiritual wisdom and contemporary business practices. Rooted in classical texts such as the Yoga Sutras, Bhagavad Gita, and Hatha Yoga Pradipika, it carries a sense of authenticity, credibility, and philosophical depth that appeals strongly to modern consumers seeking meaning, balance, and well-being in their lives. Unlike conventional marketing approaches that focus primarily on product features, yoga-based marketing emphasizes holistic benefits—physical health, mental clarity, emotional stability, and spiritual growth—thereby creating a deeper and more personal connection with consumers. This experiential and value-driven approach enhances brand trust, loyalty, and long-term engagement. Moreover, the global rise in health consciousness and mindfulness has further expanded the acceptance of yoga education across industries such as wellness tourism, fitness, and lifestyle branding. However, the growing commercialization of yoga also presents challenges, particularly the risk of diluting its traditional essence for profit-driven motives. It is therefore essential for organizations and marketers to maintain a careful balance between innovation and authenticity, ensuring that the core values of yoga are preserved and respected. Ethical use of yoga education in marketing not only strengthens brand identity but also contributes positively to society by promoting healthier lifestyles, sustainable consumption, and inner well-being. In this way, yoga education serves not just as a marketing strategy, but as a transformative force for both businesses and individuals.

References

Traditional Texts

1. Yoga Sutras of Patanjali
2. Bhagavad Gita
3. Hatha Yoga Pradipika
4. Upanishads

Modern Research & Books

5. Kotler, P. – *Marketing Management*
6. Berry, L. – Relationship Marketing
7. Pine & Gilmore – *Experience Economy*
8. Global Wellness Institute Reports
9. Ministry of AYUSH, Government of India
10. WHO Wellness Reports
11. Journal of Consumer Marketing
12. Journal of Marketing Research
13. ResearchGate Studies on Yoga Industry
14. ScienceDirect Articles on Yoga and Consumer Behavior
15. SAGE Journals on Yoga Media and Branding

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

वैश्वीकरण के दौर में लोक परंपरा और आधुनिकता

डॉ. अन्जनी कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, हर्रैया, बस्ती, उत्तर प्रदेश।
संबद्ध : सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु सिद्धार्थ नगर, उत्तर प्रदेश।

अमूर्त - प्रस्तुत शोध-पत्र वैश्वीकरण के युग में भारतीय ग्रामीण समाज के संक्रमणकालीन स्वरूप और उसकी सांस्कृतिक निरंतरता का गहन विश्लेषण करता है। शोध का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण भारत की मौलिक पहचान को रेखांकित करना तथा आधुनिकता एवं परंपरा के मध्य स्थापित हो रहे नवीन समन्वय की पड़ताल करना है। यह अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान पद्धति और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें तथ्यों के संकलन हेतु माध्यमिक स्रोतों (पुस्तकों, शोध-पत्रों एवं डिजिटल अभिलेखागारों) का उपयोग किया गया है। शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि भारतीय ग्रामीण समाज फर्डिनेंड टॉनीज़ द्वारा वर्णित 'गेमिनशाफ्ट' (सामुदायिक जुड़ाव) से 'गेसेलशाफ्ट' (तार्किक समाज) की ओर अग्रसर तो है, किंतु उसने अपनी मूल पहचान का पूर्णतः त्याग नहीं किया है। एम.एन. श्रीनिवास और योगेन्द्र सिंह के सिद्धांतों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण भारत में 'परंपरा का आधुनिकीकरण' हो रहा है। स्मार्टफोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया जैसे आधुनिक साधनों ने लोकगीतों, त्योहारों (जैसे मकर संक्रांति, दशहरा, पोंगल एवं होली) और स्थानीय कलाओं को 'ग्लोकलाइजेशन' (Glocalization) के माध्यम से वैश्विक पटल पर नई दृश्यता प्रदान की है।

अध्ययन यह भी रेखांकित करता है कि जहाँ शिक्षा और लैंगिक समानता जैसे सकारात्मक परिवर्तन आए हैं, वहीं उपभोक्तावाद और पीढ़ीगत संघर्ष जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। अंततः, यह शोध-पत्र सुझाव देता है कि ग्रामीण हस्तशिल्प की 'जीआई टैगिंग', मौखिक परंपराओं का डिजिटल दस्तावेजीकरण तथा मूल्यों पर आधारित आधुनिक शिक्षा के माध्यम से 'भारत की आत्मा' को वैश्विक दौर में सुरक्षित रखा जा सकता है। यह 'मृदु संक्रमण' सिद्ध करता है कि भारतीय गाँव तकनीकी प्रगति के साथ कदम मिलाते हुए भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से मजबूती से जुड़े हुए हैं।

मुख्य शब्द- ग्रामीण लोक परंपराएँ, वैश्वीकरण, ग्लोकलाइजेशन, सांस्कृतिक निरंतरता, पारंपरिक मूल्य, सांस्कृतिक विविधता, आधुनिकता, सामूहिक एकता।

प्रस्तावना - वैश्वीकरण के इस युग में समाज के प्रत्येक क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। विशेष रूप से ग्रामीण समाज, जो कभी अपनी लोक परंपराओं, रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामूहिक जीवन-शैली के लिए जाना जाता था, आज आधुनिकता और वैश्विक प्रभावों से गहराई से प्रभावित हो रहा है। भारतीय समाज की वास्तविक चेतना तथा उसकी पहचान का मूल आधार सदियों से यहाँ के गाँव ही रहे हैं। जैसा कि महात्मा गांधी ने अपनी कृति 'ग्राम स्वराज' में विशेष बल दिया है कि भारत की आत्मा उसके देहातों में निवास करती है। उनके अनुसार, यदि गाँवों का अस्तित्व संकट में पड़ता है, तो यह केवल एक भौगोलिक क्षति नहीं होगी, बल्कि संपूर्ण हिंदुस्तान के सांस्कृतिक और नैतिक पतन का कारण बनेगी। गांधी जी ने गाँवों को सत्य, सादगी और अहिंसा के जीवंत केंद्र के रूप में देखा तथा उनकी सेवा को ही वास्तविक

स्वराज का मार्ग माना। हालांकि, इसी संदर्भ में लियोनेल कर्टिस जैसे पश्चिमी विचारकों ने भारतीय ग्रामीण परिवेश की दुर्दशा को देखते हुए उन्हें 'कूड़े के ढेर' जैसी अपमानजनक संज्ञा दी थी, जिसे गांधी जी ने आत्म-सुधार की चुनौती के रूप में स्वीकार किया। उनका स्वप्न गाँवों को केवल स्वच्छ बनाना ही नहीं, बल्कि उन्हें एक ऐसे आदर्श, शिक्षित एवं स्वावलंबी समाज के रूप में विकसित करना था, जो वैश्विक पटल पर एक अद्वितीय प्रतिमान प्रस्तुत कर सके।[1]

यदि हम समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से देखें, तो भारतीय गाँव कोई एकरूप ढांचा नहीं हैं, बल्कि वे अपनी बनावट में अत्यंत विविधतापूर्ण और जटिल हैं। प्रख्यात समाजशास्त्री एस.सी. दुबे ने अपनी कृति 'इंडियन विलेज' में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक ग्रामीण बस्ती का अपना एक विशिष्ट 'व्यक्तित्व' होता है। जहाँ कुछ गाँव अपने सामुदायिक सौहार्द एवं उदारता के लिए पहचाने जाते हैं, वहीं कुछ अन्य अपने आंतरिक संघर्षों या रूढ़िवादी प्रवृत्तियों के कारण चर्चा में रहते हैं। यह विशिष्टता वहाँ की क्षेत्रीय परंपराओं, लोकभाषा, वेशभूषा और सामाजिक शिष्टाचार से निर्धारित होती है, जो उस विशेष क्षेत्र की सीमाओं में रची-बसी होती है।[2]

इस सामाजिक ताने-बाने का सबसे मजबूत हिस्सा यहाँ की लोक संस्कृति और वे प्रथाएँ हैं, जो जीवन जीने की एक अनूठी पद्धति विकसित करती हैं। यहाँ लोक संस्कृति का अर्थ केवल मनोरंजन या गीतों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामूहिक कृषि की परंपरा, आपसी सहयोग की जजमानी व्यवस्था और संकट के समय एक-दूसरे के साथ खड़े होने के अलिखित नियम शामिल हैं। ये प्रथाएँ ही ग्रामीण संगठन को वह स्थायित्व प्रदान करती हैं, जो उन्हें शहरी व्यक्तिवाद से अलग करता है।

किंतु, वर्तमान में वैश्वीकरण और आधुनिकता की तीव्र लहर ने इन प्राचीन परंपराओं के सम्मुख कई नवीन चुनौतियाँ और अवसर प्रस्तुत कर दिए हैं। वह ज्ञान और प्रथाएँ जो कभी केवल मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थीं, आज तकनीक और वैश्विक सूचना तंत्र के संपर्क में आकर एक नए धरातल पर खड़ी हैं। यह बदलाव इस बात का संकेत नहीं है कि ग्रामीण संस्कृति विलुप्त हो रही है, बल्कि यह इस ओर इशारा करता है कि आज का ग्रामीण समाज अपनी 'सामूहिक एकता' और स्थानीय पहचान को बचाए रखने के लिए आधुनिकता के साथ एक नया सामंजस्य बिठा रहा है। सर्वप्रथम 'ग्रामीण भारतरू संस्कृति का उद्गम स्थल' खंड में गाँवों की मौलिकता को परिभाषित किया गया है। तत्पश्चात् वैश्वीकरण के प्रभाव एवं सामाजिक रूपांतरणों की चर्चा की गई है। तदुपरांत फर्डिनेंड टॉनीज़ के 'गेमिनशाफ्ट' से 'गेसेलशाफ्ट' की ओर संक्रमण द्वारा सांस्कृतिक द्वंद्व को परखा गया है। अंततः परंपरा और आधुनिकता के सहज समन्वय एवं भविष्य की संभावनाओं का निष्कर्ष प्रस्तुत है।

1. ग्रामीण भारत : संस्कृति का उद्गम स्थल - चार्ल्स मेटकाफ के अनुसार भारतीय ग्रामीण समुदाय 'लघु गणतंत्र' थे, जो बाहरी परिवर्तनों और राजनीतिक उथल-पुथल से अप्रभावित रहकर आत्मनिर्भर बने रहे। उनकी यह स्वायत्तता ही भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता का आधार रही। हालांकि, कालक्रम में यह व्यवस्था सुरक्षित न रह सकी, किंतु इसी विकेंद्रीकृत ढांचे ने सदियों तक भारतीय समाज को स्थिरता और स्वतंत्रता प्रदान की।[3] इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए, समाजशास्त्री रॉबर्ट रेडफील्ड (Little Community 1956) के अनुसार, ''लोक समाज लघु, एकाकी, निरक्षर तथा सामाजिक रूप से समरस समाज होते हैं। इन समाजों में घनिष्ठ सामाजिक एकत्व (लगाव) और नातेदारी की भावना होती है। इनकी साझा संस्कृति की जड़ें परम्परा और धर्म में गहरी होती हैं। इन समाजों में अवैयक्तिक और कानून सम्मत व्यवहार की अपेक्षा वैयक्तिक और स्वतः स्फूर्त व्यवहार होता है। यही नहीं, इन समाजों में बौद्धिक जीवन न के बराबर ही होता है। ऐसे समाज स्वतः विकसित होते हैं। इनकी प्रकृति मौलिक, प्रारंभिक एवं निश्चिततायुक्त होती है।''[4] इसके अतिरिक्त, डॉ. बी.आर. चौहान जैसे भारतीय विद्वानों ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए राजस्थान विलेज' में यह सिद्ध किया है कि गाँवों की लोक संस्कृति वहां की 'मौखिक परंपरा' पर टिकी होती है, जो लिखित इतिहास से भी अधिक प्राचीन और प्रभावी है। उन्होंने रेखांकित किया कि कई मायनों में सांस्कृतिक एकता होने के साथ-साथ यह गाँव भौतिक रूप से भी स्वायत्त इकाई है।[5]

2. वैश्वीकरण : एक वैश्विक बदलाव - ग्रामीण भारत की पारंपरिक और आत्मनिर्भर संरचना पर वैश्वीकरण ने

गहरा प्रभाव डाला है। यह केवल आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक मूल्यों और संचार प्रतिमानों में व्यापक रूपांतरण का संकेत है। आज दुनिया के विभिन्न हिस्से इस प्रकार परस्पर जुड़ चुके हैं कि भौगोलिक दूरी का महत्व कम हो गया है।

मीडिया सिद्धांतकार Marshall McLuhan ने 'वैश्विक ग्राम' की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए कहा था कि आधुनिक संचार तकनीकें पूरी दुनिया को एक छोटे गाँव में बदल देंगी। इंटरनेट, मोबाइल और सोशल मीडिया ने इस विचार को मूर्त रूप दिया है। अब भारतीय गाँव भी वैश्विक सूचना तंत्र का हिस्सा बन चुके हैं।[6]

इसी प्रक्रिया को समाजशास्त्री Anthony Giddens ने 'समय और स्थान के संकुचन' के रूप में समझाया है। उनके अनुसार, स्थानीय जीवन अब वैश्विक घटनाओं से सीधे प्रभावित होता है। गाँव की आर्थिक गतिविधियाँ, उपभोग की प्रवृत्तियां और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ अब वैश्विक धाराओं से जुड़ चुकी हैं।[7]

योगेन्द्र सिंह ने वैश्वीकरण के समक्ष भारतीय समाज की बहुलता तथा सांस्कृतिक विविधताओं के स्वरूपों की चर्चा की है। व्यापक वैश्वीकरण ने आधारभूत परिवर्तन किये हैं, जिसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विस्तार ने गति प्रदान की है। संस्कृति का आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति की मौलिकता के समक्ष चुनौतियां प्रस्तुत की हैं। यद्यपि भारत की अधिकांश जनसंख्या अभी भी स्थानीय और परंपरागत संस्कृति के प्रति निष्ठावान है। तथापि वैश्वीकरण ने इनके समक्ष संभावनाओं के नए द्वार खोले हैं। टेलीविजन के ज्ञान, मनोरंजन और सूचना प्रसारण ने वैश्विक आधारों को आम लोगों के लिए परोसा है। यही कारण है कि प्रबल वैश्विक प्रभावों के बावजूद भारतीय गाँव अपनी सांस्कृतिक पहचान पूरी तरह नहीं खोते।[8]

रोलैंड रॉबर्टसन ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है कि वैश्वीकरण की यह लहर जहाँ एक ओर सांस्कृतिक समरूपता का डर पैदा करती है अर्थात् कि सब कुछ एक जैसा (पश्चिमी जैसा) हो जाएगा वहीं दूसरी ओर इसी से 'ग्लोकलाइजेशन' (Glocalization) की अवधारणा उभरती है, जिसमें वैश्विक तकनीक एवं संसाधनों का उपयोग स्थानीय विशिष्टताओं को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। गाँवों के त्यौहार, लोककला और हस्तशिल्प अब डिजिटल माध्यमों से वैश्विक पहचान प्राप्त कर रहे हैं, किंतु उनकी जड़ें स्थानीय परंपराओं में ही अक्षुण्ण रहती हैं।[9]

3. परंपरा बनाम आधुनिकता : एक द्वंद्व - ग्रामीण सामाजिक संरचना में व्याप्त समकालीन बदलावों का सूक्ष्म विश्लेषण करने हेतु फर्डिनेंड टॉनीज़ का सैद्धांतिक ढांचा एक ठोस आधार निर्मित करता है। फर्डिनेंड टॉनीज़ के अनुसार, पारंपरिक समुदायों में पाया जाने वाला प्रगाढ़ सामुदायिक लगाव (Gemeinschaft) अब वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप एक औपचारिक संविदात्मक और तर्क-प्रधान व्यवस्था (Gesellschaft) में परिवर्तित हो रहा है।[10]

हालाँकि, यह रूपांतरण बिना किसी आंतरिक संघर्ष के संपन्न नहीं होता। प्रकार्यवादी (Functionalist) दृष्टिकोण के आलोक में देखा जाए तो संस्कृति केवल रस्मों का समूह नहीं, अपितु समाज की अनिवार्य प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सशक्त तंत्र है।[11]

अतः जब नई 'आधुनिक' प्रवृत्तियाँ इन पुरानी आवश्यकताओं से टकराती हैं, तो ग्रामीण समाज में एक गहरा सांस्कृतिक द्वंद्व उत्पन्न होता है। ठमबा, न्सतपबी के परिप्रेक्ष्य में, विशेषकर विकासशील राष्ट्रों के ग्रामीण अंचलों में, वैश्वीकरण को एक रचनात्मक प्रक्रिया के बजाय एक विघटनकारी शक्ति (Disruptive Force) माना जाता है, जो स्थानीय अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत पर वैश्विक पूंजीवाद के प्रहार के समान प्रतीत होती है।[12]

इस सांस्कृतिक टकराव के बीच एक महत्वपूर्ण विरोधाभास यह उभरता है कि वैश्वीकरण के दबाव ने स्थानीय समुदायों को अपनी विशिष्ट पहचान के प्रति और अधिक सचेत कर दिया है। टॉमलिंसन (2003) के तर्कों का समर्थन करते हुए यह कहा जा सकता है कि आज ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति सजगता और गौरव करने की प्रवृत्ति पहले से अधिक तीव्र हुई है।[13] यह आधुनिकता का वह मोड़ है जहाँ 'वैश्विक' होने की प्रक्रिया, 'स्थानीय' होने के महत्व को और अधिक पुख्ता कर देती है।

पीटर बर्जर और सैमुअल पी. हंटिंगटन ने स्पष्ट किया है कि ग्रामीण समाज अब जीवनशैली, भाषा, वेशभूषा और उपभोग के विदेशी तरीकों को केवल आधुनिकता के रूप में नहीं, बल्कि अपनी मूल अस्मिता के लिए एक 'आसन्न संकट' के रूप में चिन्हित कर रहा है।[14]

क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस के विचारों को यदि यहाँ जोड़ें, तो परंपरा अतीत का वह अनिवार्य 'दोहराव' है जो समाज को निरंतरता प्रदान करता है। जब इस निरंतरता में बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप बढ़ता है, तो स्थानीय संस्कृतियाँ रक्षात्मक रुख अपनाते हुए वैश्वीकरण के विरुद्ध एक सशक्त 'सांस्कृतिक प्रतिरोध' का निर्माण करती हैं।[15]

परिणामस्वरूप, ग्रामीण भारत में आधुनिकता का प्रवेश बाह्य दबाव नहीं, बल्कि एक सहज 'सांस्कृतिक समन्वय' है। यहाँ श्रद्धा अक्षुण्ण है, केवल माध्यम तकनीकी हुआ है। डिजिटल उपकरणों ने पारंपरिक मूल्यों और लोक-संस्कृति को विस्थापित करने के बजाय उन्हें 'वैश्विक दृश्यता' प्रदान कर अधिक सुलभ बनाया है।

4. वैश्वीकरण/संपर्क और पारंपरिक मूल्यों की निरंतरता - ग्रामीण भारत में आधुनिकता का प्रवेश कोई बाह्य दबाव नहीं, बल्कि एक सहज 'सांस्कृतिक समन्वय' की प्रक्रिया है। यहाँ परंपरा और आधुनिकता के मध्य कोई विभाजनकारी रेखा नहीं है, अपितु एक ऐसा संश्लेषण है जो पारंपरिक जड़ों को नवीन विस्तार दे रहा है। ग्रामीण समाज अपनी मौलिक पहचान सुरक्षित रखते हुए आधुनिक उपकरणों को सहजता से आत्मसात कर रहा है।

इसका सटीक प्रमाण दैनिक धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों में दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन भजन और मंत्र आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, किंतु अब वे स्मार्टफोन या ब्लूटूथ स्पीकर के माध्यम से ध्वनित होते हैं—अर्थात श्रद्धा अक्षुण्ण है, केवल माध्यम तकनीकी हुआ है। इसी प्रकार, पारंपरिक विवाहों और लोकगीतों को डिजिटल कैमरों व सोशल मीडिया के माध्यम से 'वैश्विक दृश्यता 'प्राप्त हो रही है। यह वस्तुतः 'परंपरा का आधुनिकीकरण' है।

एम.एन. श्रीनिवास ने अपनी कृति में स्पष्ट किया है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज में नवीन विचार, प्रौद्योगिकी और आधुनिक संस्थागत संरचनाओं का सूत्रपात किया। श्रीनिवास के अनुसार, यह प्रक्रिया पारंपरिक मूल्यों में विस्थापन के बजाय रूपांतरण का माध्यम बनी।[16]

यह सहज बदलाव सिद्ध करता है कि ग्रामीण समाज अपनी संस्कृति को विस्मृत नहीं कर रहा, बल्कि उसमें नवीन प्रयोग कर रहा है। हॉमी भाभा के 'हाइब्रिडिटी' (Hybridity) के सिद्धांत के आलोक में देखा जाए, तो यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ दो संस्कृतियाँ मिलकर एक तीसरी और अधिक जीवंत पहचान निर्मित करती हैं। गाँव का युवा आज आधुनिक वेशभूषा और इंटरनेट का उपयोग करते हुए भी अपनी कुलदेवी की पूजा या स्थानीय मेलों के आयोजन में उतनी ही सक्रियता दिखाता है। यह बदलाव एक 'मृदु संक्रमण' है, जो यह दर्शाता है कि भारतीय ग्रामीण मानस इतना लचीला है कि वह आधुनिकता को अपनी शर्तों पर स्वीकार करता है।[17] अंततः, वैश्वीकरण और पारंपरिक मूल्यों की यह निरंतरता यह संदेश देती है कि परंपराएँ मृतप्राय नहीं होतीं, वे मात्र तकनीक का हाथ पकड़कर स्वयं को नए युग के अनुरूप ढाल लेती हैं।

बदलते सामाजिक मूल्यों का प्रभाव - वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से ग्रामीण समाज के सामाजिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं, जिनका विवरण निम्नवत है—

सकारात्मक प्रभाव - ग्रामीण समाज में आए परिवर्तनों ने केवल संरचनात्मक बदलाव ही नहीं किए हैं, बल्कि विकास और प्रगति की नई संभावनाओं को भी जन्म दिया है। आधुनिक साधनों, शिक्षा और संचार माध्यमों ने सामाजिक चेतना को विस्तृत बनाया है और व्यक्तियों को नए अवसरों से जोड़ा है।

1. शिक्षा एवं जागरूकता में वृद्धि - डिजिटल संसाधनों और शिक्षा के व्यापक प्रसार से ग्रामीण युवाओं में सामाजिक जागरूकता, आत्मविश्वास तथा भविष्य के प्रति एक सुव्यवस्थित एवं योजनाबद्ध दृष्टिकोण विकसित हुआ है।

2. लैंगिक समानता की दिशा में प्रगति - महिलाओं की शिक्षा, स्वरोजगार और स्थानीय प्रशासन में सक्रिय भागीदारी से पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं में सकारात्मक परिवर्तन आया है, जिससे निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में उनकी उपस्थिति अधिक सशक्त हुई है।

3. आर्थिक अवसरों का विस्तार - तकनीकी संपर्क और बाज़ार से जुड़ाव ने लघु उद्योगों एवं स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक गतिशील, सुदृढ़ और विविधीकृत किया है।

4. सामाजिक गतिशीलता - आधुनिक शिक्षा एवं विविध रोजगार के अवसरों ने जाति-आधारित पेशागत जड़ता को शिथिल किया है, जिससे सामाजिक प्रतिष्ठा अब जन्म के स्थान पर योग्यता और व्यक्तिगत उपलब्धि पर आधारित होने लगी है।

5. सांस्कृतिक पुनर्परिभाषा - डिजिटल मंचों ने स्थानीय लोककलाओं एवं सांस्कृतिक परंपराओं को भौगोलिक सीमाओं से मुक्त कर उन्हें वैश्विक पटल पर एक नवीन पहचान और व्यापक विस्तार प्रदान किया है।

नकारात्मक प्रभाव - आधुनिक जीवनशैली एवं वैश्विक प्रभावों के कारण पारंपरिक संरचनाएं कमजोर हुई हैं, जिससे सामाजिक संतुलन और सांस्कृतिक निरंतरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

1. सामूहिकता का क्षरण - बढ़ती व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से सामुदायिक एकता एवं सहयोग की भावना कमजोर हुई है, जिससे सामाजिक संबंध अब औपचारिक और सीमित हो गए हैं।

2. उपभोक्तावाद का विस्तार - बाजार-प्रधान संस्कृति से प्रदर्शन और प्रतिस्पर्धा बढ़ी है, जिससे बढ़ते आर्थिक दबाव ने जीवन की पारंपरिक सादगी को प्रभावित किया है।

3. पारंपरिक ज्ञान का ह्रास - नई पीढ़ी के आधुनिक रुझान से मौखिक परंपराओं और लोक-कौशल का हस्तांतरण घटा है, जिससे स्थानीय ज्ञान-प्रणाली निरंतर कमजोर हो रही है।

4. पीढ़ीगत संघर्ष - लेखक भगवान प्रसाद गौड़ के अनुसार, वैश्वीकरण की चकाचौंध युवा पीढ़ी को सांस्कृतिक विरासत और नैतिक मूल्यों से दूर कर रही है। दिखावे की प्रवृत्ति ने नैतिकता, अपनत्व और देशभक्ति जैसे मूल तत्वों को कमजोर किया है, जो चिंताजनक है। अतः सांस्कृतिक धरोहर को सहेजने हेतु युवाओं को जागरूक करना नितांत आवश्यक है।[18]

5. सांस्कृतिक समरूपीकरण का खतरा - वैश्विक प्रभाव से स्थानीय भाषाओं और रीति-रिवाजों में बदलाव आ रहा है। उचित संतुलन के अभाव में सांस्कृतिक विविधता लुप्त हो सकती है।

उद्देश्य - प्रस्तुत शोध-पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. भारतीय ग्रामीण समाज की मूल संरचना, जीवन-पद्धति तथा सांस्कृतिक आधार का विश्लेषण करना, ताकि उसकी विशिष्ट पहचान को समझा जा सके।

2. सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों के प्रभाव से ग्रामीण मूल्यों में आए बदलावों की समग्र पड़ताल करना।

3. परंपरा और आधुनिकता के बीच स्थापित हो रहे समन्वय एवं अनुकूलन की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करना।

4. ग्रामीण संस्कृति में निरंतरता बनाए रखने वाले सामाजिक पहलुओं को उजागर करना।

5. वर्तमान परिवर्तनों के आधार पर ग्रामीण समाज की भावी सामाजिक-सांस्कृतिक दिशा का आकलन करना।

शोध विधि - यह अध्ययन गुणात्मक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। इसमें व्याख्यात्मक (Interpretative) और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके माध्यम से ग्रामीण समाज में बदलते सामाजिक मूल्यों को सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है।

तथ्य संकलन - इस शोध में तथ्य संकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नल लेखों, सरकारी रिपोर्टों तथा Google Scholar, ResearchGate, Internet Archive और Google e-Books से संबंधित सामग्री एकत्रित कर उसका चयन और वर्गीकरण तथा समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है।

शोध प्रश्न : अध्ययन को अधिक सुसंगत और प्रभावशील बनाने के लिए शोध प्रश्न इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं–

शोध प्रश्न संख्या : 01 वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में भारतीय ग्रामीण समाज अपनी पारंपरिक लोक संस्कृति और सांस्कृतिक पहचान को किस सीमा तक सुरक्षित रखने में सफल रहा है?

शोध प्रश्न संख्या : 02 क्या यह परिवर्तन पश्चिमीकरण है या सांस्कृतिक संमिश्रण/आधुनिकीकरण?

परिणाम एवं विमर्श : भारतीय ग्रामीण समाज में वैश्वीकरण और आधुनिक तकनीक ने सांस्कृतिक बदलाव लाए हैं। ग्रामीण युवाओं पर वैश्विक जीवनशैली और उपभोक्तावादी मूल्य प्रभाव डाल रहे हैं, लेकिन गहरे सांस्कृतिक मूल्य अभी भी स्थिर हैं। परंपरा और आधुनिकता का मिश्रण ग्रामीण समाज में नई सांस्कृतिक पहचान बना रहा है। इस प्रकार, ग्रामीण संस्कृति पूरी तरह नहीं खोई, बल्कि आधुनिक तत्वों के साथ ढल रही है।

1. ग्रामीण समाज में पारंपरिक संस्कृति का संरक्षण : वैश्वीकरण और संचार क्रांति ने भारतीय ग्रामीण समाज की सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। समाजशास्त्री Manuel Castells (1996) के अनुसार, कम्प्यूटरीकृत नेटवर्क राष्ट्रीय सीमाओं के पार सूचना के तीव्र और अप्रतिबंधित प्रवाह को संभव बनाते हैं, जिससे समय, स्थान और परंपरा की बाधाएँ कमजोर होती हैं।[19] इसी क्रम में Telecom Regulatory Authority of India (TRAI, 2021) की रिपोर्ट दर्शाती है कि ग्रामीण भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है, जिससे वैश्विक सांस्कृतिक सामग्री तक पहुँच अधिक सुलभ हुई है। परिणामस्वरूप, पश्चिमी उपभोक्तावादी मूल्यों और जीवन-शैली का प्रभाव ग्रामीण युवाओं पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।[20]

फिर भी, संस्कृति एक बहुस्तरीय संरचना है। Arjun Appadurai (1990) के अनुसार, वैश्वीकरण 'हाइब्रिड संस्कृतियों' को जन्म देता है, जहाँ स्थानीय और वैश्विक तत्वों का अंतःसंबंध एवं मिश्रण होता है। इसी संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि सतही सांस्कृतिक तत्वों—जैसे वस्त्र, भाषा और मनोरंजन—में परिवर्तन अपेक्षाकृत तीव्र है, जबकि गहरे सांस्कृतिक मूल्य अपेक्षाकृत स्थिर बने रहते हैं।[21]

अमेरिकी मानवशास्त्री Alfred Kroeber संस्कृति को 'अति-जैविक' आयाम मानते हैं और इसे जैविक शक्तियों से उच्चतर स्तर का मानते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक परिवर्तन रैखिक या पूर्णतः विनाशकारी नहीं होता, बल्कि रूपांतरणात्मक प्रकृति का होता है। द्वितीयक आँकड़े भी इस मिश्रित स्थिति की पुष्टि करते हैं।[22] राष्ट्रीय हस्तशिल्प विकास निगम (2023) के अनुसार ग्रामीण हस्तशिल्प और लोककला का घरेलू बाजार में योगदान बढ़ा है, जो लोक परंपराओं के आर्थिक पुनजीवन को दर्शाता है। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में मेलों, सांस्कृतिक आयोजनों और स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता भी बनी हुई है। उदाहरणस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों में होली, पोंगल और बैसाखी जैसे पारंपरिक त्योहार आज भी सामुदायिक स्तर पर मनाए जाते हैं। हालांकि, इन उत्सवों में क्श्र संगीत और सोशल मीडिया जैसे आधुनिक तत्व जुड़ गए हैं।[23] साथ ही, श्रीनिवास के लेख से यह जानकारी मिलती है कि ग्रामीण भारत में हो रहे संरचनात्मक परिवर्तनों—जमींदारी उन्मूलन, बँटाईदारी सुधार, पंचायत सशक्तिकरण, कृषि विस्तार सेवाएँ, सड़क निर्माण, परिवहन विस्तार तथा औद्योगीकरण—ने जीवनशैली में उल्लेखनीय बदलाव लाए हैं। ये परिवर्तन दर्शाते हैं कि ग्रामीण समाज परंपरा और आधुनिकता के बीच अंतःक्रिया की प्रक्रिया से गुजर रहा है, जहाँ सांस्कृतिक स्वरूप बदल रहा है, किंतु उसकी गहरी पहचान पूरी तरह विलुप्त नहीं हुई है।[24]

2. परिवर्तन का स्वरूप : पश्चिमीकरण या सांस्कृतिक संमिश्रण : ग्रामीण समाज में दिखाई देने वाला परिवर्तन पूर्णतः 'पश्चिमीकरण' नहीं कहा जा सकता। पश्चिमीकरण का अर्थ पश्चिमी जीवन-शैली, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों और संस्थागत मूल्यों का प्रत्यक्ष अनुकरण है। यद्यपि वैश्विक मीडिया, डिजिटल तकनीक और बाजार-आधारित संस्कृति का प्रभाव ग्रामीण युवाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, किंतु यह परिवर्तन संपूर्ण सांस्कृतिक प्रतिस्थापन नहीं है। Jawaharlal Nehru ने भारतीय संस्कृति को एक गतिशील और समन्वयकारी परंपरा माना। अपनी कृति The Discovery of India में उन्होंने भारतीय सभ्यता को विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं के निरंतर एकीकरण की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से भारतीय समाज बाहरी प्रभावों को आत्मसात करता है, न कि पूर्णतः आत्मसमर्पण।[25]

उदाहरणतः त्योहारों में आधुनिक तकनीकी तत्वों का समावेश हुआ है, परंतु अनुष्ठानिक संरचना और सामूहिक

सहभागिता अभी भी केंद्र में हैं।

भावी सुझाव - वैश्वीकरण और ग्रामीण लोक परंपराओं के इस द्वंद्व और समन्वय को ध्यान में रखते हुए,भविष्य के लिए सुझाव निम्नलिखित है–

1. ग्लोकल' मॉडल का प्रोत्साहन - ग्रामीण हस्तशिल्प और कृषि उत्पादों के विपणन हेतु ई-कॉमर्स एवं भौगोलिक संकेतक (GI Tagging) का प्रभावी उपयोग कर 'ब्रांड इंडिया' को वैश्विक बाजार में स्थापित किया जाए।

2. सांस्कृतिक पर्यटन का विकास - ग्रामीण क्षेत्रों को 'सांस्कृतिक अनुभव केंद्र' के रूप में विकसित कर पर्यटन को बढ़ावा देना, जिससे युवाओं में अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की अनुभूति और स्वरोजगार के नवीन अवसर सृजित हों।

3. डिजिटल दस्तावेजीकरण - मौखिक परंपराओं, लोककथाओं और पारंपरिक ज्ञान को पॉडकास्ट एवं डिजिटल आर्काइव के माध्यम से संरक्षित किया जाए। साथ ही, इसे प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए।

4. स्मार्ट सामुदायिक केंद्र - पारंपरिक चौपालों को इंटरनेट युक्त 'स्मार्ट केंद्रों' में रूपांतरित किया जाए, ताकि तकनीकी प्रगति के साथ-साथ सामाजिक सामूहिकता के भाव को भी बल मिले।

5. मूल्य आधारित शिक्षा - तकनीकी कौशल के साथ-साथ 'नैतिक मूल्यों' की शिक्षा पर बल दिया जाए, ताकि युवा पीढ़ी 'पश्चिमीकरण' और 'आधुनिकता' के सूक्ष्म अंतर को समझते हुए अपनी जड़ों से जुड़ी रहे।

6. नीतिगत हस्तक्षेप - सरकार को ऐसी समावेशी नीतियां निर्मित करनी चाहिए जो सांस्कृतिक समरूपीकरण के खतरों को कम करें और शोध के माध्यम से निरंतर ग्रामीण सांस्कृतिक अस्तित्व की रक्षा करें।

निष्कर्ष - प्रस्तुत शोध यह प्रतिपादित करता है कि वैश्वीकरण ग्रामीण भारत के लिए मात्र एक आर्थिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक गहरा सामाजिक-सांस्कृतिक रूपांतरण है। फर्डिनेंड टॉनीज़ के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में, ग्रामीण समाज का स्वरूप 'गेमिनशाफ्ट' (पारंपरिक समुदाय) से 'गेसेलशाफ्ट' (आधुनिक संविदात्मक समाज) की ओर अग्रसर है। इसके बावजूद, गांधीजी के 'ग्राम स्वराज' और रॉबर्ट रेडफील्ड के 'लघु समुदाय' के आधारभूत तत्व आज भी ग्रामीण चेतना में जीवंत हैं, जो वैश्विक समरूपीकरण (Homogenization) के प्रभावों को संतुलित करने का कार्य करते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में परंपरा और आधुनिकता के मध्य एक 'मृदु संक्रमण' (Soft Transition) दृष्टिगोचर होता है, जहाँ 'ग्लोकलाइजेशन' (Glocalization) के माध्यम से स्थानीय लोक-परंपराओं और 'दशहरा' व 'खिचड़ी' जैसे त्योहारों को नवीन वैश्विक पहचान प्राप्त हुई है। निष्कर्षतः, ग्रामीण भारत आज उस दहलीज पर खड़ा है जहाँ वह तकनीकी प्रगति को आत्मसात करते हुए भी अपनी जड़ों से वैचारिक रूप से जुड़ा है। भविष्य इसी समन्वय में निहित है कि 'भारत की आत्मा' गाँवों में सुरक्षित रहते हुए तकनीकी उन्नति के साथ वैश्विक पटल पर अपनी आभा बिखेरती रहे।

सन्दर्भ सूची

1. Gandhi, M. K. (1962). Village swaraj (H. M. Vyas, Comp.). Navajivan Publishing House. Page number 27.
2. Dube, S. C. (1955). Indian village.Routledge & Kegan Paul. Page number 06.
3. सर चार्ल्स मैटकाफ़ - भारतकोश, ज्ञान का हिन्दी महासागर https://share.google/7vbSyEHjpAdP0Y8OD
4. Harikrishna Rawat , Sociological Thinkers and Theorists page number 385.
5. Chauhan, B. R. (1967). A Rajasthan village. Institute of Social Sciences, Agra University, p. 284
6. मार्शल मैकलुहान का वैश्विक गाँव द्य परिभाषा और माध्यम - पाठ। Study.com https://study.com/academy/lesson/marshall-mcluhan-the-global-village-concept.html
7. Giddens, Anthony (1990). The Consequences of Modernity. Stanford University Press.
8. Singh, Yogendra (1992). Social Change in Modern India: Identity and Globalization, Jaipur: Rawat Publications

9. Roland Robertson - Globalization: Social Theory and Global Culture (Preview PDF)
Free Preview (partial PDF) from publisher preview (not full) - useful for key chapters & theory reading:
10. Tönnies, Ferdinand. 1957. Community and Society (gemeinschaft und gesellschaft). Translated by Charles P. Loomis. East Lansing: The Michigan State University Press. First published in 1887. [Google Scholar]
11. Holmwood, John. 2005. Functionalism and its Critics. In Modern Social Theory: An Introduction. Glendale: Scientific Research Publishing, pp. 87-109. [Google Scholar]
12. Beck, Ulrich. 2018. What Is Globalization? Hoboken: John Wiley & Sons. [Google Scholar]Globalization and Cultural Identity. The Global Trans-Formations Reader 2: 269-77. [Google Scholar]
13. Tomlinson, John. 2003. Globalization and Cultural Identity. The GlobalTrans- Formations Reader 2: 269-77. [Google Scholar]
14. Berger, Peter L., and Samuel P. Huntington, eds. 2003. Many Globalizations: Cultural Diversity in the Contemporary World. Oxford: Oxford University Press. [Google Scholar]
15. Lévi-Strauss, C., & Charbonnier, G. (1969). Entretiens avec Claude Lévi-Strauss. Union générale d'éditions
16. The process of westernisation and social change. Studocu. https://www.studocu.com/in/document/aligarh-muslim-university/introduction-to-sociology/the-process-of-westernisation-and-social-change/21730876
17. Bhabha, H. K. (1994). The Location of Culture. London: Routledge.
18. Gaur, B. P. (2021). Generational Conflict and Cultural Heritage. Rajasthan Sahitya Academy, Udaipur.
19. Castells, M. (1996). The Rise of the Network Society (Vol. 1). Oxford: Blackwell.
20. Telecom Regulatory Authority of India. (2021). The Indian Telecom Services Performance Indicators Report. New Delhi: TRAI.
21. Appadurai, A. (1990). Disjuncture and difference in the global cultural economy. Theory, Culture & Society, 7, 295-310.
22. Kroeber, A. L. (1944). Configurations of Cultural Growth. Berkeley: University of California Press, pp. 777-78.
23. National Handicrafts Development Corporation. (2023). Annual Report 2022-23. New Delhi: NHDC.
24. Srinivas, M. N. (Ed.). (1960). India's Villages (Trans. Madhu B. Joshi). p. 18. ISBN: 81-267-0025-4.
25. Jawaharlal Nehru. (1946). The Discovery of India. London: John Day Company.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाएँ

डॉ. शालिनी सी.
सह-प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड
तिरुवनंतपुरम, केरल-695014, भारत

सारांश– समकालीन हिंदी नाटक भारतीय समाज में घटित सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का सशक्त कलात्मक दस्तावेज है। इन नाटकों में बदलते पारिवारिक संबंध, मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष, स्त्री-अस्मिता, सामाजिक असमानता, साम्प्रदायिकता, सत्ता-संरचना तथा मानवीय मूल्यों के संकट को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना है। साहित्य समीक्षा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मोहन राकेश, शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, नरेंद्र मोहन तथा अन्य प्रमुख नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से समाज की जटिल समस्याओं और मनुष्य के आंतरिक संघर्षों को उजागर किया है। इन नाटकों में सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ करुणा, सहानुभूति, नैतिक चेतना, अस्मिता-बोध और मानवीय संबंधों की संवेदनशील प्रस्तुति देखने को मिलती है। अध्ययन निष्कर्षित करता है कि समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन के प्रभावों को रेखांकित करते हुए मानवीय संवेदनाओं के संरक्षण और पुनर्स्थापन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य शब्द–समकालीन हिंदी नाटक, सामाजिक परिवर्तन, मानवीय संवेदनाएँ, सामाजिक चेतना, आधुनिकता, नाट्य साहित्य।

परिचय

हिंदी नाटक भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जो समाज, संस्कृति और मानवीय जीवन के विविध पक्षों को मंचीय अभिव्यक्ति प्रदान करती है। नाटक केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज की वास्तविक परिस्थितियों, समस्याओं, संघर्षों और परिवर्तनों का सजीव चित्रण भी करता है। विशेष रूप से समकालीन हिंदी नाटक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। बदलती जीवन-शैली, औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण, तकनीकी विकास तथा पारंपरिक मूल्यों के क्षरण ने मानव जीवन को गहराई से प्रभावित किया है, जिसका प्रतिबिंब समकालीन हिंदी नाटकों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी नाटककारों ने समाज में व्याप्त असमानता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, पारिवारिक विघटन, लैंगिक भेदभाव, सांप्रदायिक तनाव तथा नैतिक मूल्यों के संकट जैसे मुद्दों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। मोहन राकेश, धर्मवीर

भारती, शंकर शेष, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेन्द्र वर्मा, नरेंद्र मोहन और असगर वजाहत जैसे नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके नाटकों में व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न द्वंद्व, संबंधों की जटिलता, पहचान का संकट तथा बदलती सामाजिक संरचनाओं के प्रभावों का गहन चित्रण मिलता है।

मानवीय संवेदनाएँ समकालीन हिंदी नाटकों का प्रमुख आधार हैं। करुणा, प्रेम, सहानुभूति, संघर्ष, पीड़ा, असुरक्षा, अकेलापन और आत्मसम्मान जैसी भावनाएँ नाटकीय पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। सामाजिक परिवर्तन के दौर में जब पारंपरिक मूल्य चुनौती का सामना करते हैं, तब नाटक मानव जीवन के आंतरिक और बाह्य संघर्षों को उजागर करते हुए समाज को आत्ममंथन का अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के अंतर्संबंध को समझने का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत है, जो समाज के बदलते स्वरूप तथा मनुष्य की संवेदनशील चेतना को गहराई से प्रतिबिंबित करता है।



चित्र 1. समकालीन हिंदी नाटक का विकास

साहित्य समीक्षा

समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक यथार्थ, बदलते जीवन-मूल्यों और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने वाली प्रभावी साहित्यिक विधा है। उपलब्ध शोध-साहित्य से स्पष्ट होता है कि हिंदी नाटक केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, प्रतिरोध, संवेदना और परिवर्तन का सशक्त मंच है। "Contemporary Hindi Drama: Introduction and Trends" में यह रेखांकित किया गया है कि नाटक की मूल प्रेरणा समाज के भीतर मानवीय संबंधों में आए परिवर्तन और उसके परिणामों को सामने लाना है। इस दृष्टि से समकालीन नाटक परिवार, वर्ग, राजनीति, धर्म, लैंगिक असमानता और नैतिक संकट जैसे प्रश्नों को संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

मोहन राकेश पर केंद्रित अध्ययनों में आधुनिक मनुष्य की मानसिक टूटन, पारिवारिक विघटन और अस्तित्वगत अकेलेपन को प्रमुख माना गया है। विशेषकर आधे-अधूरे जैसे नाटकों में मध्यवर्गीय परिवार की असंतुष्टि, स्त्री-पुरुष संबंधों का तनाव और आधुनिक जीवन की अपूर्णता सामाजिक परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक पक्ष को उद्घाटित करती है। इसी तरह "हिन्दी नाटकों में मध्यम वर्गीय जीवन और संघर्ष" में मध्यमवर्गीय जीवन की आर्थिक, नैतिक और संबंधगत चुनौतियों को समकालीन नाट्य-संवेदना का महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

लक्ष्मीनारायण लाल, शंकर शेष और सुरेन्द्र वर्मा पर उपलब्ध शोध यह संकेत करते हैं कि स्वतंत्रोत्तर हिंदी नाटक ने सामाजिक-राजनीतिक चेतना को नए ढंग से प्रस्तुत किया। शंकर शेष के नाटकों में सत्ता, शिक्षा, भ्रष्टाचार और व्यवस्था-विरोधी स्वर दिखाई देते हैं, जबकि सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में मिथक, इतिहास और आधुनिक संदर्भों के माध्यम से स्त्री-अस्मिता, नैतिकता और सामाजिक संरचना पर प्रश्न उठते हैं। "समकालीन हिन्दी नाटक और आधुनिकता बोध" जैसे अध्ययन आधुनिकता को केवल बाह्य परिवर्तन नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों की पुनर्व्याख्या के रूप में देखते हैं।

नरेंद्र मोहन के नाटकों पर उपलब्ध अध्ययन मानवीय मूल्यों, इतिहास-बोध और संवेदनशीलता को विशेष महत्व देते हैं। उनके नाटक सामाजिक विडंबनाओं के साथ-साथ मनुष्य की करुणा, संघर्ष और नैतिक विवेक को सामने लाते हैं। असगर वजाहत की रचनाओं पर शोध सामाजिक चेतना, साम्प्रदायिक सद्भाव और इतिहास की मानवीय पुनर्समीक्षा को केंद्र में रखता है। इसी क्रम में स्त्री, दलित, वंचित और उपेक्षित वर्गों से संबंधित नाट्य-लेखन सामाजिक परिवर्तन को अधिक लोकतांत्रिक और संवेदनात्मक बनाता है।



चित्र 2. सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख आयाम

भारतीय रंगमंच पर व्यापक अध्ययन, जैसे धर्मवीर भारती, भीष्म साहनी, हबीब तनवीर और महेश दत्तानी से जुड़े शोध, यह स्पष्ट करते हैं कि समकालीन नाटक परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व को जीवंत सामाजिक अनुभव में बदलता है। दत्तानी पर हुए अध्ययन में लैंगिकता, परिवार और वंचित समुदायों की सामाजिक संवेदना को परिवर्तनकारी नाट्य-चेतना के रूप में देखा गया है। निष्कर्षतः, समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन को केवल बाहरी संरचनात्मक बदलाव नहीं मानता, बल्कि उसे मनुष्य की संवेदना, आत्म-संघर्ष, अस्मिता और नैतिक चेतना से जोड़कर प्रस्तुत करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. समकालीन हिंदी नाटकों में चित्रित सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख आयामों का विश्लेषण करना।
2. नाटकों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदनाओं, जैसे करुणा, सहानुभूति, संघर्ष और मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना।
3. सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के पारस्परिक संबंधों का मूल्यांकन करना।
4. प्रमुख समकालीन हिंदी नाटककारों के नाटकों में सामाजिक यथार्थ की प्रस्तुति का परीक्षण करना।

5. यह समझना कि समकालीन हिंदी नाटक समाज में जागरूकता, सामाजिक चिंतन और मानवीय मूल्यों के संरक्षण में किस प्रकार योगदान देते हैं।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें समकालीन हिंदी नाटकों से संबंधित शोध-पत्र, शोधप्रबंध, पुस्तकें, समीक्षात्मक लेख तथा प्रतिष्ठित अकादमिक डेटाबेसों में उपलब्ध साहित्य शामिल हैं। विषय से संबंधित सामग्री का चयन उसकी प्रासंगिकता, प्रामाणिकता तथा शोध-उपयोगिता के आधार पर किया गया है।

अध्ययन में सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) पद्धति का प्रयोग करते हुए समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं से जुड़े प्रमुख विषयों, पात्रों, संवादों तथा घटनाओं का विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से नाटकों में व्यक्त सामाजिक यथार्थ, मानवीय मूल्यों, संबंधों की जटिलताओं तथा बदलती सामाजिक परिस्थितियों के प्रभावों का अध्ययन किया गया। शोध का उद्देश्य विभिन्न विद्वानों के विचारों और उपलब्ध साहित्य के आधार पर विषय की समग्र एवं वस्तुनिष्ठ व्याख्या प्रस्तुत करना है।

समकालीन हिंदी नाटकों का स्वरूप एवं विकास

समकालीन हिंदी नाटक हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण और सशक्त विधा है, जिसने समय के साथ समाज में घटित परिवर्तनों को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन हुए, जिनका प्रभाव हिंदी नाट्य-साहित्य पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समकालीन हिंदी नाटक का स्वरूप परंपरागत पौराणिक और ऐतिहासिक कथानकों से आगे बढ़कर यथार्थवादी, प्रयोगधर्मी और समाज-केंद्रित बन गया। इसमें आम आदमी के जीवन, उसकी समस्याओं, संघर्षों और संवेदनाओं को केंद्र में स्थान दिया गया।

समकालीन हिंदी नाटक के विकास में मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, शंकर शेष, भीष्म साहनी, सुरेन्द्र वर्मा, नरेंद्र मोहन तथा असगर वजाहत जैसे नाटककारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन लेखकों ने आधुनिक जीवन की जटिलताओं, पारिवारिक विघटन, नैतिक मूल्यों के संकट, सामाजिक असमानता, स्त्री-अस्मिता, राजनीतिक भ्रष्टाचार तथा सांप्रदायिक तनाव जैसे विषयों को अपनी रचनाओं में प्रमुखता से प्रस्तुत किया। विशेष रूप से मोहन राकेश के नाटकों ने हिंदी रंगमंच को आधुनिक संवेदनशीलता और मनोवैज्ञानिक गहराई प्रदान की।

समकालीन हिंदी नाटकों की एक प्रमुख विशेषता उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण है। इनमें समाज की वास्तविक परिस्थितियों, व्यक्ति की आंतरिक पीड़ा, संबंधों के विघटन तथा बदलते मूल्यों को संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है। साथ ही, कई नाटककारों ने मिथक और इतिहास को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित करते हुए समकालीन समस्याओं को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। रंगमंचीय प्रयोग, प्रतीकात्मकता, संवाद-केंद्रित संरचना और नवीन प्रस्तुति तकनीकों ने भी समकालीन हिंदी नाटक को समृद्ध बनाया है।

इस प्रकार समकालीन हिंदी नाटक का विकास सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं और रचनात्मक प्रयोगशीलता के समन्वय के रूप में हुआ है। यह न केवल समाज के बदलते स्वरूप का दस्तावेज है, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों के संरक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन का चित्रण

समकालीन हिंदी नाटक भारतीय समाज में घटित व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों का सशक्त कलात्मक दस्तावेज है। स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में आधुनिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, शिक्षा के प्रसार तथा

लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास ने सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव हिंदी नाटकों की विषयवस्तु, पात्रों और कथानकों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समकालीन नाटककारों ने समाज में उत्पन्न नई चुनौतियों, संघर्षों और असमानताओं को यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है।

1. सामाजिक संरचना में परिवर्तन

समकालीन हिंदी नाटकों में पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं के विघटन और नए सामाजिक संबंधों के निर्माण का चित्रण प्रमुखता से मिलता है। संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवारों का बढ़ना, पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन तथा व्यक्तिवाद की बढ़ती प्रवृत्ति नाटकों के महत्वपूर्ण विषय बने हैं। मोहन राकेश के आधे-अधूरे जैसे नाटकों में मध्यवर्गीय परिवार की विघटित स्थिति, संबंधों की अस्थिरता और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। समकालीन नाटक यह दर्शाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन केवल बाहरी संरचनाओं को ही नहीं बदलता, बल्कि मानवीय संबंधों और जीवन-दृष्टि को भी प्रभावित करता है।

2. आर्थिक एवं राजनीतिक बदलाव

आर्थिक उदारीकरण, बेरोजगारी, वर्गीय असमानता, भ्रष्टाचार और राजनीतिक स्वार्थ समकालीन हिंदी नाटकों के महत्वपूर्ण विषय हैं। आधुनिक समाज में आर्थिक संसाधनों की असमान उपलब्धता ने सामाजिक तनाव और संघर्ष को बढ़ाया है। कई नाटकों में सामान्य नागरिक की आर्थिक कठिनाइयों, शोषण और व्यवस्था के प्रति असंतोष को अभिव्यक्त किया गया है। शंकर शेष, भीष्म साहनी और असगर वजाहत जैसे नाटककारों ने सत्ता-संरचनाओं, राजनीतिक भ्रष्टाचार और प्रशासनिक विसंगतियों की तीखी आलोचना की है। उनके नाटकों में लोकतांत्रिक मूल्यों और वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों के बीच मौजूद अंतर को उजागर किया गया है। राजनीतिक परिवर्तन और सत्ता संघर्ष के प्रभावों को मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना समकालीन हिंदी नाटक की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

3. स्त्री, दलित एवं हाशिए के वर्गों का प्रतिनिधित्व

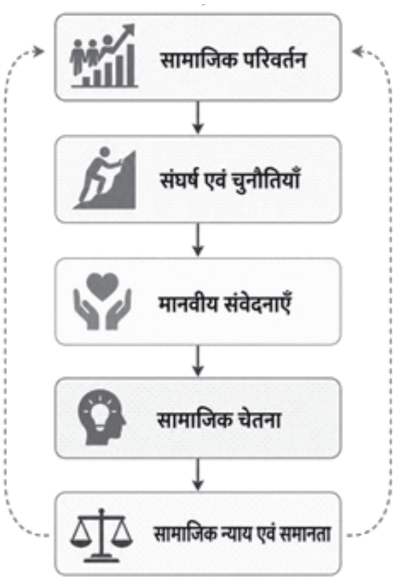
समकालीन हिंदी नाटकों में स्त्री, दलित और अन्य हाशिए के वर्गों की समस्याओं तथा संघर्षों को विशेष महत्व दिया गया है। स्त्री पात्र अब केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे अपनी पहचान, स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए संघर्ष करती दिखाई देती हैं। सुरेन्द्र वर्मा तथा अन्य समकालीन नाटककारों ने स्त्री-अस्मिता, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया है। इसी प्रकार दलित और वंचित वर्गों के अनुभवों, सामाजिक भेदभाव, शोषण और अधिकारों की मांग को भी नाटकों में स्थान मिला है। इन वर्गों की उपस्थिति ने हिंदी नाटकों को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी और सामाजिक रूप से संवेदनशील बनाया है।

इस प्रकार समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन के विविध आयामों को प्रस्तुत करते हुए समाज की वास्तविकताओं, चुनौतियों और संभावनाओं का व्यापक चित्रण करता है। यह न केवल परिवर्तन की प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा के पक्ष में एक सशक्त साहित्यिक हस्तक्षेप भी प्रस्तुत करता है।

समकालीन हिंदी नाटकों में मानवीय संवेदनाएँ

समकालीन हिंदी नाटक केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करते, बल्कि मानव जीवन की आंतरिक भावनाओं, संवेदनाओं और मानसिक संघर्षों को भी गहराई से अभिव्यक्त करते हैं। आधुनिक जीवन की जटिलताओं, सामाजिक परिवर्तनों और संबंधों में आए बदलावों के बीच मानवीय संवेदनाएँ नाटकों का केंद्रीय तत्व बनकर उभरती हैं। समकालीन नाटककारों

ने व्यक्ति की पीड़ा, अकेलेपन, संघर्ष, करुणा और सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे नाटक समाज और मानव जीवन के बीच एक संवेदनशील सेतु का कार्य करते हैं।



चित्र 3. निष्कर्षात्मक वैचारिक मॉडल

1. पारिवारिक संबंध और मानवीय मूल्य

समकालीन हिंदी नाटकों में पारिवारिक संबंधों और मानवीय मूल्यों का चित्रण विशेष महत्व रखता है। आधुनिकता, शहरीकरण और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण पारिवारिक संरचनाओं में व्यापक परिवर्तन हुए हैं। नाटकों में पति-पत्नी, माता-पिता और संतानों के बीच बदलते संबंधों, संवादहीनता तथा भावनात्मक दूरी को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। मोहन राकेश के आधे-अधूरे जैसे नाटकों में परिवार के भीतर असंतोष, टूटन और आत्मीयता के अभाव को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। इसके साथ ही नाटककार यह भी दर्शाते हैं कि प्रेम, विश्वास, त्याग और सह-अस्तित्व जैसे मानवीय मूल्य आज भी सामाजिक जीवन की आधारशिला हैं। पारिवारिक संबंधों के माध्यम से नाटक मानव जीवन की नैतिक और भावनात्मक जटिलताओं को उजागर करते हैं।

2. संघर्ष, अकेलापन और अस्तित्व-बोध

समकालीन हिंदी नाटकों का एक महत्वपूर्ण पक्ष आधुनिक मनुष्य के संघर्ष और अस्तित्व-बोध का चित्रण है। तीव्र प्रतिस्पर्धा, सामाजिक दबाव, आर्थिक असुरक्षा और बदलते जीवन-मूल्यों के कारण व्यक्ति अनेक मानसिक और भावनात्मक संकटों का सामना करता है। नाटकों के पात्र अक्सर अपने अस्तित्व, पहचान और जीवन के उद्देश्य को लेकर संघर्षरत दिखाई देते हैं। वे समाज और स्वयं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं, किंतु अनेक बार अकेलेपन और निराशा का अनुभव करते हैं। इस प्रकार के चित्रण आधुनिक मानव की मनोवैज्ञानिक स्थिति को समझने में सहायता करते हैं। समकालीन नाटक यह संकेत देते हैं कि बाहरी उपलब्धियों के बावजूद व्यक्ति की आंतरिक संतुष्टि और आत्मिक शांति आज भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।

3. करुणा, सहानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व

मानवीय संवेदनाओं के अंतर्गत करुणा, सहानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना समकालीन हिंदी नाटकों में व्यापक रूप से अभिव्यक्त होती है। नाटककार समाज के कमजोर, वंचित और शोषित वर्गों की समस्याओं को सामने लाकर दर्शकों में संवेदनशीलता और सामाजिक चेतना का विकास करते हैं। स्त्रियों, दलितों, मजदूरों तथा अन्य उपेक्षित समूहों के जीवन-संघर्षों का चित्रण कर नाटक सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। करुणा और सहानुभूति के माध्यम से नाटक मनुष्य को दूसरे के दुःख और संघर्ष को समझने की प्रेरणा देते हैं। साथ ही, वे समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित करते हुए समानता, सहयोग और मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता को भी स्थापित करते हैं।

इस प्रकार समकालीन हिंदी नाटक मानवीय संवेदनाओं के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते हुए मानव जीवन की गहराइयों को स्पर्श करते हैं। वे केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं करते, बल्कि संवेदनशील, उत्तरदायी और मानवीय समाज के निर्माण की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

परिणाम एवं विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के प्रभावी दर्पण के रूप में कार्य करते हैं। साहित्य समीक्षा के आधार पर यह पाया गया कि अधिकांश नाटककारों ने सामाजिक संरचना में आए परिवर्तनों, पारिवारिक विघटन, आर्थिक असमानता, राजनीतिक विसंगतियों तथा स्त्री एवं वंचित वर्गों के संघर्षों को प्रमुखता से चित्रित किया है। साथ ही, करुणा, सहानुभूति, अकेलापन, अस्तित्व-बोध और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी मानवीय संवेदनाएँ भी इन नाटकों का केंद्रीय तत्व हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक यथार्थ को केवल प्रस्तुत ही नहीं करते, बल्कि समाज में जागरूकता और मानवीय मूल्यों के संरक्षण की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

तालिका 1. समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख आयाम

क्रमांक	सामाजिक परिवर्तन का आयाम	प्रमुख निष्कर्ष
1	सामाजिक संरचना में परिवर्तन	पारिवारिक विघटन, व्यक्तिवाद और बदलते संबंधों का चित्रण
2	आर्थिक परिवर्तन	बेरोजगारी, वर्गीय असमानता और आर्थिक संघर्ष की प्रस्तुति
3	राजनीतिक परिवर्तन	भ्रष्टाचार, सत्ता संघर्ष और सामाजिक न्याय के प्रश्न
4	स्त्री प्रतिनिधित्व	समानता, स्वतंत्रता और अस्मिता की अभिव्यक्ति
5	दलित एवं हाशिए के वर्ग	शोषण, अधिकार और सामाजिक न्याय की मांग

तालिका 2. समकालीन हिंदी नाटकों में मानवीय संवेदनाओं का विश्लेषण

क्रमांक	मानवीय संवेदना	प्रमुख अभिव्यक्ति
1	पारिवारिक मूल्य	प्रेम, विश्वास, संवाद और संबंधों की जटिलता
2	संघर्ष एवं अस्तित्व-बोध	पहचान, आत्मसम्मान और जीवन-संघर्ष
3	अकेलापन	आधुनिक जीवन की मानसिक एवं भावनात्मक चुनौतियाँ
4	करुणा एवं सहानुभूति	वंचित वर्गों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण
5	सामाजिक उत्तरदायित्व	सामाजिक चेतना और नैतिक मूल्यों का संरक्षण

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के बीच गहरे संबंध को स्थापित करते हैं तथा समाज की बदलती परिस्थितियों को संवेदनशील और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी नाटक भारतीय समाज में हो रहे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का सशक्त एवं यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करते हैं। इन नाटकों में बदलते पारिवारिक संबंध, सामाजिक असमानताएँ, स्त्री-अस्मिता, दलित चेतना, राजनीतिक विसंगतियाँ तथा मानवीय मूल्यों के संकट को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। साथ ही, करुणा, सहानुभूति, संघर्ष, अकेलापन, अस्तित्व-बोध और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी मानवीय संवेदनाएँ नाटकों की केंद्रीय शक्ति के रूप में उभरकर सामने आती हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी नाटक केवल सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना, मानवीय मूल्यों और लोकतांत्रिक संवेदनशीलता को भी सुदृढ़ करते हैं। नाटककारों ने समाज के वंचित और उपेक्षित वर्गों की समस्याओं को स्वर प्रदान करते हुए सामाजिक न्याय और समानता की आवश्यकता को रेखांकित किया है। इस प्रकार समकालीन हिंदी नाटक सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाओं के समन्वित अध्ययन का महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत हैं तथा समाज को अधिक संवेदनशील, जागरूक और मानवीय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ-सूची

- कुमार, एस. (2024). समकालीन हिंदी नाटक : परिचय और प्रवृत्तियाँ. शोधकोशरू जर्नल ऑफ विजुअल एंड परफॉर्मिंग आर्ट्स।
- शर्मा, गोपीराम. (2018). समकालीन हिन्दी नाटक और आधुनिकता बोध. रिव्यू ऑफ रिसर्च, 7(4)।
- गरिमा एवं आहूजा, एस. (2024). महेश दत्तानी के चयनित नाटकों में सामाजिक संवेदनशीलता. यूनिवर्सल रिसर्च रिपोर्ट्स, 11(4), 318 322. क्व्प्रू 10.36676/नतत.अ11.प4.1429।
- रावत, शिल्पाबेन एच. (2016). समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक चेतना. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- रावत, करशनभाई एन. (2016). समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक चेतना. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- श्रीकला, वी. आर. (2012). समकालीन हिंदी नाटकों में मिथक और यथार्थ. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- कुरियन, वी. डी. (2013). लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में सामाजिक चेतना. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- वसावा, दक्षा एस. (2013/2015). शंकर शेष के नाटकों में सामाजिक-राजनीतिक चेतना : एक अनुशीलन. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- चौहान, धीरज आर. (2016). सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में मिथक और आधुनिक संदर्भ. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- कोशी, रानी. (2013). नारी के बदलते रूप : स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में. शोधगंगा (पीएच.डी. शोधप्रबंध)।
- भारती, धर्मवीर. (2008). अंधायुग. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।
- राकेश, मोहन. (2017). आधे-अधूरे. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

(ਭਾਈ) ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਕਾਵਿ ਵਿਰਾਸਤ: ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਖ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ

ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ ਤੁਲੀ,
ਡਾ: ਸੁਨੈਨਾ (ਨਿਗਰਾਨ)

ਸਾਰ:
ਇਹ ਖੋਜ ਪੱਤਰ, ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਕੁਝ ਬੁਨਿਆਦੀ ਸਵਾਲਾਂ ਨੂੰ ਚਰਚਾ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਬਣਾਉਣ ਦਾ ਨਿਮਾਣਾ ਜਤਨ ਹੈ। ਸਾਹਿਤ ਕੀ ਹੈ? ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਮੌਲਿਕਤਾ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਕਿੱਥੋਂ ਤੀਕ ਹੈ? ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਮੌਲਿਕਤਾ ਦੇ ਮਾਇਨੇ ਕੀ ਹਨ? ਇਹਨਾਂ ਸਾਰੇ ਸਵਾਲਾਂ ਨੂੰ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਸੁਝਾਇਆ ਗਿਆ ਹੈ।

ਕੰਜੀਵਤ ਸ਼ਬਦ:
ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ ਨੇਕੀ, ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ, ਗੋਰਖਨਾਥ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਅਲੋਚਨਾ (creative criticism)

ਖੋਜ-ਵਿਧੀ:
੧. ਤੁਲਨਾਤਮਕ ਖੋਜ-ਵਿਧੀ/ comparative research
੨. ਘੁਮੱਕੜ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਖੋਜ-ਵਿਧੀ/ exploratory research

ਉਦੇਸ਼
ਇਸ ਖੋਜ ਨੂੰ ਨੇਪਰੇ ਚਾੜ੍ਹਨ ਪਿਛਲਾ ਮੁੱਖ ਉਦੇਸ਼, ਇਹ ਜਾਣਨਾ ਸੀ ਕਿ ਕੀ ਰਵਾਇਤੀ ਆਲੋਚਨਾ ਤੋਂ ਛੁੱਟ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਆਲੋਚਨਾ ਦੀ ਕੋਈ ਨਵੇਕਲੀ ਧਾਰਾ ਵੀ ਵਗਦੀ ਹ।
ਇਸ ਖੋਜ ਪਿਛਲਾ ਸਹਾਇਕ ਉਦੇਸ਼, ਨਵੇਂ ਯੁਗ ਦੇ ਕਾਪੀਰਾਈਟ ਵਰਗੇ ਸੰਕਲਪਾਂ ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚੋਂ ਹਵਾਲਾ ਲੱਭਣਾ ਵੀ ਸੀ।

ਭੂਮਿਕਾ:
ਇਸ ਖੋਜ ਪੱਤਰ ਦਾ ਵਿਸ਼ਾ ਵਸਤੂ, ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੂੰ ਮਿਲੀ- ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਕਾਵਿ-ਵਿਰਾਸਤ, ਸਾਨੂੰ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਕਾਵਿ-ਰਚਨਾ ਦੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਮਿਲੀ- ਸਾਡੀ ਵਿਰਾਸਤ, ਅਤੇ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਲੇਖਕਾਂ ਲਈ ਸਾਡੀ ਕਾਵਿ-ਵਿਰਾਸਤ ਹੈ।
ਆਓ ਜ਼ਰਾ ਇਸ ਵਿਰਾਸਤ ਦਾ ਤੁਲਨਾਤਮਕ ਅਧਿਐਨ ਕਰੀਏ-

'ਦੂਧੈ ਧੋਯਾ ਕੋਇਲਾ, ਉਜਲਾ ਨਾ ਹੋਇਲਾ'[1] (ਗੋਰਖ ਨਾਥ)	'ਸਾਬਣ ਲਾ ਲਾ ਧੋਤਾ ਕੋਲਾ, ਦੁੱਧ ਦਹੀਂ ਵਿੱਚ ਪਾਇਆ ਖੁੰਬ ਚਾੜ ਰੰਗਣ ਭੀ ਧਰਿਆ, ਰੰਗ ਨ ਏਸ ਵਟਾਇਆ...'[2] (ਕਵਿਤਾ 'ਵਿਛੋੜਾ-ਵਸਲ')	:...ਮੈਂ ਦਰਵੇਸ਼ ਨਹੀਂ। ਪਰ ਹੁਣ ਜੋ ਲਾਲਸਾ ਮਨ ਵਿੱਚ ਜਾਗੀ ਏ। ~ਕੀ? ਦਰਵੇਸ਼ ਹੋਣ ਦੀ? ~ਨਹੀਂ, ਦਰਵੇਸ਼ ਦਿਖਣ ਦੀ! ਇਸ ਖਾਤਰ ਚੋਲਾ ਦਰਵੇਸ਼ੀ ਪਾਇਆ ਏ ਕੋਲਾ ਖੂਬ ਧੁਆਇਆ ਏ।...'[3] (ਮੈਂ ਦਰਵੇਸ਼ ਨਹੀਂ)

ਕੰਬਦੀ ਕਲਾਈ “ਸੁਪਨੇ ਵਿਚ ਤੁਸੀ ਮਿਲੇ ਅਸਾਨੂੰ, ਅਸਾਂ ਧਾ ਗਲਵੱਕੜੀ ਪਾਈ, ਨਿਰਾ ਨੂਰ ਤੁਸੀਂ ਹੱਥ ਨ ਆਏ, ਸਾਡੀ ਕੰਬਦੀ ਰਹੀ ਕਲਾਈ। ਧਾ ਚਰਨਾਂ ਤੇ ਸੀਸ ਨਿਵਾਯਾ, ਸਾਡੇ ਮੱਥੇ ਛੁਹ ਨ ਪਾਈ, ਤੁਸੀ ਉੱਚੇ ਅਸੀ ਨੀਵੇਂ ਸਾਂ, ਸਾਡੀ ਪੇਸ਼ ਨ ਗਈਆ ਕਾਈ। ਫਿਰ ਲੜ ਫੜਨੇ ਨੂੰ ਉਠ ਦੌੜੇ, ਹਾਇ ਲੜ ਓ ਬਿਜਲੀ ਲਹਿਰਾ ਉਡਦਾ ਜਾਂਦਾ ਪਰ ਉਹ ਅਪਨੀ, ਇਕ ਛੁਹ ਸਾਨੂੰ ਗਿਆ ਲਾਈ ਮਿੱਟੀ ਚਮਕ ਪਈ ਇਹ ਮੋਈ, ਤੇ ਤੁਸੀਂ ਲੂਆਂ ਵਿਚ ਲਿਸ਼ਕੇ, ਬਿਜਲੀ ਕੂੰਦ ਗਈ ਬ੍ਰਹਾਂਦੀ, ਹੁਣ ਚਕਾ ਚੂੰਧ ਹੈ ਛਾਈ।”[4]	“ਚਾਨਣ ਜੀ ਚਾਨਣ ਜੀ ! ਤੁਸੀਂ ਲੰਘਦੇ ਲੰਘਦੇ, ਕੀ ਅੱਖੀਆਂ ਨੂੰ ਕਹਿ ਗਏ ? ਖਿੱਚ ਖਿੱਚੋ, ਕਰ ਲੰਮੀਆਂ ਬਾਹੀਂ, (ਅਸੀਂ) ਫੜਦੇ ਫੜਦੇ ਰਹਿ ਗਏ। ਭਜ ਭਜ ਮੋਏ (ਤੁਸੀਂ) ਹੱਥ ਨਾ ਆਏ, (ਅਸੀਂ) ਘੱਟ ਕਲੇਜਾ ਬਹਿ ਗਏ। ਹਾੜੇ ਸਾਡੇ ਖੁੰਝ ਜ਼ਬਾਨੇਂ, ਅੱਖੀਆਂ ਥਾਈਂ ਵਹਿ ਗਏ। ਅਸੀਂ ਵਧੇ, ਤੁਸੀਂ ਉਹਲੇ ਹੋ ਗਏ, ਦੇ ਕੇ ਪੀਂਘ ਹੁਲਾਰਾ ਨੂਰਾਨੀ ਝਲਕਾਰੇ ਦਾ, ਉਹ ਭੁਲਦਾ ਨਹੀਂ ਨਜ਼ਾਰਾ: ਸ਼ਮਸੀਂ ਰਿਸ਼ਮਾਂ ਥੀਂ ਚੁੰਧਿਆ ਕੇ, ਅੱਖਾਂ ਭੀੜੇ ਬੂਹੇ, ਬਿਜਲੀ-ਕੂੰਦ ਧਸੀ ਰਗ ਰਗ ਵਿਚ ਥਰਕਿਆ ਜੁੱਸਾ ਸਾਰਾ। ਗੂੰਜ ਉਠੀ, ਸਿਰ ਝੂਮਣ ਲੱਗਾ, ਅਕਲ ਹੋਈ ਦੀਵਾਨੀ, ਪ੍ਰੇਮ-ਸਰੂਰ ਜਿਹਾ ਇਕ ਆ ਕੇ, ਸੁਰਤ ਚੜ੍ਹੀ ਅਸਮਾਨੀਂ। ਸੁਪਨਾ ਸੀ, ਜਾਂ ਸਾਮਰਤਖ ਸੀ ? ਇਹ ਭੀ ਬਹੁ ਨਾ ਲੱਗੇ, ਅੱਖਾਂ ਵਿਚ ਭਾਹ ਗੁਲਾਬੀ, ਰਹਿ ਗਈ ਟਿਕੀ ਨਿਸ਼ਾਨੀ।”[5]

ਧਨੀ ਰਾਮ ਚਾਤ੍ਰਿਕ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ ‘ਚਾਨਣ ਜੀ’ ਨੂੰ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਸ਼ਖਸੀਅਤ ਉੱਤੇ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੇ ਭਏ ਪ੍ਰਭਾਵ ਦੇ ਸਿੱਟੇ ਵਜੋਂ ਹੀ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ।

“ਇੱਥੇ ਆ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਪਤਾ ਚੱਲਿਆ ਕਿ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪ੍ਰਿੰਟਿੰਗ ਪ੍ਰੈੱਸ *(ਵਜ਼ੀਰ ਹਿੰਦ ਪ੍ਰੈੱਸ)* ਵਿੱਚ ਕਾਤਿਬ ਦੀ ਆਸਾਮੀ ਖਾਲੀ ਹੈ। ….. ਉਸ ਨੇ ਲਗਭਗ *18* ਵਰ੍ਹੇ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪ੍ਰੈੱਸ ‘ਤੇ ਕੰਮ ਕੀਤਾ….. ਬਾਅਦ ਵਿੱਚ ਲੋਹੇ ਦਾ ਟਾਈਪ ਆ ਗਿਆ ਅਤੇ ਇਸ ਕਾਰਨ ਕਾਤਿਬਾਂ ਦੀ ਕੋਈ ਜ਼ਰੂਰਤ ਨਾ ਰਹੀ। ਹੁਣ ਚਾਤ੍ਰਿਕ ਪਰੂਫ਼ ਪੜ੍ਹਨ ਦਾ ਕੰਮ ਕਰਨ ਲੱਗੇ। ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਬਹੁਤੇ ਨਾਵਲਾਂ ਅਤੇ ਟ੍ਰੈਕਟਾਂ ਆਦਿਕ ਦੇ ਪਰੂਫ਼ ਚਾਤ੍ਰਿਕ ਦੇ ਹੱਥਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਹੀ ਗੁਜ਼ਰੇ ਸਨ। *1899* ਈ. ਵਿੱਚ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਆਪਣਾ ਸਪਤਾਹਿਕ ਅਖ਼ਬਾਰ ‘ਖ਼ਾਲਸਾ ਸਮਾਚਾਰ’ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਕਰਨਾ ਸ਼ੁਰੂ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਅਤੇ ਚਾਤ੍ਰਿਕ ਇਸ ਅਖ਼ਬਾਰ ਦੇ ਸੰਪਾਦਕੀ ਮੰਡਲ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਿਲ ਹੋ ਗਿਆ। ਇਸੇ ਦੌਰਾਨ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ‘ਹਰਿ ਧਨੀ’ ਉਪਨਾਮ ਹੇਠ ਉਸਨੇ ਕਾਵਿ-ਰਚਨਾ ਵੀ ਆਰੰਭ ਕਰ ਦਿੱਤੀ।…” [6]

“ਕਲਾਮ ਹੀਰ ਸਹਿਤੀ ਨਾਲ	“ਨਿਨਾਣ-
ਹੀਰ ਆਖਦੀ, ਏਸ ਫ਼ਕੀਰ ਤਾਈਂ, ਕੇਹਾ ਘੱਤਿਉ ਗ਼ੈਰ ਦਾ ਵਾਇਦਾ ਨੀ? ਇਹਨਾਂ ਆਜਿਜ਼ਾਂ ਭੇਰ ਨਿਮਾਣਿਆਂ ਨੂੰ, ਪਈ ਮਾਰਦੀ ਹੈਂ, ਕਿਆ ਫ਼ਾਇਦਾ ਨੀ? ਅੱਲਾ ਵਾਲਿਆਂ ਨਾਲ ਕੀ ਵੈਰ ਚਾਇਓ, ਭਲਾ, ਕੁਆਰੀਏ, ਏਹ ਕੀ ਕਾਇਦਾ ਨੀ?. ਪਿੱਛੋਂ ਫੜੇਂਗੀ ਕੁੱਤਕਾ ਜੋਗੀੜੇ ਦਾ, ਕੌਣ ਜਾਣਦਾ ਕੇਹੜੀ ਜਾਇ ਦਾ ਨੀ।	ਐਸੇ ਬੋਲ ਨਾ ਭਾਬੀਏ ਬੋਲ ਮੂੰਹੋਂ, ਕੁਲਵੰਤੀਆਂ ਨੂੰ ਇਹ ਨਾ ਸੋਭਦਾ ਨੀ ਮੇਰਾ ਵੀਰ ਨਾ ਗਰਬਿ ਗੁਮਾਨੀਆ ਹੈ, ਕਿਉਂ ਤੂੰ ਵਾਕ ਆਖੇਂ ਭਾਬੀ! ਖੋਭਦੇ ਨੀ? ਤੇਰੇ ਨਾਲ ਉਹ ਵਰਤਦਾ ਦਇਆ ਵਰਤਣ ਕਦੀ ਵਾਕ ਨਾ ਬੋਲਦਾ ਚੋਭ ਦੇ ਨੀ! ਲੋਕੀਂ ਆਪਣੇ ਐਬ ਨਾ ਵੇਖਦੇ ਨੇ ਸੁੱਕੇ ਥਲੀਂ ਹੀ ਬੇੜੀਆਂ ਡੋਬਦੇ ਨੀ।
ਹੀਰ ਨੂੰ ਸਹਿਤੀ ਨੇ ਤਾਨੇ ਮਿਹਣੇ ਦੇਣੇ	ਭਾਬੀ-
ਨਵੀਂ ਨੱਢੀਏ, ਕੱਚੀਏ ਯਾਰਨੇ ਨੀ, ਕਾਰੇ ਹੱਥੀਏ, ਚਾਕ ਦੀਏ ਪਿਆਰੀਏ ਨੀ। ਪਹਿਲੇ ਕੰਮ ਸਵਾਰ ਹੋ ਬਹੋਂ ਨਿਆਰੀ, ਬੇਲੇ ਖੀਰ ਲੈ ਜਾਈਏਂ ਡਾਰੀਏ ਨੀ। ਆਉ ਜੋਗੀ ਨੂੰ ਲਈਂ ਛੁਡਾ ਸਾਥੋਂ ਤੁਸਾਂ ਦੋਹਾਂ ਦੀ ਪੈਜ ਸਵਾਰੀਏ ਨੀ। ਆਪ ਭਲੀ ਹੋ ਬਹੋਂ ਤੇ ਅਸੀਂ ਬੁਰੀਆਂ ਕਰੇਂ ਖਚਰਪੋ, ਰੂਪ ਸ਼ਿੰਗਾਰੀਏ ਨੀ”[7]	ਕਦੋਂ ਝੂਠ ਮੈਂ ਬੋਲਦੀ ਦੱਸ ਖਾਂ ਨੀ ਐਵੇਂ ਊਜ ਲਾਵੇਂ ਕੈਂਤਕ-ਹਾਰੀਏ ਨੀ। ਤੇਰਾ ਵੀਰ ਹੈ ਗੁੱਛੜਾ ਫੇਣੀਆਂ ਦਾ ਕਰੇ ਕਹਿਰ ਤਾਂ ਝੂਠ ਉਸਾਰੀਏ ਨੀ। ਜੇਕਰ ਜਦੋਂ ਉਹ ਆਪੇ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਹੋਵੇ ਸੱਚ ਬੋਲੀਏ ਜਾਨ ਤੋਂ ਮਾਰੀਏ ਨੀ। ਗੁੱਸਾ ਟਾਲਣੇ ਨੂੰ ਝੂਠ ਦੱਸ ਨਾਹੀਂ ਦੁੱਧ ਤਪੇ ਤਾਂ ਫੂਕਾਂ ਹੀ ਮਾਰੀਏ ਨੀ।”[8]

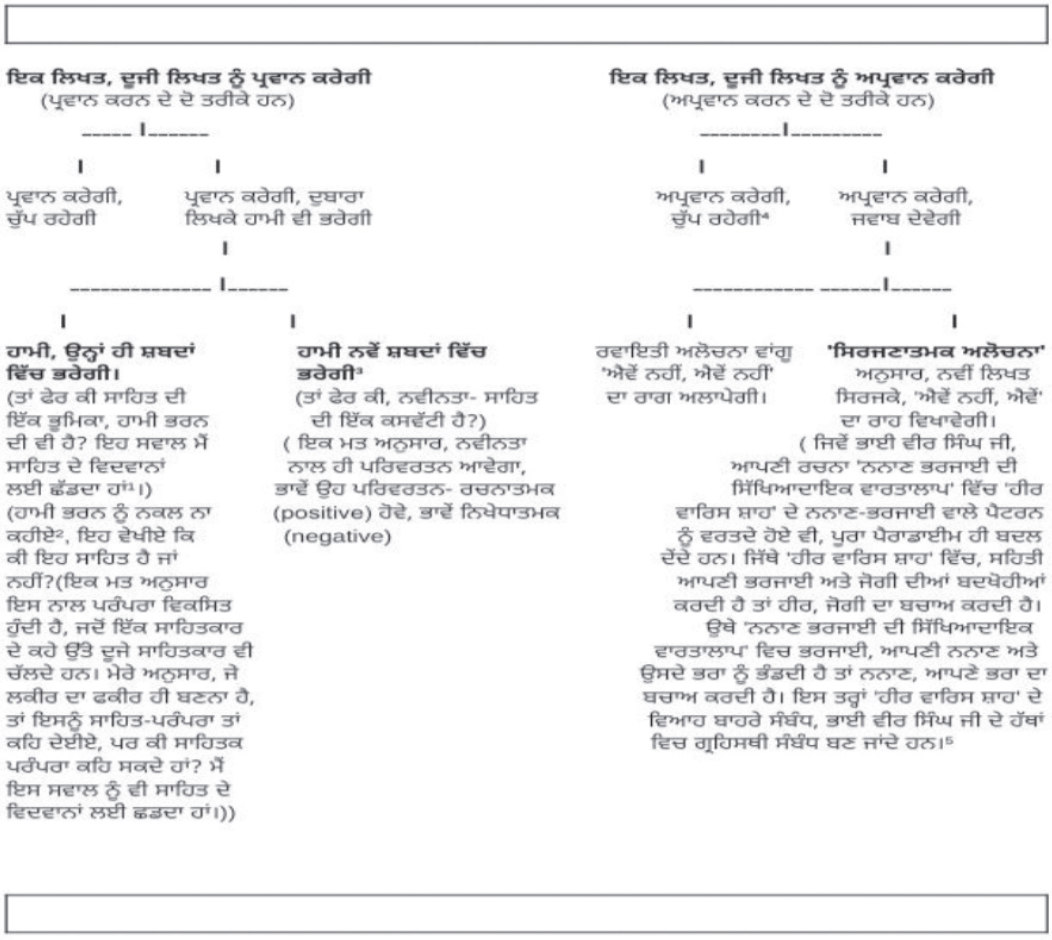
ਹਜ਼ਰਤ ਸੁਲਤਾਨ ਬਾਹੂ **(1631-1691)**	ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ
ਅਲਿਫ਼-ਅੱਲਾ ਚੰਬੇ ਦੀ ਬੂਟੀ	ਤੂੰਹੋਂ ਬੂਟੀ ਏ ਲਾਈ ਸੀ
“ਅਲਿਫ਼-ਅੱਲਾ ਚੰਬੇ ਦੀ ਬੂਟੀ, ਮੁਰਸ਼ਦ ਮਨ ਵਿਚ ਲਾਈ ਹੂ ਨਫ਼ੀ ਅਸਬਾਤ ਦਾ ਪਾਣੀ ਮਿਲਿਆ, ਹਰ ਰਾਹੇ ਹਰ ਜਾਈ ਹੂ	“ਤੇਰੀ ਏ ਯਾਦ ਦੀ ਬੂਟੀ ਤੇਰੀ 'ਤੱਕਣੀ' ਉਗਾਈ ਸੀ।.. ਮੁਸ਼ਕ ਇਕ ਫਿਰ ਮਚੀ ਮਨ ਵਿਚ, ਮਗਨ ਸੁਰਤੀ ਹੁ ਆਈ ਸੀ।..

ਅੰਦਰ ਬੂਟੀ ਮੁਸ਼ਕ ਮਚਾਇਆ, ਜਾਂ ਫੁੱਲਣ ਤੇ ਆਈ ਹੂ ਜੀਵੇ ਮੁਰਸ਼ਦ ਕਾਮਿਲ ਬਾਹੂ, ਜੈਂ ਇਹ ਬੂਟੀ ਲਾਈ ਹੂ।”[9]	ਤੂੰ ਇਕ ਖਿਨ ਨਾ ਭੁਲਾ ਸਾਨੂੰ ਨਾ ਭੁੱਲਾਂ ਮੈਂ ਤੁਸਾਂ ਤਾਈਂ ਕਿ ਬੂਟੀ ਏ ਮੁਸ਼ਕ ਵਾਲੀ ਤੁਸੀਂ ਹੀ ਆਪ ਲਈ ਸੀ ਫੜਾ ਵੀਣਾ ਮੇਰੇ ਹੱਥੀਂ ਤੇ ਭਰਦੇ ਤਾਲ ਮੈਂ ਪੈਰੀਂ ਛਿੜੇ ਇਹ ਗੀਤ- "ਤੂੰ ਸਾਈਆਂ! ਤੂੰਹੋਂ ਬੂਟੀ ਏ ਲਾਈ ਸੀ।"[10]

ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ	ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ ਨੇਕੀ
<u>“ਮੇਰੇ ਚੱਪੇ ਲੱਗ ਰਹੇ ਹਨ</u> ਮੇਰੇ ਚੱਪੇ ਲੱਗ ਰਹੇ ਹਨ ਪਾਣੀਆਂ ਦੀ ਛਾਤੀ ਤੇ ਮੇਰੀ ਕਿਸ਼ਤੀ ਤੁਰੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ.. ਚੰਦ ਨਹੀਂ, ਸੂਰਜ ਨਹੀਂ ਮੇਰੀ ਬੇੜੀ ਵਿਚ ਦੀਵਾ ਨਹੀਂ.. ਮੇਰੇ ਨਿਤਾਣੇ ਚੱਪੇ ਹਨ ਪਾਣੀ ਬੇੜੀ ਤਿਲਕਾਈ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।..”[11]	<u>“ਚੌੜੇ-ਚੌੜੇ ਪਾਣੀਆਂ ਤੇ</u> ਚੌੜੇ-ਚੌੜੇ ਪਾਣੀਆਂ ਤੇ ਨਿੱਕੀ ਜਿੰਨੀ ਬੇੜੀ ਅੜੀਓ ਨੀ ਕਿਵੇਂ ਤੁਰੀ ਜਾਵੇ ਇਹਨੂੰ ਨਾ ਚਲਾਣ, ਹੱਥ ਹੰਢੇ ਹੋਏ ਮਾਂਝੀਆਂ ਦੇ, ਚੱਪੂਆਂ ਦੇ ਬਾਝ ਉਹ ਨਕਾਰੇ; ਇਹਨੂੰ ਨਾ ਚਲਾਣ ਇਹਦੇ ਹੱਥਾਂ ਜਹੇ ਚੱਪੂ, ਉਹ ਤਾਂ ਲਹਿਰਾਂ ਕੋਲੋਂ ਮੰਗਣ ਸਹਾਰੇ,.. ਇਹਨੂੰ ਨਾ ਚਲਾਣ ਇਹਦੇ ਉੱਚੇ-ਉੱਚੇ ਬਾਦਬਾਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਅਕਾਸ਼ ਜਿੱਡੇ ਦਾਅਵੇ ਇਹਨੂੰ ਤਾਂ ਚਲਾਈ ਜਾਵੇ ਪਉਣ ਨਿਮਾਣੀ, ਜਿਹਦੀ ਹੋਂਦ ਵੀ ਨਜ਼ਰ ਨਾ ਆਵੇ।”[12]

ਮੈਂ ਏਥੇ ਇਹ ਦਾਅਵਾ ਬਿਲਕੁਲ ਨਹੀਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਕਿ ਗੋਰਖ ਨਾਥ ਜੀ ਦੀ ਰਚਨਾ ਪੜ੍ਹ/ਸੁਣ ਕੇ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਨੇ 'ਵਿਛੋੜਾ-ਵਸਲ' ਕਵਿਤਾ ਲਿਖੀ। ਮੈਂ ਏਥੇ ਇਹ ਦਾਅਵਾ ਬਿਲਕੁਲ ਨਹੀਂ ਕਰ ਰਿਹਾ ਕਿ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਕਵਿਤਾ 'ਮੇਰੇ ਚੱਪੇ ਲੱਗ ਰਹੇ ਹਨ' ਤੋਂ ਪ੍ਰਭਾਵਿਤ ਹੋ ਕੇ, ਜਸਵੰਤ ਸਿੰਘ ਨੇਕੀ ਜੀ ਨੇ ਆਪਣੀ ਕਵਿਤਾ 'ਚੌੜੇ-ਚੌੜੇ ਪਾਣੀਆਂ ਤੇ' ਲਿਖੀ।

ਨਹੀਂ, ਏਥੇ ਤਾਂ ਇਕ ਹੋਰ ਬੁਨਿਆਦੀ ਮਸਲਾ ਖੜ੍ਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਮਸਲਾ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਅੱਜ ਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਵਿਦਿਆਰਥੀ ਅੱਗੇ, ਇਕੋ ਕਿਤਾਬ ਵਿਚ, ਲਗਭਗ ਹਜ਼ਾਰ ਸਾਲ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ ਦਰਜ ਹੈ। ਇਹ 'ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਇਤਿਹਾਸ' ਇਕ ਇਕਾਈ ਵਜੋਂ ਉਭਰ ਕੇ ਸਾਹਮਣੇ ਆਇਆ ਹੈ। ਇਹ ਨਹੀਂ ਕਿ ਅਜਿਹਾ ਬੁਨਿਆਦੀ ਤੌਰ 'ਤੇ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਕਲਪ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਵੀ ਲੇਖਕਾਂ ਦੇ ਚੇਤਨ-ਅਵਚੇਤਨ ਅੰਦਰ ਪੁਰਾਣਾ ਸਾਹਿਤ ਜ਼ਰੂਰ ਸੀ (ਸਗੋਂ ਭਾਰਤੀ ਭਾਸ਼ਾਵਾਂ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ ਤਾਂ ਚੇਤਨ ਤੌਰ ਤੇ ਪੁਰਾਣੇ ਗ੍ਰੰਥ ਪੜ੍ਹਨ ਦੀ ਪਰੰਪਰਾ ਰਹੀ ਹੈ) ਇਨ੍ਹਾਂ ਤੱਥਾਂ ਦੀ ਰੋਸ਼ਨੀ ਵਿਚ, ਕੀ ਹੁਣ ਉਪਰੋਕਤ ਹਵਾਲਿਆਂ ਨੂੰ, ਅਸੀਂ ਅੱਖੋਂ ਓਹਲੇ ਕਰ ਸਕਦੇ ਹਾਂ? ਜੇ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਫਿਰ ਇਹ ਸਵਾਲ ਖੜ੍ਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਜੇ ਗੋਰਖਨਾਥ ਜੀ ਨੇ ਕੋਲੇ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਾਂਤ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੀ ਗੱਲ ਕਰ ਦਿੱਤੀ ਸੀ ਤਾਂ ਕਿ ਲਗਪਗ ਇਕ ਹਜ਼ਾਰ ਸਾਲ ਮਗਰੋਂ 2021 ਵਿਚ ਛਪੇ ਕਾਵਿ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਸੰਗ੍ਰਹਿ 'ਯਾਰ ਵੇ' ਵਿਚ, ਕਵੀ ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ ਵੱਲੋਂ ਉਹੀ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟਾਂਤ ਦਿੱਤਾ ਜਾਣਾ (ਉਹ ਵੀ ਉਸੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ) ਸਹੀ/ਗਲਤ ਹੈ? ਏਥੇ ਸਹੀ/ਗ਼ਲਤ ਦੀ ਗੱਲ, ਮੌਲਿਕਤਾ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਨਹੀਂ, ਸਾਹਿਤਕਤਾ ਦੇ ਸੰਦਰਭ ਵਿੱਚ ਹੈ। ਐਵੇਂ ਹੀ ਜੇ ਸੁਲਤਾਨ ਬਾਹੂ 'ਬੂਟੀ' ਰੂਪਕ ਰਾਹੀਂ ਆਪਣੀ ਗੱਲ ਰੱਖ ਚੁੱਕੇ ਸਨ, ਤਾਂ ਕੀ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਵੱਲੋਂ ਉਸੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ ਉਹੀ ਰੂਪਕ ਵਰਤਿਆ ਜਾਣਾ ਸਹੀ/ ਗਲਤ ਹੈ। ਆਓ ਥੋੜ੍ਹਾ ਹੋਰ ਡੂੰਘਾਈ ਵਿਚ ਵਾਚੀਏ।
ਇਹ ਵੇਖੀਏ ਕਿ ਇਕ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਦੀ ਲਿਖਤ, ਦੂਜੇ ਸਾਹਿਤਕਾਰ ਦੀ ਲਿਖਤ ਨੂੰ ਕਿਸ-ਕਿਸ ਨਜ਼ਰੀਏ ਨਾਲ ਵੇਖ ਸਕਦੀ ਹੈ-



<u>ਚੁਣੌਤੀਆਂ</u>:

੧. ਹਾਲੇ ਤੀਕ, ਸਾਹਿਤ-ਵਿਦਵਾਨਾਂ ਵਿੱਚ ਉਨ੍ਹਾਂ ਕਸਵੱਟੀਆਂ ਬਾਰੇ ਆਮ ਰਾਏ ਨਹੀਂ ਬਣ ਸਕੀ ਹੈ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਦੇ ਆਧਾਰ ਉੱਤੇ ਇਹ ਫੈਸਲਾ ਕੀਤਾ ਜਾ ਸਕੇ ਕਿ ਕਿਹੜੀ ਰਚਨਾ ਸਾਹਿਤ ਹੈ ਅਤੇ ਕਿਹੜੀ ਨਹੀਂ।

੨. ਹਾਲੇ ਤੀਕ, ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਚ ਕੋਈ ਅਜਿਹਾ ਵਿਵਰਣਾਤਮਕ-ਕੋਸ਼ ਤਿਆਰ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕਿਆ ਜਿਸ ਤੋਂ ਇਹ ਪਤਾ ਲਾਇਆ ਜਾ ਸਕੇ ਕਿ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿੱਚ- ਇਕੋ ਵਿਸ਼ੇ ਉੱਤੇ, ਇਕੋ ਜਿਹੇ ਪ੍ਰਗਟਾਵੇ ਵਾਲੀਆਂ ਕਿਹੜੀਆਂ ਰਚਨਾਵਾਂ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹਨ, ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤਕਾਰਾਂ ਦੀ ਮੌਲਿਕਤਾ ਅਤੇ ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਅਲੋਚਨਾ ਦੇ ਸੰਪੂਰਨ ਪੈਟਰਨ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੋ ਸਕਣ।

<u>ਨਿਸ਼ਕਰਸ਼/ ਨਤੀਜਾ</u>:

1.ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਜਿਸ ਵਿਰਾਸਤ ਬਾਰੇ ਆਪਾਂ ਗੱਲ ਕਰਦੇ ਹਾਂ, ਇਸ ਵਿਰਾਸਤ ਬਾਰੇ ਸਾਨੂੰ ਇਹ ਯਾਦ ਰੱਖਣਾ ਚਾਹੀਦਾ ਹੈ ਕਿ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਲਿਖੇ ਗਏ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਉੱਤੇ ਪਏ ਅਤੇ ਫਿਰ ਇਹ ਪ੍ਰਭਾਵ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਰਚਨਾ ਵਿੱਚ ਆਏ। ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਸਾਡੇ ਲਈ, ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ

ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ, ਇਕੱਲੇ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ ਨਹੀਂ, ਸਗੋਂ ਉਹਨਾਂ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਲਿਖੇ ਗਏ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤ ਵੀ ਹੈ ਜੋ ਸਾਨੂੰ ਸਿੱਧੇ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਮਿਲਣ ਦੇ ਨਾਲ-੨ ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਸ਼ਖਸੀਅਤ ਵਿੱਚ ਢਲਕੇ ਵੀ ਮਿਲੀ।

2.ਇਸ ਖੋਜ-ਪੱਤਰ ਦੁਆਰਾ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਇਕ ਨਵਾਂ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਪ੍ਰਸ਼ਨ ਖੜ੍ਹਾ ਹੁੰਦਾ ਹੈ ਕਿ ਕੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਇੱਕ ਭੂਮਿਕਾ, ਹਾਮੀ ਭਰਨ ਦੀ ਵੀ ਹੈ?

3. ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਰਵਾਇਤੀ ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਮਾਡਲ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ, ਸਿਰਜਣਾਤਮਕ ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਨਵੇਂ ਮਾਡਲ ਦੀ ਪਹਿਚਾਣ।

<u>ਹਵਾਲੇ</u>

1. ਸਹਿਗਲ, ਉਜਾਗਰ ਸਿੰਘ (1985) ਗੋਰਖ ਨਾਥ- ਜੀਵਨ ਤੇ ਰਚਨਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ
2. ਵੀਰ ਸਿੰਘ(ਭਾਈ) 1921, ਤ੍ਰੇਲ ਤੁਪਕੇ, ਵਜ਼ੀਰ ਹਿੰਦ ਪ੍ਰੈਸ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ
3. ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ (2021) ਯਾਰ ਵੇ, ਸਵੈ- ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ, ਆਰਨਾ ਪ੍ਰਿੰਟਰਜ਼ ਪਟਿਆਲਾ
4. ਵੀਰ ਸਿੰਘ (1997), ਕੰਬਦੀ ਕਲਾਈ, ਨੌਵਾਂ ਸੰਸਕਰਨ, ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਸਾਹਿਤ ਸਦਨ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 2
5. ਅਮੋਲ, ਐਸ. ਐਸ. (ਸੰਪਾ:) (1975) ਚਾਤ੍ਰਿਕ ਰਚਨਾਵਲੀ (ਭਾਗ ਪਹਿਲਾ-ਕਵਿਤਾ), ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 780
6. ਪ੍ਰੋ: ਬ੍ਰਹਮਜਗਦੀਸ਼ ਸਿੰਘ (2018) ਧਨੀ ਰਾਮ ਚਾਤ੍ਰਿਕ: ਜੀਵਨ ਤੇ ਰਚਨਾ, ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ ਫਾਊਂਡੇਸ਼ਨ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 10
7. ਸੇਖੋਂ, ਸੰਤ ਸਿੰਘ (ਸੰਪਾ:) (1967) ਹੀਰ ਵਾਰਿਸ ਸ਼ਾਹ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, ਸਾਹਿਤ ਅਕਾਦਮੀ, ਪੰਨਾ ਨੰ. ੨੨੦-੨੨੧
8. ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ, ਨਨਾਣ ਭਰਜਾਈ ਦੀ ਸਿਖਿਆਦਾਇਕ ਵਾਰਤਾਲਾਪ, https://share.google/SdNI1TIWijRYJ1tQd, ਪੰਨਾ: ੧-੨
9. https://www.punjabi-kavita.com/PunjabiPoetrySultanBahu.php#Bahu2&gsc.tab=0
10. ਵੀਰ ਸਿੰਘ (ਭਾਈ) (2010) 'ਮੇਰੇ ਸਾਂਈਆਂ ਜੀਓ', 9ਵੀਂ ਐਡੀਸ਼ਨ, ਭਾਈ ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਸਾਹਿਤ ਸਦਨ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 40
11. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 64
12. ਡਾ: ਬਲਜੀਤ ਕੌਰ ਅਤੇ ਜੋਸ਼ੀ ਟੀ:ਡੀ: (2009) 'ਸੁਖਨ ਦੇ ਸੂਰਜ', ਗਿਆਰਵੀਂ ਐਡੀਸ਼ਨ, ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ, ਪੰਨਾ ਨੰਬਰ 50

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

साहिर लुधियानवी : विचारों से बुनी हुई गीतमाला

रेमीसा सी.यु.
शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविध्यालय कालड़ी
Eamil: remeesacu7@gmail.com
Mob. : 8089260731

शोध सारांश

साहिर लुधियानवी का जीवन और काव्य दोनों ही अपने समय की विसंगतियों, संघर्षों और विरोधाभासों से गहराई से संवाद करते हैं। उनकी कविता आधुनिकता की जटिलताओं, युद्ध और पूँजीवाद की भयावहता, धार्मिक पाखंड, और स्त्री-विमर्श के प्रश्नों से टकराती है। साहिर की समग्र काव्य-यात्रा को एक सौंदर्यवादी परंपरा की भौतिकवादी आलोचना के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें भावना को राजनीति से, और प्रेम को वैचारिकता से पृथक कर देखने की प्रवृत्ति का विरोध किया गया है। उनकी भाषा अलंकारों से सज्जित नहीं, बल्कि सटीक, बौद्धिक और विचारशील है। उनका काव्य पलायनवादी नहीं, प्रत्युत्तर देने वाला है - प्रेम की टूटन, सामाजिक संस्थाओं की क्रूरता और न्याय की लालसा, इन सब पर गहन संवेदनशीलता के साथ विचार करता है। साहिर का काव्य-संसार केवल प्रेम और करुणा की भावनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक गंभीर राजनीतिक चेतना से भी ओतप्रोत है। उनके कविता-संग्रहों और गीतों में औपनिवेशिक विरासत, युद्ध की विभीषिका, नवस्वतंत्र राष्ट्र की विफलताएँ, और धार्मिक-सांप्रदायिक वर्चस्ववाद के विरुद्ध तीव्र वैचारिक टकराहट दिखाई देती है। यह काव्यधारा केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि एक नैतिक हस्तक्षेप है - एक ऐसे कवि की आवाज़, जो सत्ता, राष्ट्रवाद और पूंजीवादी ढाँचों को प्रश्नांकित करता है।

प्रस्तावना

बीसवीं सदी का मध्य भारतीय उपमहाद्वीप के लिए एक गहन सामाजिक और राजनीतिक संक्रमण का युग था। औपनिवेशिक शासन के अंत और स्वतंत्रता के आरंभ के बीच भारत ने विभाजन की पीड़ा, नव-राष्ट्र के निर्माण की आकांक्षाएं, और विकास की नई परिभाषाओं के बीच सांस्कृतिक आत्ममंथन का अनुभव किया। यह वह काल था जब जनमानस ने सत्ता, धर्म, वर्ग, और लैंगिक संरचनाओं के प्रति नई चेतना अर्जित की। साहित्य, विशेषतः कविता, केवल सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं रहा, बल्कि सामाजिक प्रश्नों और ऐतिहासिक अनुभवों के आलोचनात्मक विमर्श का केंद्र बन गया। इसी दौर में प्रगतिशील लेखक संघ का उभार हुआ, जिसने लेखन को सामाजिक यथार्थ से जोड़ने का आह्वान किया। साहिर लुधियानवी इसी ऐतिहासिक क्षण की उपज थे - एक ऐसे शायर, जिनकी रचनात्मकता ने प्रेम, विद्रोह, करुणा और नैतिक साहस को एक साझा काव्य-संवेदना में पिरोया।

इसी ऐतिहासिक और वैचारिक पृष्ठभूमि में अब हम साहिर लुधियानवी की कविता के सामाजिक और वैचारिक आयामों की गहराई में प्रवेश करेंगे। उनकी काव्य-संवेदना उर्दू साहित्य की आधुनिक धारा में एक निर्णायक परिवर्तन का संकेत देती

है। जहाँ पारंपरिक उर्दू ग़ज़ल रहस्यवाद और अमूर्त सौंदर्यबोध से संचालित होती थी, वहीं साहिर की कविता हमें एक ऐसी भाषा और दृष्टिकोण प्रदान करती है जो सामाजिक यथार्थ, मानवतावादी चेतना, और ऐतिहासिक भौतिकता में गहराई से जड़ित है। 'समाज में दम तोड़ते हुए नैतिक संस्कारों और पारिवारिक मूल्यों, युद्ध की व्यर्थता, मक्कार राजनीतिज्ञों की धूर्तता और प्रेम से भी अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक आवश्यकताओं पर उनकी गहरी नज़र रहती थी।'[1]

वे प्रेम को आध्यात्मिक उदात्तता में विसर्जित करने के स्थान पर, उसे आधुनिक जीवन के अंतर्विरोधों, वर्गभेदों और असमानताओं के धरातल पर पुनः परिभाषित करते हैं। साहिर के काव्य-जगत में प्रेम अब विश्व की हिंसा से पलायन का साधन नहीं रह गया है, बल्कि यह वह क्षेत्र है जहाँ उस हिंसा को नाम, रूप और आलोचना दी जाती है। वे न तो पीड़ा का सौंदर्यीकरण करते हैं, न ही प्रेम को रहस्य में ढाँकते हैं; इसके विपरीत, उनका प्रेम सत्ता, वर्ग, और लिंग-आधारित संरचनाओं की पड़ताल का उपकरण बन जाता है। उनके कई काव्यांशों में प्रेम को भावनात्मक श्रम, असंतुलन और सामाजिक विश्वासघात की संरचना के रूप में प्रस्तुत किया गया है - सिर्फ़ प्रेमियों के बीच नहीं, बल्कि व्यक्ति और व्यवस्था के बीच भी। उनकी प्रसिद्ध कविता 'ताजमहल' में वे भारतीय सांस्कृतिक कल्पना में प्रेम के सबसे प्रतिष्ठित प्रतीकों में से एक को सामाजिक-आर्थिक अन्याय के रूप में उजागर करते हैं। 'अपनी जग प्रसिद्ध कविता ताजमहल में वह अपनी प्रेयसी से ताजमहल के आलावा कहीं और मिलने का आग्रह करते है।'[2] यह कविता किसी स्मारक की महिमा का गुणगान नहीं करती, बल्कि यह प्रश्न करती है कि क्या प्रेम की कोई सार्थकता उन लोगों के लिए शेष रह जाती है जिन्हें समाज ने उपेक्षित, ग़रीब और मूक बना दिया है। साहिर यहाँ यह स्थापित करते हैं कि रोमानी आदर्श भी तब तक अधूरे और धोखेबाज़ होते हैं, जब तक वे न्याय और समानता की नींव पर खड़े न हों।

साहिर की काव्य दृष्टि का एक अत्यंत प्रखर और आधुनिक पक्ष उनके नारी विमर्श में परिलक्षित होता है। जहाँ पारंपरिक उर्दू कविता में स्त्रियों को अक्सर मौन, इच्छाओं की वस्तु या प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया, वहीं साहिर स्त्री को कविता के केन्द्र में लाते हैं - एक चेतन, आलोचनात्मक और प्रतिरोधी स्वरूप के रूप में। उनकी प्रसिद्ध रचना 'औरत' पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मानदंडों की कड़ी भर्त्सना करती है—

'औरत ने जन्म दिया मर्दों को मर्दों ने उसे बाज़ार दिया
जब भी चाहा मसला कुचला जब भी चाहा धुत्कार दिया
तुलती है कहीं दीनारों में बिकती है कहीं बाज़ारों में
नंगी नचवाई जाती है अय्याशों के दरबारों में
ये वो बे-इज्ज़त चीज़ है जो बट जाती है इज्ज़त-दारों में'[3]

यह कविता दिखाती है कि किस प्रकार एक ही समाज स्त्री को देवी बनाकर पूजता है, परंतु उसके निर्णय, अधिकार और समानता को नकारता है। अपने समकालीनों से भिन्न, साहिर का नारीवाद केवल रचनात्मक सहानुभूति तक सीमित नहीं है। वह उनकी कविता की संरचना और स्वरों में अंतर्निहित है। वे स्त्रियों के लिए नहीं, बल्कि स्त्रियों के साथ बोलते हैं -उनकी पीड़ा, अस्मिता और संघर्ष के साथ एकजुट होकर। उनके स्त्री-पात्र ऐतिहासिक और सामाजिक शक्तियों से निर्मित होते हुए भी प्रतिरोध की क्षमता रखते हैं, और यही उन्हें आधुनिक चेतना का वाहक बनाता है।

साहिर की राजनीतिक कविता में औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का स्पष्ट विरोध है, परंतु यह विरोध केवल ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सीमित नहीं है। उनकी रचनाएँ उन नवउदारवादी और उत्तर-औपनिवेशिक संरचनाओं की भी आलोचना करती हैं, जो स्वतंत्रता के पश्चात भारत में उभरीं और जो अपने भीतर सामाजिक विषमता, भ्रष्टाचार, और वर्गीय शोषण को संरक्षित करती हैं। उनकी कविता 'जिन्हें नाज़ है हिंद पर' एक ऐसा ही दस्तावेज़ है - एक तीखी प्रतिवादी पुकार, जो भारत के राष्ट्रवाद की खोखली घोषणाओं को निर्वसन करती है—

'ज़रा मुल्क के रहबरों को बुलाओ
ये कुचे, ये गलियां, ये मंजर दिखाओ
जिन्हें नाज़ है हिन्द पर उनको बुलाओ
जिन्हें नाज़ है हिन्द पर वो कहाँ हैं'[4]

इस कविता में साहिर उन आत्ममुग्ध राष्ट्रीय प्रवक्ताओं से पूछते हैंरू यदि देश महान है, तो इसकी गलियों में भूख, वेश्यावृत्ति, बेरोज़गारी और हाशियाकरण क्यों है? यह काव्य न केवल राज्य के प्रति असहमति प्रकट करता है, बल्कि इसे एक नैतिक विफलता के रूप में भी चिह्नित करता है। साहिर की दृष्टि में आज़ादी केवल ध्वज और राष्ट्रगान का नाम नहीं, बल्कि वह एक सामाजिक जिम्मेदारी है, जिसका उद्देश्य नागरिकों के सम्मान, समानता और कल्याण को सुनिश्चित करना होना चाहिए। जब राष्ट्र इस वादे को निभाने में विफल रहता है, तब कवि का दायित्व होता है वह भाष्य प्रस्तुत करना जिसे सत्ता दबा देना चाहती है।

इसी क्रम में उनकी रचना 'परछाइयाँ' एक और शक्तिशाली उदाहरण है - यह कविता युद्ध की भयावहता को नैतिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर जांचती है।

'फौजों के भयानक बैंड टेल चर्खों की सदायें डूब गईं
जीपों की सुलगती धुल टेल फूलों की कबायें डूब गईं
इंसान की कीमत गिरने लगी, अजनास के भाओ चढ़ने लगे
चौपाल की रौनक घटने लगी, भरती के दफ़ातर बढ़ने लगे'[5]

इसमें साहिर युद्ध को वीरता की गाथा के रूप में नहीं, बल्कि मृत्यु, अनाथता और विनाश के अनुभव के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे उन अनदेखे चेहरों - स्त्रियों, बच्चों, शरणार्थियों की बात करते हैं जो युद्ध के मैदान में नहीं होते, परंतु जिनका जीवन युद्ध के परिणामस्वरूप बर्बाद हो जाता है। साहिर की यह वैचारिक प्रस्थापना कविता को एक सामाजिक हस्तक्षेप में रूपांतरित करती है। वे शब्दों का प्रयोग सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि सच बोलने के लिए करते हैं। उनकी कविता में राष्ट्रवाद की वही आलोचना देखने को मिलती है जो एक लोकतांत्रिक चेतना के भीतर से उठती है - वह चेतना जो राष्ट्र से प्रेम करती है, परंतु उसकी नीतियों, शोषण और विस्मृति का विरोध करती है।

साहिर का गीत लेखन मात्र मनोरंजन या फ़िल्मी अनुषंग नहीं था, बल्कि वह एक विशिष्ट साहित्यिक रूप था, जिसमें जनसांस्कृतिक उत्पादन और वैचारिक गहराई का विलक्षण समागम देखने को मिलता है। हिंदी सिनेमा की मुख्यधारा में रहकर उन्होंने गीत को एक विचारशील विधा में रूपांतरित किया - ऐसी विधा जो जनमानस तक पहुँचने की व्यापक क्षमता रखती थी, फिर भी संवेदनात्मक और बौद्धिक स्तर पर गहन अर्थवत्ता से युक्त थी। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि साहिर ने फ़िल्मी गीतों को लोकप्रियता और वैचारिकता के बीच एक संवादमूलक पुल की तरह गढ़ा। उनका फ़िल्मी काव्य शिल्प पारंपरिक प्रेम और सौंदर्य के भ्रामक रूपों से परे जाकर सामाजिक यथार्थ, वर्गीय अन्याय, और आत्मसंघर्ष की सघन पड़ताल करता है। फ़िल्म प्यासा (1957) में 'जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ हैं' जैसा गीत न केवल साहिर के सामाजिक दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है, बल्कि यह दर्शाता है कि गीत कैसे शोषण, असमानता, और हाशिये पर खड़े मनुष्य के संघर्ष का सशक्त प्रतीक बन सकता है। यह गीत भारतीय स्वातंत्र्योत्तर राष्ट्र-चेतना की विफलताओं पर एक तीखा नैतिक प्रश्नचिन्ह भी है। कभी कभी (1976) जैसे बाद के दौर की फिल्मों में भी साहिर की वैचारिक प्रतिबद्धता शिथिल नहीं होती। 'कभी कभी मेरे दिल में ख़याल आता है...' जैसे गीत में प्रेम, स्मृति और वियोग की पारंपरिक अभिव्यक्ति तो है, लेकिन उसके भीतर एक गहन कलात्मक आत्मचिंतन भी निहित है। यह गीत उस रचनाकार की व्यथा को स्वर देता है जो यथार्थ की कठोरताओं में प्रेम को तलाशता है, लेकिन अंततः एक कलात्मक तटस्थता में पहुंच जाता है।

साहिर ने फ़िल्मी संगीत के भीतर लेखक की भूमिका को पुनः परिभाषित किया। उन्होंने बार-बार यह स्पष्ट किया कि गीतकार कोई मनोरंजन-निर्माता मात्र नहीं, बल्कि एक वैचारिक सहभागी है, जो समाज के सौंदर्यशास्त्र को दिशा देता

है। उन्होंने गीतों को 'शब्दों का सौंदर्यशास्त्र' बनाने के साथ-साथ 'संवेदना की राजनीति' का भी रूप दिया। साहिर का फ़िल्मी गीत-संसार केवल संगीतमय मधुरता नहीं, बल्कि एक वैचारिक प्रयोगशाला है, जहाँ प्रेम, पीड़ा, संघर्ष और स्वप्न - इन सभी को सामाजिक संदर्भों में पुनः व्याख्यायित किया गया है। उनके गीत न केवल स्मृति में रहते हैं, बल्कि चेतना में भी हलचल पैदा करते हैं। यह वही बिंदु है जहाँ साहिर लुधियानवी केवल गीतकार नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक विचारक के रूप में स्थापित होते हैं। यह वह दौर था जब स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद भारत एक नए आत्मसंघर्ष से गुजर रहा था - जहाँ आज़ादी के सपनों की व्याख्या अलग-अलग वैचारिक धाराओं द्वारा की जा रही थी। सिनेमा, उस समय का सबसे सशक्त जनमाध्यम, इसी उथल-पुथल से उपजे प्रश्नों और स्वप्नों का मंच बन रहा था, और फ़िल्म गीतकार उस सांस्कृतिक विमर्श के आवश्यक हस्ताक्षर।

साहिर उस युग के गीतकार थे, जब हिंदी सिनेमा के गीत महज़ मनोरंजन नहीं रहे, बल्कि विचारधारा, सामाजिक चेतना और आत्मसंवाद के माध्यम बन गए। उनके समकालीनों में शैलेन्द्र की गीत-दृष्टि समाज की सामूहिक चेतना के साथ जुड़ती है। उनके गीत आम जन की आशाओं, पीड़ाओं और संकल्पों के संगीतात्मक प्रतिबिंब हैं। गुलज़ार के गीत निजी अनुभवों की भीतरी गहराइयों से निकलते हैं। वे स्वयं को समाज के संघर्षशील व्यक्तित्व में रूपांतरित करते हैं। उनके गीत आत्म-संवाद से अधिक सामाजिक उद्घोषणा हैं। कैफ़ी आज़मी विचारधारात्मक रूप से साहिर के निकट हैं, विशेषतः प्रगतिशील आंदोलन की चेतना में। ग़ज़ल की परंपरा से आए मजरूह सुल्तानपुरी के गीतों में शैली की मोहकता है, लेकिन वह मोहकता विचारों को सजाने में सहायक है, न कि विचारों को ढँकने में। आनंद बख़्शी अपने सहज और जनप्रिय लेखन के लिए जाने जाते हैं। उन्होंने भारतीय जनमानस की नब्ज़ पकड़ी और उसी भाषा में गीत रचे, जो दर्शक तुरंत अपना ले।

इन सभी गीतकारों के बीच साहिर की विशेषता उनकी नैतिक स्पष्टता, वैचारिक निर्भीकता और भाषा की वैचारिक अनुशासनशीलता है। वे गीत को सजावट नहीं, हस्तक्षेप मानते हैं। उनके गीतों में कोई झिझक नहीं - न प्रेम में, न विद्रोह में, न स्त्री के अधिकारों के पक्ष में बोलते हुए, न धर्म और राजनीति के गठजोड़ पर प्रहार करते हुए। वे कोई दुविधा नहीं रखते - न अपने विचारों में, न अपनी भाषा में। यही उन्हें समकालीन गीतकारों से अलग करता है। उनके गीतों में करुणा है, पर वह करुणा आत्मदया की नहीं, बल्कि संघर्ष की प्रस्तावना है। उनका प्रेम भी सामाजिक चेतना से विमुक्त नहीं - वह भी प्रश्न करता है, संकल्प लेता है, और भटकाव को अस्वीकार करता है। इस प्रकार, जबकि उनके समकालीन या तो रूमानी गीतों में, या प्रतीकों की भाषा में, या सहज जनभावनाओं के आलंबन में रचनाशील रहे, साहिर ने इन सभी को एक तीव्र सामाजिक विवेक की छानबीन से जोड़ा। वे केवल शब्दों के रचयिता नहीं, बल्कि विचारों के अभियंता थे - एक ऐसे शिल्पी, जिनके गीत आत्मा से नहीं, आत्म-संवेदना और सामाजिक ज़िम्मेदारी से जन्म लेते थे।

निष्कर्ष

साहिर लुधियानवी की रचनात्मक यात्रा हिन्दी-उर्दू कविता और फ़िल्मी गीतों के इतिहास में एक अद्वितीय अध्याय है। उन्होंने न केवल गीत को एक गंभीर साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित किया, बल्कि उसे सामाजिक चेतना, मानवीय करुणा और वैचारिक प्रतिबद्धता से भी समृद्ध किया। साहिर की प्रासंगिकता केवल उनके समय तक सीमित नहीं रही। आज जब समकालीन हिन्दी सिनेमा और संगीत फिर से वैचारिक पुनरावृत्ति और संवेदनशीलता की ओर लौटने की कोशिश कर रहा है, तब साहिर की उपस्थिति और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। इरशाद कामिल, प्रसून जोशी, अमिताभ भट्टाचार्य, वरुण ग्रोवर, कौसर मुनीर, स्वानंद किरकिरे जैसे लोकप्रिय गीतकारों की रचनाओं में साहिर की वैचारिक गहराई, सामाजिक प्रतिबद्धता और कवितात्मक ईमानदारी की अनुगूँज देखी जा सकती है। इस प्रकार, साहिर लुधियानवी केवल अतीत के कवि नहीं हैं। वे एक परंपरा हैं - विचारशीलता की, करुणा की, प्रतिरोध की और उम्मीद की। उन्हें पढ़ना, समझना और याद रखना, भविष्य की दिशा तय करने वाली संवेदनशीलता को आत्मसात करना है। यही उनकी कालजयिता का प्रमाण है।

संदर्भ सूची

1. जावेद हमीद, हिंदी सिनेमा के गीतकार (2019), अतुल्य पब्लिकेशंस, पृ.116
2. वही, पृ. 117
3. साहिर लुधियानवी, कुल्लियत-ए-साहिर, पृ.475
4. जिन्हें नाज़ है हिन्द पर वो कहाँ हैं, www.amarujala.com
5. परछाईयाँ, https:hindi-kavita.com
6. गरिमा सिंह, समकालीन उर्दू-हिंदी गजल परंपरा और विकास (2018), राजकमल प्रकाशन
7. नवीन शर्मा, हिंदी फ़िल्मी गीतों का सफ़र (2021), नोशन प्रेस।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

पाठ्य सहगामी क्रियाओं में योग क्रियाओं की आवश्यकता एवं विद्यार्थियों में योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

सुनीता जाखड़
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. रेखा खण्डेलवाल
सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास (शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक) एक बड़ी चुनौती बन गया है। प्रस्तुत शोध पत्र पाठ्य सहगामी क्रियाओं के रूप में योग की आवश्यकता और विद्यार्थियों में इसके प्रति जागरूकता का मूल्यांकन करता है। अध्ययन के लिए माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का सर्वेक्षण किया गया। निष्कर्ष दर्शाते हैं कि योग से विद्यार्थियों के एकाग्रता स्तर में सुधार होता है और तनाव कम होता है, हालांकि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विद्यार्थियों के बीच जागरूकता के स्तर में भिन्नता पाई गई है। भारत में योग का उद्भव हजारों वर्ष पूर्व हुआ। योग की उत्पति कब हुई। इस वास्तविक जानकारी किसी के पास उपलब्ध नहीं है। कुछ योग गुरुओं का कहना है कि इसकी उत्पति लगभग 500 साल पहले हुई थी तथा कुछ योग विद्वानों के अनुसार योग का प्रारम्भ लगभग 2500 वर्ष पहले हुआ था। यौगिक जनश्रुति के अनुसार शिव को योग का संस्थापक माना गया है।

तकनीकी शब्दावली : पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, योग क्रियाएँ, योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन, अष्टांग योग, प्राणायाम।

1. प्रस्तावना :

शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी ज्ञान देना नहीं, बल्कि व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में पाठ्य सहगामी क्रियाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आधुनिक जीवनशैली, डिजिटल गैजेट्स के अत्यधिक उपयोग और परीक्षा के दबाव के कारण आज का विद्यार्थी मानसिक तनाव, अवसाद और शारीरिक निष्क्रियता का सामना कर रहा है।

योग एक प्राचीन भारतीय पद्धति है जो शरीर, मन और आत्मा के बीच संतुलन स्थापित करती है। यदि योग को विद्यालयों में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के अनिवार्य हिस्से के रूप में शामिल किया जाए, तो यह विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और शैक्षणिक प्रदर्शन दोनों में क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है।

योग शब्द का जन्म संस्कृत शब्द युग से हुआ है। जिसका अर्थ है। स्वयं का सर्वश्रेष्ठ स्वय के साथ मिलन पतजंलि योग के अनुसार योग का अर्थ है। मन को नियंत्रित करता है। योग का मूल जन्म है। सिंधु घाटी सभ्यता जिसमें कई शारीरिक मुद्राऐं और आसन शामिल है। पर अब उसमें कई परिवर्तन किए गए है। और आजकल हम जो योगाभ्यास करते है। वह उस पुरातन समय से काफी अलग है।

यदि प्राचीन ग्रंथों उपनिषदों का अध्ययन किया जाए। तो हमे यह ज्ञात होता है कि हमारे ऋषि-मुनि योग की ओर विशेष ध्यान देते थे। वैदिक रचनाओं तथा उपनिषदो में योग क्या है। परन्तु योग पद्धति को शास्त्रीय रूप देने का गौरव सांख्य दर्शन के आचार्य कपिल मुनिजी और योग दर्षन के आचार्य पंतजलि को है। कपिल मुनि ने इस संबंध के शास्त्रीय सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है और उन्हीं सिद्धान्तों को लेकर महर्षि पंतजलि ने योग का व्यावहारिक रूप हमारे सम्मुख रखा।

2. समस्या का औचित्य :

यद्यपि इस संदर्भ में पूर्व भी कुछ शोध कार्य किये जा चुके है। किन्तु उपर्युक्त शोध करने के औचित्य की सार्थक के पर्याप्त आधार है। यद्यपि वर्तमान में तकनीकी विकास सभ्यता को बढाया जा सकता है। तथापि ऐसा कोई चिह्न नहीं है। जीवन दुःखी से मुक्त हो रहा है। मानव, मानसिक, शारीरिक पर्यावरणीय हर तरीके से दुःखी है। मानव आज असंतुष्ट है। मानवता का हास कर रहा है। गलत संगत और कार्यो में फंसकर दुर्बलताओं को प्राप्त करना मानव मूल्य विहीनता के चलते अपने कर्तव्यों से विमुख होता जा रहा है। साथ ही साथ युवा पीढ़ी विध्वसात्मक कार्यो में जुटी दिखाई देती है। उनमें सामाजिक बुराईया उत्पन्न हो रही है। फलस्वरूप मूल्य रसातल में जा रहे है। यह स्पष्ट है कि किसी ज्ञान की आवश्यकता है। जो मानव को अधिक सृजनात्मक अधिक उर्जावान आन्तरिक सुखी अधिक मूल्ययुक्त बना सके। यह ज्ञान है, ध्यान, चित की एकाग्र अवस्था में चित की दिशा में निर्विहन निरन्तर प्रवाह ध्यान कहलाता है। ध्यान के लगातार अभ्यास से गठन एकाग्रता की शक्ति प्राप्त होती है।

3. शोध के उद्देश्य :

- शहरी क्षेत्र की बालिकाओं में पाठ्य सहगामी क्रियाओं के रूप में योग की भूमिका और इसकी आवश्यकता का अध्ययन करना।
- ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं में विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग के प्रभावों का अध्ययन करना।
- शहरी क्षेत्र की बालिकाओं के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग के प्रभावों का अध्ययन करना।
- ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाओं के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर योग के प्रभावों का अध्ययन करना।



(शहरी विद्यालय में योग क्रियाओं का अभ्यास)



(ग्रामीण विद्यालय में योग क्रियाओं का अभ्यास)

4. शोध की विधि :

किसी भी शोध कार्य को पूरा करने के लिए शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य समस्या का हल ढूंढना है। वर्तमान समय में शोध कार्य हेतु अनेक शोध विधियों का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत शोध के लिए 'सर्वेक्षण विधि' का चयन किया गया है।

5. जनसंख्या :

प्रस्तुत अध्ययन में जयपुर जिले के दो विद्यालयों की छात्राओं को जनसंख्या के रूप में चयन किया गया है।

6. शोध में प्रयुक्त न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर के 50 छात्राओं का चयन किया गया है।

7. शोध में प्रयुक्त उपकरण :

शोधकर्त्री द्वारा प्रस्तुत लघुषोध में उपकरण के रूप में 'स्वनिर्मित प्रश्नावली' का प्रयोग किया गया है।

8. सांख्यिकीय प्रविधियाँ :

प्रस्तुत शोध कार्य में सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, टी परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

9. शोध का सीमांकन :

- यह अध्ययन केवल राजस्थान बोर्ड से सम्बन्धित माध्यमिक स्तर की बालिकाओं से सम्बन्धित है।
- इस अध्ययन के लिए माध्यमिक स्तर की बालिकाओं को ही न्यादर्श में लिया गया हैं
- इस अध्ययन हेतु 50 छात्राओं का चयन किया गया है।
- इसमें माध्यमिक स्तर की 25 छात्राएं जयपुर के शहरी क्षेत्र की शामिल की गयी है।
- इसमें माध्यमिक स्तर की 25 छात्राएं जयपुर के ग्रामीण क्षेत्र की शामिल की गया है।

निष्कर्ष :

शोधकर्त्री द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों में योग के सैद्धांतिक लाभों को लेकर जागरूकता है, परंतु व्यावहारिक धरातल पर बुनियादी ढांचे और योग्य योग शिक्षकों की कमी के कारण वे इसका पूर्ण लाभ नहीं ले पा रहे हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाओं में योग को मात्र एक औपचारिकता न मानकर एक अनिवार्य जीवनशैली के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- सरस्वती, स्वामी सत्यानंद (2013) : आसन प्राणायाम मुद्रा बंध. बिहार योग विद्यालय.
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) : स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा अनुभाग, NCERT.
- शर्मा, आर. के. (2021) : आधुनिक शिक्षा और योग विज्ञान की प्रासंगिकता. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका,
- उषा, डॉ. गोपाल (1796) : ''योग षिक्षा ज्ञानकोष'' स्पोर्टस पब्लिकेषन्स, दरिया गंज, नई दिल्ली।
- कपिल, डॉ. एच.के. (2006) : ''अनुसंधान विधियाँ'' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- गुड चार्टर वी (1989) : ''अनुसंधान परिचय'' पारसनाथ राय चावला एण्ड संस, आगरा।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

Anju Kumari
Research Scholar
Economics Department, Radha Govind Univercity, Ramgarh
Email Id: Anju13587@gmail.com

सारांश

स्वयं सहायता समूह (Self Help Group: SHG) ग्रामीण और अर्ध-शहरी भारत में महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरे हैं। SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं में बचत की आदत, ऋण तक पहुँच, आय-सृजन क्षमता, निर्णय लेने की क्षमता, सामाजिक भागीदारी, आत्मविश्वास और पारिवारिक प्रतिष्ठा में उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया है। यह केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक चेतना, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, लैंगिक समानता और सामुदायिक नेतृत्व के विकास से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। प्रस्तुत लेख में SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है। लेख में SHG की अवधारणा, महिला सदस्यता का महत्व, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, सामाजिक जीवन पर प्रभाव, पारिवारिक निर्णयों में भूमिका, चुनौतियाँ तथा भविष्य की संभावनाओं का विस्तार से विवेचन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि SHG महिलाओं को केवल वित्तीय सहायता नहीं देता, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर, संगठित, जागरूक और समाज में सम्मानित नागरिक के रूप में स्थापित करने का अवसर भी प्रदान करता है।

कुंजी शब्द : स्वयं सहायता समूह, SHG, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, ग्रामीण विकास, बचत, ऋण, आत्मनिर्भरता, सामाजिक परिवर्तन

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका सदैव महत्त्वपूर्ण रही है, परंतु लंबे समय तक उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से अपेक्षित स्थान नहीं मिल सका। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आर्थिक निर्भरता, अशिक्षा, सीमित संसाधन, सामाजिक बंधनों, लैंगिक असमानता और निर्णय-प्रक्रिया से बहिष्करण जैसी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। ऐसे परिदृश्य में स्वयं सहायता समूह (SHG) एक ऐसे सामाजिक-आर्थिक मंच के रूप में उभरे, जिसने महिलाओं को संगठित होने, बचत करने, ऋण प्राप्त करने, छोटे उद्यम शुरू करने तथा सामाजिक रूप से सक्रिय होने का अवसर दिया।

SHG आंदोलन ने महिलाओं के जीवन में बहुआयामी परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ की है। पहले जहाँ महिलाएँ परिवार की आर्थिक गतिविधियों में योगदान देने के बावजूद अदृश्य श्रमशक्ति मानी जाती थीं, वहीं SHG के माध्यम से उन्होंने आर्थिक पहचान, सामाजिक सम्मान और सामुदायिक भागीदारी प्राप्त की है। आज SHG से जुड़ी महिलाएँ केवल समूह की सदस्य नहीं, बल्कि बचतकर्ता, उद्यमी, निर्णयकर्ता, प्रशिक्षक, सामुदायिक नेता और परिवर्तन की वाहक के रूप

में देखी जा रही हैं।

इसी संदर्भ में यह अध्ययन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में वास्तव में किस प्रकार के परिवर्तन आए हैं और उनकी वर्तमान स्थिति को किस रूप में समझा जाना चाहिए।

2. SHG की अवधारणा और स्वरूप

स्वयं सहायता समूह ऐसे छोटे समूह होते हैं जिनमें सामान्यतः 10 से 20 सदस्य शामिल होते हैं। ये सदस्य समान सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं और नियमित बचत, सामूहिक निर्णय तथा आंतरिक ऋण की व्यवस्था के माध्यम से अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं। SHG का मूल सिद्धांत है—"स्वयं सहायता द्वारा सामूहिक उन्नति।"

SHG की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

- स्वैच्छिक सदस्यता
- नियमित बचत
- समूह कोष का निर्माण
- आंतरिक ऋण सुविधा
- सामूहिक निर्णय
- सामूहिक उत्तरदायित्व
- बैंक से जुड़ाव
- आय-सृजन और सामाजिक विकास गतिविधियाँ

महिलाओं के बीच SHG की लोकप्रियता का मुख्य कारण यह है कि यह उन्हें आर्थिक अवसरों के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा और सामुदायिक सहयोग भी प्रदान करता है।

3. SHG और महिला सदस्यता का महत्व

SHG मॉडल विशेष रूप से महिलाओं के लिए प्रभावी सिद्ध हुआ है। इसके पीछे कई कारण हैं। पहला, महिलाएँ सामान्यतः परिवार के सीमित संसाधनों का अधिक जिम्मेदारी से उपयोग करती हैं। दूसरा, वे नियमित बचत और सामूहिक अनुशासन का पालन अपेक्षाकृत अधिक गंभीरता से करती हैं। तीसरा, महिलाओं को संगठनात्मक मंच मिलने पर उनमें आत्मविश्वास और सामाजिक जागरूकता का विकास होता है।

SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं—

- नियमित बैठकों के माध्यम से सामाजिक संपर्क
- बचत और वित्तीय प्रबंधन का व्यावहारिक प्रशिक्षण
- जरूरत पड़ने पर ऋण प्राप्ति
- सरकारी योजनाओं की जानकारी
- स्वास्थ्य, शिक्षा और अधिकारों पर जागरूकता
- परिवार और समुदाय में पहचान

इस प्रकार SHG महिलाओं को "निर्भरता" से "सक्रिय सहभागिता" की ओर ले जाता है।

4. SHG से जुड़ी महिलाओं की आर्थिक स्थिति

4.1 बचत की आदत का विकास

SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं में सबसे पहले नियमित बचत की आदत विकसित होती है। पहले जिन परिवारों

में छोटी बचत को महत्त्व नहीं दिया जाता था, वहाँ समूह के माध्यम से महिलाएँ थोड़ी-थोड़ी राशि जमा करना शुरू करती हैं। यह बचत समय के साथ एक सामूहिक कोष में बदल जाती है, जो संकट के समय सहारा प्रदान करता है।

बचत की आदत के कई सकारात्मक परिणाम होते हैं–

- खर्च में अनुशासन आता है
- भविष्य के प्रति सोच विकसित होती है
- छोटी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए बाहरी उधारी कम होती है
- महिलाओं में "मैं भी आर्थिक योगदान दे सकती हूँ" का विश्वास बढ़ता है

4.2 ऋण तक पहुँच

ग्रामीण समाज में गरीब महिलाओं के लिए औपचारिक बैंकिंग व्यवस्था तक पहुँचना पहले कठिन था। SHG ने इस समस्या का समाधान किया। समूह के माध्यम से महिलाएँ पहले आंतरिक ऋण लेती हैं, बाद में बैंक-लिंकेंज के माध्यम से बड़े ऋण की सुविधा भी प्राप्त कर सकती हैं।

इससे उन्हें लाभ मिलता है–

- साहूकारों पर निर्भरता कम होती है
- ब्याज दर अपेक्षाकृत कम रहती है
- ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों में किया जा सकता है
- आर्थिक संकट से उबरने की क्षमता बढ़ती है

4.3 आय-सृजन गतिविधियों में वृद्धि

SHG से जुड़ी महिलाएँ अक्सर छोटे-छोटे व्यवसाय आरम्भ करती हैं, जैसे–

- सिलाई-कढ़ाई
- अगरबत्ती बनाना
- पापड़, अचार, मसाले तैयार करना
- डेयरी
- बकरी पालन
- मुर्गी पालन
- सब्जी उत्पादन
- मशरूम उत्पादन
- हस्तशिल्प
- फूल-माला निर्माण
- खाद्य प्रसंस्करण

इन गतिविधियों से उनकी व्यक्तिगत और पारिवारिक आय में वृद्धि होती है। यह वृद्धि भले ही शुरुआत में छोटी हो, लेकिन इसका मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रभाव बहुत बड़ा होता है।

4.4 आर्थिक आत्मनिर्भरता का विकास

आर्थिक स्थिति में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि महिलाएँ पूर्णतः आश्रित नहीं रहतीं। जब उनके पास स्वयं की बचत, स्वयं की कमाई और ऋण लेने-चुकाने की क्षमता विकसित होती है, तो वे आर्थिक रूप से अधिक आत्मनिर्भर बनती हैं।

आर्थिक आत्मनिर्भरता के परिणाम–

- परिवार में उनकी बात का महत्त्व बढ़ता है
- बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च करने में उनकी भूमिका बढ़ती है
- घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में उनका योगदान दिखने लगता है
- आत्मसम्मान और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है

5. SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक स्थिति

5.1 सामाजिक पहचान में परिवर्तन

SHG से पहले कई महिलाओं की पहचान केवल किसी की पत्नी, बहू या माँ के रूप में होती थी। SHG से जुड़ने के बाद उनकी पहचान एक सक्रिय समूह सदस्य, बचतकर्ता, व्यवसायी, प्रशिक्षित महिला या समुदाय की प्रतिनिधि के रूप में बनने लगती है।

यह परिवर्तन बहुत गहरा है, क्योंकि इससे महिला की सामाजिक दृश्यता बढ़ती है। वह समाज में "सहभागी" के रूप में सामने आती है।

5.2 आत्मविश्वास और आत्म-अभिव्यक्ति

समूह की बैठकों में बोलना, चर्चा करना, निर्णय लेना, बैंक कर्मचारियों से मिलना, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेना—ये सभी अनुभव महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ाते हैं। जो महिलाएँ पहले सार्वजनिक रूप से बोलने में संकोच करती थीं, वे धीरे-धीरे अपनी बात स्पष्ट रूप से रखने लगती हैं।

5.3 सामाजिक जागरूकता में वृद्धि

SHG की बैठकों में केवल पैसे की चर्चा नहीं होती; वहाँ कई सामाजिक विषयों पर भी बात होती है, जैसे—

- बच्चों की शिक्षा
- बेटी की पढ़ाई
- बाल विवाह
- दहेज
- स्वच्छता
- टीकाकरण
- पोषण
- महिला अधिकार
- घरेलू हिंसा
- सरकारी योजनाएँ

इससे महिलाओं में सामाजिक चेतना का विकास होता है और वे समस्याओं को केवल व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक दृष्टि से समझने लगती हैं।

5.4 सामाजिक भागीदारी

SHG से जुड़ी महिलाएँ ग्रामसभा, पंचायत बैठकों, स्कूल प्रबंधन, स्वास्थ्य शिविरों और सामुदायिक अभियानों में अधिक भाग लेने लगती हैं। इससे उनकी सार्वजनिक भूमिका मजबूत होती है।

6. पारिवारिक जीवन पर प्रभाव

6.1 परिवार में निर्णय लेने की क्षमता

SHG से जुड़ने के बाद महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक समझ बढ़ती है, जिससे वे पारिवारिक निर्णयों में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने लगती हैं। वे बच्चों की पढ़ाई, इलाज, विवाह, खेती, घरेलू खर्च और निवेश से जुड़े निर्णयों में भाग लेने लगती हैं।

6.2 बच्चों की शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव

अनेक अध्ययन और सामाजिक अनुभव यह बताते हैं कि जब महिलाएँ आर्थिक रूप से सक्रिय होती हैं, तो वे बच्चों की शिक्षा, विशेषकर बेटियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देती हैं। SHG सदस्य महिलाएँ शिक्षा के महत्त्व को समझती हैं और इस दिशा में परिवार को प्रेरित करती हैं।

6.3 स्वास्थ्य और पोषण में सुधार

जब महिलाओं के पास अपनी कुछ आय और निर्णय क्षमता होती है, तो वे परिवार के भोजन, दवा, टीकाकरण, साफ-सफाई और पोषण पर अधिक ध्यान देती हैं। यह विशेष रूप से बच्चों और गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

6.4 घरेलू सम्मान में वृद्धि

SHG से जुड़ी महिलाओं का सम्मान परिवार में बढ़ता है, क्योंकि अब वे केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि आय-सृजनकर्ता और निर्णय में भाग लेने वाली सदस्य बन जाती हैं।

7. SHG और महिला सशक्तिकरण का मनोवैज्ञानिक पक्ष

SHG की सफलता केवल आय या बचत तक सीमित नहीं है। इसका एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी है।

7.1 हीनभावना में कमी

गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक उपेक्षा के कारण कई महिलाओं में हीनभावना होती है। SHG उन्हें यह अनुभव कराता है कि वे सक्षम हैं, संगठित हैं और आर्थिक निर्णय ले सकती हैं।

7.2 उपलब्धि की भावना

जब महिला अपनी बचत देखती है, ऋण लेती है, व्यवसाय चलाती है, बच्चों को पढ़ाती है और समाज में पहचान बनाती है, तो उसमें उपलब्धि का भाव उत्पन्न होता है।

7.3 समूह समर्थन से मानसिक बल

SHG महिलाओं को अकेलापन महसूस नहीं होने देता। वे समझती हैं कि उनकी समस्याएँ केवल उनकी व्यक्तिगत नहीं हैं; समूह के अन्य सदस्य भी समान स्थितियों से गुजरते हैं। यह सामूहिकता मानसिक शक्ति प्रदान करती है।

8. SHG से जुड़ी महिलाओं की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थिति का समग्र विश्लेषण

यदि समग्र दृष्टि से विश्लेषण किया जाए, तो SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में निम्न प्रमुख परिवर्तन दिखाई देते हैं–

आर्थिक स्तर पर

- बचत में वृद्धि
- ऋण तक पहुँच
- छोटे उद्यमों का विकास
- आय के स्रोतों में विविधता
- आर्थिक आत्मनिर्भरता का आरम्भ

सामाजिक स्तर पर

- आत्मविश्वास में वृद्धि
- सामाजिक पहचान में सुधार
- समूह-आधारित जागरूकता
- पंचायत और समुदाय में सहभागिता
- सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़

पारिवारिक स्तर पर

- निर्णय क्षमता में वृद्धि
- बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य पर ध्यान
- घरेलू सम्मान में वृद्धि
- पारिवारिक जिम्मेदारी में सक्रिय भागीदारी

मनोवैज्ञानिक स्तर पर

- आत्मसम्मान
- सामूहिक सुरक्षा
- उपलब्धि की भावना
- नेतृत्व क्षमता

इस प्रकार SHG से जुड़ी महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन बहुआयामी है। यह केवल आर्थिक उन्नयन नहीं, बल्कि समग्र सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।

9. चुनौतियाँ और सीमाएँ

यद्यपि SHG से महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है, फिर भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

9.1 सीमित आय-सृजन अवसर

कई SHG केवल बचत और छोटे ऋण तक सीमित रह जाते हैं; वे स्थायी आय-सृजन गतिविधियों तक नहीं पहुँच पाते।

9.2 बाजार से जुड़ाव की कमी

उत्पाद तो बनते हैं, पर उन्हें उचित बाजार, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और मूल्य नहीं मिल पाता।

9.3 प्रशिक्षण की कमी

सभी महिलाओं को उद्यमिता, लेखा-जोखा, डिजिटल भुगतान, विपणन और उत्पाद प्रबंधन का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिल पाता।

9.4 घरेलू और सामाजिक बंधन

कई बार महिलाएँ समूह की सक्रिय सदस्य होने के बावजूद घर और समाज के पारंपरिक दबावों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पातीं।

9.5 वित्तीय उत्पादों की कम समझ

बीमा, पेंशन, बैंक ऋण, ब्याज, पुनर्भुगतान और डिजिटल बैंकिंग के बारे में जानकारी सीमित हो सकती है।

9.6 समूह संचालन में समस्याएँ

अनियमित बैठक, नेतृत्व विवाद, पुनर्भुगतान में देरी, पारदर्शिता की कमी और समूह निष्क्रियता जैसी समस्याएँ भी

सामने आती हैं।

10. सुधार के उपाय

SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को और मजबूत करने के लिए निम्न कदम उपयोगी हो सकते हैं–

10.1 नियमित क्षमता-विकास प्रशिक्षण

- वित्तीय साक्षरता
- डिजिटल साक्षरता
- विपणन
- पैकेजिंग
- उद्यमिता
- नेतृत्व विकास

10.2 बैंक और SHG के बीच बेहतर समन्वय

समूहों को समय पर ऋण, परामर्श और बैंकिंग सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए।

10.3 उत्पाद आधारित क्लस्टर निर्माण

एक जैसे उत्पाद बनाने वाले SHG को समूहबद्ध कर सामूहिक विपणन की व्यवस्था की जा सकती है।

10.4 डिजिटल प्लेटफॉर्म से जुड़ाव

महिलाओं को ऑनलाइन भुगतान, सोशल मीडिया मार्केटिंग, ई-कॉमर्स और डिजिटल रिकॉर्ड रखने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

10.5 सामाजिक मुद्दों पर निरंतर जागरूकता

SHG को केवल आर्थिक मंच नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के मंच के रूप में भी विकसित किया जाना चाहिए।

10.6 पंचायत और स्थानीय संस्थाओं से जुड़ाव

SHG सदस्य महिलाओं को ग्रामसभा, पंचायत समिति, स्कूल समिति और स्वास्थ्य समिति से अधिक जोड़ा जाना चाहिए।

11. निष्कर्ष

SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि स्वयं सहायता समूह महिलाओं के जीवन में परिवर्तन का एक प्रभावशाली माध्यम हैं। SHG ने महिलाओं को बचत, ऋण, आय-सृजन, आत्मनिर्भरता, सामाजिक पहचान, निर्णय क्षमता और सामुदायिक भागीदारी का अवसर प्रदान किया है। इसके माध्यम से महिलाएँ केवल आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हुई, बल्कि उन्होंने सामाजिक सम्मान, आत्मविश्वास और नेतृत्व की नई पहचान भी अर्जित की है।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि सभी SHG समान रूप से सफल नहीं हैं और महिलाओं की वास्तविक उन्नति के लिए प्रशिक्षण, विपणन, डिजिटल सशक्तिकरण, सामाजिक समर्थन और संस्थागत सहयोग आवश्यक है। यदि इन पक्षों पर निरंतर कार्य किया जाए, तो SHG से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और अधिक सुदृढ़ हो सकती है।

अतः यह कहा जा सकता है किSHG महिला विकास का केवल आर्थिक मॉडल नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, आत्मसम्मान और सामुदायिक सशक्तिकरण का एक जीवंत माध्यम है।

संदर्भ सूची (नमूना)

1. अग्रवाल, जी. (2018). महिला सशक्तिकरण और स्वयं सहायता समूह. नई दिल्ली : रावत प्रकाशन।
2. सिंह, आर. एवं कुमारी, पी. (2020). स्वयं सहायता समूह और महिला आर्थिक विकास, ग्रामीण विकास पत्रिका, 12(2), 45-59.
3. मिश्रा, एस. (2019). SHG और सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विज्ञान समीक्षा, 8(1), 66-81.
4. यादव, एम. (2021). ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर SHG का प्रभाव.भारतीय महिला अध्ययन जर्नल, 15(3), 102-118.
5. Kumar, A. (2020). Self Help Groups and Women Empowerment in Rural India. Journal of Rural Social Transformation, 9(2), 34-49.
6. NABARD. Reports on Self Help Group-Bank Linkage Programme.
7. Government of India. National Rural Livelihood Mission Reports.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों का प्रभाव

अलका यादव
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू
प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश :

प्रस्तुत अध्ययन का संबंध विद्यार्थियों की शिक्षा पर जनसंचार माध्यमों का पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करता है। वर्तमान युग तकनीकी का युग है। जिसमें अब शिक्षा ग्रहण करना मात्र विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा दिये जाने वाले ज्ञात तक ही सीमित नहीं रह गया है। बढ़ती तकनीकी के कारण विद्यार्थी अनेक जन संचार माध्यमों के निरन्तर सम्पर्क में रहता हैं तथा ज्ञान प्राप्त करता है। प्रस्तुत अध्याय में जनसंचार माध्यमों में टेलिविजन रेडियों तथा समाचार पत्र पत्रिकाओं को लिया गया हैं जिसके सम्पर्क में बालक रहता है। इस जन संचार साधनों का प्रभाव बालक की शिक्षा पर स्पष्ट दिखाई देता है।

1. प्रस्तावना :

प्रस्तुत अध्ययन का संबंध विद्यार्थियों की शिक्षा पर जनसंचार माध्यमों का पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करता है। वर्तमान युग तकनीकी का युग है। जिसमें अब शिक्षा ग्रहण करना मात्र विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा दिये जाने वाले ज्ञात तक ही सीमित नहीं रह गया है। बढ़ती तकनीकी के कारण विद्यार्थी अनेक जन संचार माध्यमों के निरन्तर सम्पर्क में रहता हैं तथा ज्ञान प्राप्त करता है। प्रस्तुत अध्याय में जनसंचार माध्यमों में टेलिविजन रेडियों तथा समाचार पत्र पत्रिकाओं को लिया गया हैं जिसके सम्पर्क में बालक रहता है। इस जन संचार साधनों का प्रभाव बालक की शिक्षा पर स्पष्ट दिखाई देता है।

2. अध्ययन का औचित्य :

भोजन तथा सुरक्षा जैसे भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त मनुष्य की दूसरी मूलभूत आवश्यकता होती है। अपने साथियों से सम्पर्क स्थापित करने की। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि आदान प्रदान की यह इच्छा काफी समय से ही रहीं है। समय रूप में यदि इसे हम परिभाषित करें तो -

"Communication is the art of transmitting information ideas and attitudes from one person to another"

आज पुराने आमने सामने के प्रत्यक्ष सम्पर्क का स्थान परोक्ष सम्पर्को ने ले लिया है। इस सम्पर्क में जन संचार के साधनों का विशिष्ट योगदान है। जन संचार के प्रमुख साधनों में टी.वी. समाचार पत्र, रेडियों, कम्प्यूटर नेटवर्क, सिनेमा, पत्रिकाऐं आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

3 समस्या कथन :

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों का प्रभाव

4 समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या :

माध्यमिक स्तर - माध्यमिक स्तर के अभिप्राय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित कक्षा 11 व कक्षा 12 को माध्यमिक स्तर माना है।

जनसंचार माध्यम - जनसंचार वह है जो जन जन में संचरण करें अथवा जिनका जनसंचार में संचरण है। जब कोई विचार अनुभव भाव एवं संदेश किसी माध्यम द्वारा जनज न में संचरित किये जाते है। वह जन संचार है और जिसकी सहायता के लिए जाते है जैसे टीवी, रेडियो, समाचार पत्र पत्रिकाऐं, सिनेमा, कम्प्यूटर नेटवर्क आदि जन संचार माध्यम होते है।

शिक्षा - शिक्षा का अर्थ है सिखना अथवा सिखाना। जिसकी सहायता से बालक के व्यवहार में उपेक्षित परिवर्तन किया जा सकता है। वही शिक्षा है।

5 अध्ययन के उद्देश्य :

- माध्यमिक स्तर के समग्र न्यादर्ष की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।
- सरकारी विद्यालय के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।
- निजी विद्यालय के माध्यम स्तर कि विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।
- माध्यमिक स्तर की छात्राओं की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।
- माध्यमिक स्तर की छात्रों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव का अध्ययन।
- सरकारी एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जनसंचार माध्यमों के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन।

6 अध्ययन की परिकल्पनाएँ :

- सरकारी विद्यालय के विद्यार्थियों एवं निजी विद्यालय के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- निजी विद्यालयों के छात्रों एवं सरकारी विद्यालय के छात्रों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी विद्यालय के छात्रों एवं निजी विद्यालयों के छात्रों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी विद्यालय के छात्रों एवं छात्राओं की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- निजी विद्यालय के छात्रों एवं छात्राओं की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी विद्यालय के छात्राओं एवं निजी विद्यालयों के छात्रों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव मे सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- निजी विद्यालय के छात्रों एवं सरकारी विद्यालय की छात्राओं की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों के प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

7. शोध में प्रयुक्त उपकरण :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

8. शोध में प्रयुक्त विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

9 शोध में प्रयुक्त चर :

- स्वतंत्र चर - जन संचार माध्यम

● आश्रित चर - माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी

10 शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :

मध्यमान -

$$M = \frac{\sum x}{N}$$

● M = मध्यमान

● x = समस्त समूह प्रदत्तों का योग

● N = समूह की इकाईयों की संख्या

प्रमाणिक विचलन (SD)

$$SD = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$$

S.D. = प्रमाप विचलन

d = मध्यमान से प्रत्येक पद का विचलन

$\sum fd^2$ = विचलन के वर्ग से उसकी आवृत्ति का गुणनफल

N = पदों की कुल संख्या

'टी' परीक्षण

$$t = \frac{M_1 - M_2}{\sqrt{\frac{\sum d1^{2+} \sum d2^2}{N_1 + N_2 - 2}}}$$

m1 = पहले प्रतिदर्ष का माध्य (उमंद)

m2 = दूसरे प्रतिदर्ष का माध्य (उमंद)

$\sum d1^2$ = पहले प्रतिदर्ष के प्राप्तांको के अपने मध्यमान से विचलनों के वर्गो का योग

11 अध्ययन का परिसीमन :

शोधकर्त्री ने समय धन एवं साधनों की सीमितता को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन का निम्न प्रकार परिसीमन किया है -

क्षेत्र - प्रस्तुत अध्ययन शोध जयपुर जिले की जयपुर शहर तक सीमित है।

विद्यालय - न्यादर्श के अन्तर्गत कोटपूतली के दो प्रकार के विद्यालयों सरकारी तथा निजी को सम्मिलित किया है।

स्तर - शोध को माध्यमिक स्तर कक्षा 9 व कक्षा 10 के विद्यार्थियों तक सीमित रखा है।

जनसंचार माध्यम - जनसंचार के तीन साधनों टीवी, रेडियों एवं समाचार पत्र पत्रिका तक ही अध्ययन सीमित रखा है।

लिंग - प्रस्तुत शोध में माध्यमिक स्तर के छात्र छात्राओं को ही सम्मिलित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- बसु, डी.डी.(2001) भारतीय संविधान आर्य बुक डिपो नई दिल्ली 110002
- भार्गव, डॉ. महेष, (2007) आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापनी' एच.पी. भार्गव बुक हाऊस आगरा

- भटनागर, आर.पी. एवं भटनागर मिनाक्षी (2005) 'शिक्षा अनुसंधान' इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस मेरठ
- जायसवाल, डॉ. सीताराम (1992) 'बाल मनोविज्ञान' आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली
- जोशी, रामशरण (2001) आदिवासी समाज और शिक्षा, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली
- कपिल, एच.के. (2007) 'अनुसंधान विधियाँ 8 एच.पी. भार्गव बुक हाऊस आगरा
- मान, आर. एस. (2000) ''पश्चिम भारतीय आदिवासियों का आर्थिक जीवन'' विकास पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत में मानव अधिकार : दशा एवं दिशा - वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ. निरंजन कुंभकार
ग्राम-जोजोहातु, पोस्ट-दलभंगा, प्रखण्ड-कुचाई,
जिला-सरायेकेला-खरसावाँ, झारखण्ड-833216

सारांश

मानव अधिकार वे मूलभूत अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मानव होने के आधार पर प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों का उद्देश्य व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता तथा न्याय सुनिश्चित करना है। आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में मानव अधिकारों का संरक्षण राज्य का प्रमुख दायित्व माना जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जहाँ संविधान द्वारा नागरिकों को व्यापक मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए अनेक संवैधानिक, विधिक तथा संस्थागत उपाय किए हैं। इसके बावजूद सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव, लैंगिक हिंसा, बाल श्रम, मानव तस्करी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न तथा डिजिटल युग में निजता के अधिकार जैसी चुनौतियाँ आज भी विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में भारत में मानव अधिकारों की वर्तमान स्थिति, उपलब्धियों, चुनौतियों तथा भविष्य की दिशा का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द : मानव अधिकार, संविधान, मौलिक अधिकार, समानता, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, लोकतंत्र।

प्रस्तावना

मानव अधिकारों की अवधारणा मानव सभ्यता के विकास के साथ निरंतर विकसित होती रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 'मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) को स्वीकार किया गया, जिसने विश्वभर में मानव अधिकारों की स्थापना और संरक्षण के लिए आधार प्रदान किया। मानव अधिकारों का मूल उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अवसर प्रदान करना है।

भारत की सांस्कृतिक परंपरा में भी मानव अधिकारों की भावना प्राचीन काल से विद्यमान रही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे आदर्श मानव समानता और गरिमा के प्रतीक हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने इन मूल्यों को संविधान में समाहित करते हुए नागरिकों को अनेक मौलिक अधिकार प्रदान किए। वर्तमान समय में मानव अधिकार केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पर्यावरण, सूचना और डिजिटल निजता जैसे अधिकार भी इसके महत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं।

मानव अधिकार की अवधारणा

मानव अधिकार ऐसे सार्वभौमिक अधिकार हैं जो जाति, धर्म, लिंग, भाषा, राष्ट्रीयता या किसी अन्य आधार पर भेदभाव किए बिना प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होते हैं। ये अधिकार व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा करते हैं।

मानव अधिकारों के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

1. जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार।
2. समानता का अधिकार।
3. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
4. धर्म की स्वतंत्रता।
5. शिक्षा का अधिकार।
6. कार्य एवं सम्मानजनक जीवनयापन का अधिकार।
7. स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुरक्षा का अधिकार।
8. शोषण से मुक्ति का अधिकार।
9. निजता एवं सूचना का अधिकार।
10. स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता और अविभाज्यता इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। कोई भी व्यक्ति इन अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान और मानव अधिकार

भारतीय संविधान मानव अधिकारों की सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज है। संविधान के भाग-3 में वर्णित मौलिक अधिकार नागरिकों को व्यापक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)

यह अधिकार सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता तथा कानून के समान संरक्षण की गारंटी देता है। जाति, धर्म, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध किया गया है।

2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

इसके अंतर्गत अभिव्यक्ति, विचार, भाषण, संगठन, आवागमन और व्यवसाय की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। यह लोकतंत्र की आधारशिला है।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

मानव तस्करी, बंधुआ मजदूरी तथा बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाया गया है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

प्रत्येक नागरिक को अपनी पसंद के धर्म का पालन, प्रचार और प्रसार करने की स्वतंत्रता प्राप्त है।

5. सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30)

अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, संस्कृति और शैक्षिक संस्थानों की रक्षा एवं संचालन का अधिकार दिया गया है।

6. संवैधानिक उपचार का अधिकार (अनुच्छेद 32)

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे संविधान की 'आत्मा' कहा था। इसके माध्यम से नागरिक अपने अधिकारों के उल्लंघन पर न्यायालय की शरण ले सकते हैं।

भारत में मानव अधिकारों की वर्तमान दशा

भारत में मानव अधिकारों की स्थिति मिश्रित स्वरूप प्रस्तुत करती है। एक ओर अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, वहीं दूसरी ओर अनेक गंभीर चुनौतियाँ भी बनी हुई हैं।

1. शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के माध्यम से 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित की गई। विद्यालयों में नामांकन दर में वृद्धि हुई है तथा साक्षरता स्तर में सुधार हुआ है।

2. महिला अधिकारों में सुधार

महिलाओं के संरक्षण हेतु घरेलू हिंसा अधिनियम, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न निवारण अधिनियम, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ अभियान तथा महिला आरक्षण से जुड़े प्रयास महत्वपूर्ण रहे हैं। महिलाओं की शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी और आर्थिक सशक्तिकरण में वृद्धि हुई है।

3. अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के अधिकार

दलितों और आदिवासियों के संरक्षण हेतु विशेष कानून बनाए गए हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम सामाजिक न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

4. सूचना का अधिकार

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 ने शासन में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा दिया है। इससे नागरिकों की सहभागिता बढ़ी है।

5. न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका

भारतीय न्यायपालिका ने जनहित याचिका (PIL) के माध्यम से मानव अधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। न्यायालयों ने पर्यावरण संरक्षण, महिला अधिकार, कैदियों के अधिकार तथा निजता के अधिकार जैसे विषयों पर महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं।

मानव अधिकारों के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

यद्यपि भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी अनेक चुनौतियाँ मानव अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति में बाधक हैं।

1. जातिगत भेदभाव

संवैधानिक प्रतिबंधों के बावजूद जाति आधारित भेदभाव और हिंसा की घटनाएँ अभी भी सामने आती हैं। दलितों और वंचित वर्गों के विरुद्ध अत्याचार मानव अधिकारों के लिए गंभीर चुनौती है।

2. लैंगिक असमानता

महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा, दहेज, यौन उत्पीड़न, बाल विवाह तथा लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ अभी भी व्यापक रूप से मौजूद हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है।

3. बाल अधिकारों का उल्लंघन

बाल श्रम, बाल विवाह, बाल तस्करी तथा बाल शोषण की घटनाएँ बच्चों के अधिकारों के लिए गंभीर खतरा हैं। आर्थिक विषमता इन समस्याओं को और बढ़ाती है।

4. मानव तस्करी

मानव तस्करी महिलाओं और बच्चों के अधिकारों पर सबसे गंभीर आघातों में से एक है। गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा इसके प्रमुख कारण हैं।

5. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न

लोकतांत्रिक व्यवस्था में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अत्यंत महत्वपूर्ण है। समय-समय पर मीडिया, पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से संबंधित मुद्दे मानव अधिकार विमर्श का विषय बनते रहे हैं।

6. हिरासत और पुलिस अत्याचार

हिरासत में मृत्यु, पुलिस अत्याचार तथा न्यायिक प्रक्रिया में विलंब जैसी समस्याएँ मानव अधिकारों के संरक्षण को प्रभावित करती हैं।

7. डिजिटल निजता का संकट

डिजिटल युग में डेटा सुरक्षा और निजता का अधिकार नई चुनौती के रूप में उभरा है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग ने व्यक्तिगत सूचनाओं की सुरक्षा को महत्वपूर्ण मुद्दा बना दिया है।

8. पर्यावरणीय अधिकार

प्रदूषण, जल संकट, वन विनाश तथा जलवायु परिवर्तन का प्रभाव मानव जीवन और स्वास्थ्य पर पड़ता है। स्वच्छ पर्यावरण को अब मानव अधिकार के रूप में देखा जाने लगा है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की भूमिका

भारत सरकार ने 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) की स्थापना की। इसका उद्देश्य मानव अधिकारों की रक्षा और संवर्धन करना है।

आयोग के प्रमुख कार्य हैं–

- मानव अधिकार उल्लंघनों की जांच।
- सरकार को सुझाव देना।
- मानव अधिकार शिक्षा को बढ़ावा देना।
- जेलों एवं सुधार गृहों का निरीक्षण।
- मानव अधिकार संबंधी अनुसंधान को प्रोत्साहन।

यद्यपि आयोग ने कई महत्वपूर्ण मामलों में हस्तक्षेप किया है, फिर भी इसकी सिफारिशों को बाध्यकारी न होने के कारण इसकी प्रभावशीलता पर प्रश्न उठते रहे हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की दिशा

21वीं सदी में मानव अधिकारों की अवधारणा निरंतर विस्तृत हो रही है। भारत में मानव अधिकारों की दिशा निम्न बिंदुओं पर केंद्रित दिखाई देती है–

1. समावेशी विकास

विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचना चाहिए। सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम करना मानव अधिकारों की दृष्टि से आवश्यक है।

2. डिजिटल अधिकारों का संरक्षण

डिजिटल डेटा की सुरक्षा, साइबर अपराधों की रोकथाम और निजता के अधिकार का संरक्षण भविष्य की प्रमुख आवश्यकता है।

3. लैंगिक न्याय

महिलाओं, ट्रांसजेंडर समुदाय तथा अन्य लैंगिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को तृतीय लिंग के रूप में मान्यता देना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

4. पर्यावरणीय न्याय

स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और स्वस्थ पर्यावरण को मानव अधिकारों के रूप में स्थापित करने की दिशा में प्रयास बढ़ रहे हैं।

5. मानव अधिकार शिक्षा

विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा समाज में मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। जागरूक नागरिक ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकते हैं।

6. तकनीक और न्याय

ई-गवर्नेंस, डिजिटल न्यायालय तथा ऑनलाइन शिकायत निवारण प्रणाली मानव अधिकारों तक पहुँच को अधिक प्रभावी बना सकती है।

सुझाव

भारत में मानव अधिकारों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं–

1. मानव अधिकार शिक्षा को सभी स्तरों पर अनिवार्य बनाया जाए।
2. कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन पर विशेष ध्यान दिया जाए।
3. पुलिस एवं प्रशासनिक सुधारों को गति दी जाए।
4. महिलाओं और बच्चों की सुरक्षा के लिए कठोर कदम उठाए जाएँ।
5. सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को कम करने हेतु समावेशी नीतियाँ अपनाई जाएँ।
6. डिजिटल निजता और डेटा सुरक्षा संबंधी कानूनों को प्रभावी बनाया जाए।
7. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को अधिक शक्तियाँ प्रदान की जाएँ।
8. नागरिक समाज और गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी बढ़ाई जाए।

निष्कर्ष

मानव अधिकार किसी भी लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला हैं। भारत ने संविधान, न्यायपालिका, विधायी उपायों तथा विभिन्न संस्थागत व्यवस्थाओं के माध्यम से मानव अधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। शिक्षा, महिला सशक्तिकरण, सूचना के अधिकार तथा सामाजिक न्याय के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इसके बावजूद जातीय भेदभाव, लैंगिक हिंसा, बाल शोषण, मानव तस्करी, पुलिस अत्याचार और डिजिटल निजता जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की दिशा केवल अधिकार प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि उन्हें प्रभावी रूप से लागू करने और प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने की है। एक समावेशी, न्यायपूर्ण और संवेदनशील समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है कि राज्य, न्यायपालिका, नागरिक समाज तथा नागरिक स्वयं मानव अधिकारों के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्ध रहें। तभी संविधान में निहित समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व के आदर्श वास्तविक रूप से साकार हो सकेंगे।

संदर्भ सूची

1. भारतीय संविधान।
2. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993।
3. संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948।

4. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्टें।
5. बसु, डी.डी. – भारतीय संविधान का परिचय।
6. अग्रवाल, एच.ओ.–मानव अधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि।
7. भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय के प्रकाशन।
8. विभिन्न शोध पत्रिकाएँ एवं मानव अधिकार संबंधी अध्ययन रिपोर्टें।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

वर्तमान में राजस्थान में सीमेंट उद्योग के पर्यावरणीय दृष्टि से प्रभाव

हेमा राम जाट
पिता का नाम - श्रवण राम
पता - गांव नराधणा तहसील जायल जिला नागौर

प्रस्तावना - वर्तमान समय में राजस्थान भारत का सबसे बड़ा सीमेंट उत्पादक राज्य है। राज्य में चूना पत्थर (Limestone) के विशाल भंडार होने के कारण यहाँ अनेक बड़े और आधुनिक सीमेंट उद्योग स्थापित हैं। चित्तौड़गढ़, नागौर, पाली, जैसलमेर, कोटा, बूंदी, सवाई माधोपुर, उदयपुर और झालावाड़ जैसे जिलों में अनेक सीमेंट संयंत्र कार्यरत हैं। सीमेंट उद्योग राज्य के औद्योगिक विकास, रोजगार सृजन और आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान देता है। किंतु इसके साथ-साथ यह पर्यावरण पर भी अनेक प्रतिकूल प्रभाव डालता है। वर्तमान में बढ़ते औद्योगीकरण और निर्माण कार्यों के कारण सीमेंट उद्योग का विस्तार हो रहा है, जिससे पर्यावरण संरक्षण की चुनौती भी बढ़ती जा रही है।

राजस्थान में सीमेंट उद्योग की वर्तमान स्थिति - राजस्थान में उच्च गुणवत्ता वाले चूना पत्थर के विशाल भंडार उपलब्ध हैं, जो सीमेंट उद्योग का मुख्य कच्चा माल है। इसी कारण राज्य में देश की कई प्रमुख सीमेंट कंपनियों के संयंत्र स्थापित हैं। वर्तमान में राज्य से देश के विभिन्न भागों में बड़ी मात्रा में सीमेंट की आपूर्ति की जाती है। आधुनिक तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन क्षमता बढ़ी है, लेकिन इसके साथ प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव भी बढ़ा है।

सीमेंट उद्योग के पर्यावरणीय प्रभाव

1. वायु प्रदूषण - सीमेंट निर्माण के दौरान बड़ी मात्रा में धूल, कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा सल्फर डाइऑक्साइड जैसी गैसें निकलती हैं। इनसे वायु प्रदूषण बढ़ता है, जिससे श्वसन संबंधी रोग, अस्थमा और एलर्जी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

2. जल प्रदूषण - उद्योगों द्वारा भूजल का अधिक उपयोग किया जाता है, जिससे जल स्तर में गिरावट आती है। यदि अपशिष्ट जल का उचित उपचार न किया जाए तो आसपास के जल स्रोत भी प्रदूषित हो सकते हैं।

3. भूमि प्रदूषण - चूना पत्थर के खनन से भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत नष्ट होती है। खनन के कारण प्राकृतिक भू-आकृतियाँ बदल जाती हैं और कई स्थानों पर कृषि योग्य भूमि प्रभावित होती है।

4. ध्वनि प्रदूषण - खनन कार्य, ब्लास्टिंग तथा भारी मशीनों के संचालन से अत्यधिक शोर उत्पन्न होता है। इससे आसपास रहने वाले लोगों तथा वन्यजीवों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

5. जैव विविधता पर प्रभाव - खनन एवं उद्योगों के विस्तार से वनस्पति और वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास नष्ट होते हैं। इससे जैव विविधता में कमी आती है तथा पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होता है।

सीमेंट उद्योग के सकारात्मक प्रभाव - सीमेंट उद्योग केवल पर्यावरणीय चुनौतियाँ ही नहीं लाता, बल्कि इसके

अनेक सकारात्मक प्रभाव भी हैं–

- स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर मिलते हैं।
- राज्य की आय और औद्योगिक विकास में वृद्धि होती है।
- सड़क, बिजली और परिवहन जैसी आधारभूत सुविधाओं का विकास होता है।
- निर्माण क्षेत्र को आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध होता है।
  स्थानीय व्यापार और छोटे उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है।

पर्यावरण संरक्षण के उपाय - सीमेंट उद्योग के पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं–

- आधुनिक प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों का उपयोग।
- कारखानों के आसपास व्यापक वृक्षारोपण (ग्रीन बेल्ट)।
- धूल नियंत्रण के लिए नियमित जल छिड़काव।
- खनन के बाद भूमि का पुनर्वास और हरित विकास।
- वर्षा जल संचयन एवं भूजल संरक्षण।
- स्वच्छ ऊर्जा और वैकल्पिक ईंधन का उपयोग।
- पर्यावरणीय मानकों का कड़ाई से पालन तथा नियमित निरीक्षण।

वर्तमान चुनौतियाँ - वर्तमान समय में राजस्थान में बढ़ते औद्योगीकरण, जलवायु परिवर्तन, सीमित जल संसाधनों तथा खनन गतिविधियों के कारण पर्यावरण संरक्षण एक बड़ी चुनौती बन गया है। इसलिए उद्योगों को आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरणीय उत्तरदायित्व भी निभाना आवश्यक है।

निष्कर्ष

वर्तमान में राजस्थान का सीमेंट उद्योग राज्य की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। यह उद्योग रोजगार, औद्योगिक विकास और आधारभूत संरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूसरी ओर, इससे वायु, जल, भूमि तथा जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ते हैं। इसलिए सतत विकास की भावना के साथ आधुनिक तकनीकों, प्रदूषण नियंत्रण उपायों और पर्यावरण संरक्षण की नीतियों को अपनाना आवश्यक है। औद्योगिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करके ही राजस्थान का समग्र एवं टिकाऊ विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

पर्यावरण इतिहास प्रकृति और मानव के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन

आकाश गुप्ता
दिल्ली विश्वविद्यालय

अकाल कभी भी अन्य कारणों से उत्पन्न नहीं हुआ है बल्कि यह सरकार के अनुचित साधनों द्वारा और असुविधाजनक उपायों से उत्पन्न होता है–

(एडम स्मिथ, द वेल्थ ऑफ नेशंस)

जैसे कि उपरोक्त लिखित स्मिथ के कथन से भी इस तथ्य को समझा जा सकता है, कि प्राकृतिक आपदाएं इतनी घातक नहीं होती जितना कि मानवीय व्यवहार द्वारा इन्हें बना दिया जाता है। प्रकृति और मानव पारस्परिक रूप से एक-दूसरे पर निर्भर हैं तथा इनके कार्य भी एक दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जिसको हम विभिन्न प्रकरणों के द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं।

सूखे की समस्या भारत में स्थानिक थी, क्योंकि भारतीय कृषि अधिकतर मानसून पर निर्भर करती है। इसलिए मॉनसून की विफलता के वर्षों में भारत में कहीं-कहीं सूखे की समस्या का सामना लोगों को करना पड़ जाता था, परंतु 1876 से 1877 का सूखा काफी गंभीर था जैसे कि, एल नीनो के प्रभाव से भारतीय मानसून प्रभावित हुआ और उस समय वर्षा नहीं हुई, फसलें बर्बाद हुई और ब्रिटिश अधिकारियों ने अनाज की कीमतों पर नियंत्रण लगाने से मना कर दिया। अनाज की कमी ने पूरे देश को झुलसा दिया था।

एक ब्रिटिश अधिकारी ने मेरठ की अपनी रिपोर्ट में बताया कि व्यक्तियों ने अपना सभी कुछ जो भी उनके पास था। धन, जेवर, कपड़े, यहां तक कि अपनी पत्नियों के जेवरात भी बेच दिए या गिरवी रख दिए ताकि वह अनाज का आयात कर सकें। अनाज की कीमतों में इतनी वृद्धि हो गई कि गरीब व्यक्ति द्वारा उन्हें खरीदना लगभग असंभव हो गया। दक्कन में अनाज के लिए दंगे भड़क गए, बहुत से भूख से पीड़ित मजदूर दूसरे क्षेत्रों में पलायन कर गए। ऐसा नहीं था कि उस समय भारत में खाद्य पदार्थों की कमी रही हो बल्कि चावल और गेहूं का उत्पादन भारत में पिछले 3 वर्षों के औसत पर था। परंतु इस कमी का मुख्य कारण यह था, कि अनाज का पूरा अधिशेष ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा इंग्लैंड को निर्यात कर दिया गया था। भारतीय किसानों को खाने की तलाश में शहरों में पलायन करना पड़ा जिससे कई शरणार्थी मर गए तथा कुछ लोग खाने की तलाश करते हुए मर गए। यह वह समय था जब वायसराय लिटन ने दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया जोकि, कई हफ्तों तक चला तथा जिसमें 68000 अधिकारी और महाराजा शामिल हुए। एक ब्रिटिश जर्नलिस्ट ने अनुमान लगाया है कि इस दौरान लगभग 100000 भारतीय किसान भुखमरी के कारण मर गए।

वायसराय ने भूमि कर में छूट देने से इंकार कर दिया और किसी भी प्रकार की सहायता देने कभी कोई प्रयास नहीं किया। बल्कि बाजार की कीमतों में किसी भी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप का भी निषेध कर दिया गया। सन 1877-1878

में 3.20 लाख करोड़ किलोग्राम अनाज भारत से यूरोप को निर्यात किया गया ताकि ब्रिटेन में बढ़ते हुए अनाजों की कीमतों को स्थिर किया जा सके। जो की फसल की बर्बादी और खाने की कमी के कारण बढ़ गई थी।

एक बड़े पैमाने पर यदि देखा जाए, तो यह त्रासदी कोई प्राकृतिक आपदा नहीं थी। बल्कि यह मानव निर्मित विपत्ति थी, क्योंकि ब्रिटिश सरकार भारतीय किसानों को बचाना ही नहीं थी। अधिकारियों की नीतियों से यह साफ तौर पर जाहिर होता है कि वह भारतीय किसानों या मजदूरों के प्रति कोई सहानुभूति का भाव नहीं रखती थी। जब भूखे किसानों को रोजगार की तलाश में रेलवे और कैनाल निर्माण के कार्यों में लगाया जाता था। तो बदले में उनको दी जाने वाली अनाज की मात्रा इतनी कम थी कि वह पेट भर खाना नहीं खा सकते थे। इसके अतिरिक्त इस दौरान जिन बीमारियों के फैलने के कारण लोगों की मौतें हो रही थी उन बीमारियों को फैलने से सरकार की नीतियों द्वारा रोका जा सकता था। तथा राहत पूर्ण कार्यक्रम चलाए जा सकते थे। जैसा कि पहले के राजाओं द्वारा किया जाता था। परंतु इस प्रकार का कोई भी कार्य ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा नहीं किया गया।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण चीन से प्राप्त होता है जब 1877-1878 के एल नीनो प्रभाव के कारण उत्तरी चीन में 1875-1877 के दौरान लगातार 2 वर्षों तक वर्षा नहीं हुई जिस कारण सूखा पड़ा। जिससे अनाज की कीमतों में उछाल आया। तथा इस समय चीन में सर्दी के मौसम की शुरुआत हुई, जिससे इंधन की कीमतों में भी इजाफा हो गया। शुरुआत में लोगों ने अपने द्वारा बचा कर रखे गए कुछ अनाजों का इस्तेमाल किया। फिर धीरे-धीरे स्थिति बद से बदतर होती चली गई लोगों ने अनाज की भूसी, आलू के डंठल, बीज और पत्तों पर अपना जीवन निर्वाह करने की कोशिश की परंतु यह है काफी समय तक नहीं चल पाया। सर्दी से बचने के लिए जिन लोगों ने गड्ढों में अपने आप को छुपा लिया था जब वह मर गए तो लोगों ने उनकी जगह लेने में बहुत जल्दी दिखाई। अमीर और गरीब इस पीड़ा से समान रूप से प्रभावित थे। बहुत से लोगों ने भीख मांगने की शर्म में आत्महत्या कर ली।

भुखमरी का सबसे चरमोत्कर्ष रूप शानक्सी में देखने को मिला जब वेई घाटी में फसलें बर्बाद हो गई। ग्रैंड केनाल (grand canal) के बंद हो जाने की वजह से खाने के आयात पर प्रतिबंध लग गया। यातायात के साधनों की कमी की वजह से मंचूरिया से खाद्य आपूर्ति नहीं की जा सकी। मनुष्य का मांस गलियों में खुले तौर पर बेचा जाने लगा था। एक मिशनरी षतिमोथी रिचर्डष बताते हैं कि उनके पास एक ऐसी भी खबर सुनने में आई, जब लोगों ने बच्चों को उबालकर खाया और वह कहते हैं कि यह सोचकर ही शरीर डर से कांप उठता है।

यदि इस प्रकरण को ध्यान से देखा जाए तो इसे देखकर भी यह कहा जा सकता है कि चीन में आई विपत्ति भी मानव निर्मित थी जैसा कि फागन बताते हैं की किंग राज्य के दौरान भी सूखे जैसी समस्याएं उभर कर सामने आई थी। परंतु उस समय इन पर तुरंत नियंत्रण पा लिया गया क्योंकि राज्य को अपने निवासियों की चिंता थी। तथा उनके पास इस प्रकार की नीतियां थी, जिससे कि प्राकृतिक आपदाओं से तुरंत निपटा जा सके। राज्य खाद्यान्न की वस्तुओं की कीमत कभी भी बढ़ने नहीं देता था। पदार्थों की चोरी करने वालों को सजा दी जाती थी। खाद्य पदार्थों पर नियंत्रण रखा जाता था। अनाज के भंडारण बनाए गए थे आदि। इसलिए पहले की सरकार द्वारा इन विपत्तियों का सामना आसानी से कर लिया गया जैसे कि 'फेंग गुआनचेंग' ने पीड़ितों को तुरंत राहत देने के लिए हवाई में सूप किचन की स्थापना की थी तथा भविष्य में ऐसी आपदाओं से बचने के लिए एक नियमावली तैयार की। तो यह सभी नीतियां बताती हैं की प्राकृतिक आपदाएं घातक हो सकती है परंतु वह त्रासदी का रूप तब धारण करती हैं जब मानव उनका सही रूप से उपचार नहीं करता।

इस एल नीनो का एक अन्य प्रभाव उत्तर पूर्वी ब्राजील के सेर्टो में देखने को मिलता है जहां का पर्यावरण परिदृश्य काफी विरोधाभासी है यहां एल नीनो के प्रभाव ने गंभीर सूखे की समस्या को पैदा किया। हालांकि यहां बारिश काफी होने की वजह से क्षेत्र हमेशा हरा भरा रहता है, लेकिन ENSO के सूखे ने सेर्टो को एक जलता रेगिस्तान बना दिया। क्योंकि उत्तर पूर्वी हवाओं ने जमीन से सारी नमी को सोख लिया था। सूर्य की सीधी किरणें क्षेत्र पर पड़ रही थी। इसी वजह से किआरा (ceara) में 1877 में किसान अपनी जनवरी और मार्च की दो फसलें खो चुके थे। और वह पूरी तरीके से सूखे से बचने के लिए

रहे इसी वर्षा पर निर्भर थे। परंतु वर्षा की विफलता के बाद लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ा। आधी जनसंख्या भूख और चेचक जैसी खतरनाक बीमारी की वजह से खत्म हो गई। अत्यधिक गमी ने मनुष्य और जानवरों दोनों को झुलसा दिया था। लोग मरे हुए मवेशियों को खाने के लिए मजबूर थे। यहां तक कि अमीर व्यक्ति भी दासो के बदले अनाज खरीदने को मजबूर हो गए तथा शहरों की ओर पलायन कर गए। गरीबों ने विषैली घासो को खाना शुरू किया, जिससे जल्दी ही लोगों को अंधेपन का शिकार होना पड़ा। बेरी-बेरी बीमारी शरणार्थियों के कैंप में घर कर गई। जुलाई-अगस्त के दौरान लाशों का सड़कों पर ढेर लग गया। यह बात साफ तौर पर समझ आ चुकी थी कि बड़े पैमाने पर अनाज का आयात ही किआरा के किसानों को बचा सकता था। अधिकारियों ने पीड़ितों के लिए खाद्यान्न की उपलब्धि कराने के बहुत प्रयास किए, परंतु चारागाह और पानी की कमी के कारण उनके यह सभी प्रयास असफल साबित हुए। इससे बचने के लिए उन्होंने पीड़ितों को पैसे भिजवाने की कोशिश की लेकिन अनाज की बढ़ती कीमतों के कारण यह पैसे स्थिति पर कोई खास प्रभाव नहीं डाल पाए। शरणार्थियों की समस्या धीरे-धीरे बढ़ती चली गई और इससे निपटने के लिए ष्एंटोनियो डेकोस्टा पिंटाष् ने भुखमरी से निपटने की जिम्मेदारी स्थानीय अधिकारियों से छीन ली तथा एक सीमित खाद्य व्यवस्था को लागू करने का प्रयास किया। जिससे शायद ही कोई सफलता मिली होगी। शरणार्थियों को बेहतर स्थिति के लिए पर्नामब्यूको नामक स्थान पर स्थानांतरित किया गया। फोर्टेलेजा के एक फार्मासिस्ट 'रुडोल्फो थेफिलो' ने अपनी डायरी में लिखा है कि ष्राजधानी की सड़कों पर एक उदास परेड लगी रहती है, वह सच में एनिमेटेड कंकाल बन गए है, सड़कों से उड़ने वाली धूल से उनकी त्वचा काली पड़ गई है तथा उनकी हड्डियों से चिपक गई है, वह सड़क पर मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति से अपने हाथों से भीख माँगते हैं।

1878 की शुरुआत में ही 50000 लोग अकेले किआरा में मर गए थे तथा हजारों की संख्या में नोर्डेस्ट(nordeste) में मारे जा चुके थे। मार्च तक ना तो कोई बारिश थी और ना ही सरकार की तरफ से कोई सहायता किआरा कि कानून व्यवस्था पूरी तरीके से बर्बाद हो चुकी थी। सरकार दिवालिया हो चुकी थी। रास्तों पर चोर और डाकू का खतरा बढ़ता जा रहा था। तथा जिसको जो मिलता वह उसे खाने के लिए हमेशा तैयार रहता था। एक व्यापारी ने ष्स्मिथष् को बताया कि किसी शरणार्थी ने उससे पूछा वह अपनी दुकान के चूहे को मार सकता है ताकि वे उन्हें खा सके।

इस प्रकरण से भी इस और एक इशारा मिलता है कि किस प्रकार मानवीय अव्यवस्था के कारण कितने बड़े पैमाने पर जान माल की हानि उठानी पड़ सकती है। पूरे एक दशक बाद किआरा में हालात सामान्य स्थिति तक पहुंच पाए। परंतु इसके बावजूद भी अत्यधिक मृत्यु दर के कारण कृषि करने के लिए किसान पर्याप्त मात्रा में मौजूद नहीं थे। तथा जो लोग त्रासदी से बच गए थे जब उनके पास खाने के लिए अनाज भरपूर मात्रा में मौजूद हुआ तब भी लोग पेचिश जैसी बीमारियों का शिकार हो गए।

एक अन्य प्रकरण जो कि भारतीय राज्य बिहार के संदर्भ में है, बताता है कि किस प्रकार बिहार में बाढ़ और सूखे ने अकाल का रूप धारण कर लिया और लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। बिहार का अधिकतर भाग बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र में आता है। बिहार में तीन बहुत ही गंभीर अकाल पड़े एक 1670-1671,1770 और 1873-1874। इन सब में सबसे गंभीर अकाल 1770 में पढ़ा जिसने पिछले सभी मौत की संख्या में भी वृद्धि कर दी इस समय ज्यादातर मौतों का कारण भुखमरी और खाने की कमी थी। परंतु विभिन्न विद्वानों द्वारा इसके कारणों की व्याख्या अलग अलग तरीके से की गई जैसे कि, ष्डेविड अर्नाल्डष् का तर्क है चेचक और हैजा जैसी बीमारियों का फैलना भी मृत्यु का कारण था। जबकि 'डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर' ने अपने रिकॉर्ड में इस बात को बताया है कि 1770 में बिहार में मौतों का मुख्य कारण चेचक और हैजा नहीं थे। बल्कि भूख से पीड़ित लोगों का गर्मियों में खाने की तलाश में पलायन करना था। परंतु इन मौतों के पीछे का मुख्य कारण ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अपनाई गई नीतियां थी, क्योंकि यह मुख्य रूप से व्यापारिक निकाय था। इसका पूर्ण ध्यान लाभ अर्जित करना था। जो कि आंकड़ों से भी प्रदर्शित होता है कि 1765 में कंपनी का लाभ रु. 1500000 था जो की 1777 में बढ़कर रु. 3000000 हो गया।

'विनीता दामोदरन' का कथन है कि सरकार न केवल व्यापारियों को प्रतिबंधित मूल्य पर अनाज बेचने के लिए विवश

करती थी, बल्कि ऐसे इलाकों से भी जहां सूखे की समस्या होती थी अनाजों का आयात किया जाता था।

कंपनी ने लोगों को बचाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। उनको सहायता देने के लिए कोई उचित कदम नहीं उठाए, बल्कि वार्षिक कर की रिपोर्टों से पता चलता है कि 1770-1771 के दौरान औसत रूप से बिहार से प्राप्त कर में वृद्धि हुई थी जो कि औसतन लगभग 45,54, 967 थी। अर्थात इन सभी प्रकरणों के आधार पर यह समझा जा सकता है कि मानव और प्रकृति एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। तथा इन दोनों के कार्य एक दूसरे को पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। दोनों ही पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। इन संबंधों में संकट पूर्ण मोड़ तब उत्पन्न होते हैं जब सत्ता अपनी शक्तियों का अतिक्रमण करने लगती है तथा पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने लगती है, इसलिए इन अतिक्रमण को रोकना चाहिए। तथा इस प्रकार की आपदाओं से बचने के लिए रोकथाम के उपाय करने चाहिए। सशक्त नीतियां बनानी चाहिए और इतिहास से समझ ले कर उन नीतियों का क्रियान्वयन उचित रूप से करना चाहिए।

संदर्भ

1. Brain fagan, floods, famines, and emperors, el nino and the fate of civilizations, 221.
2. Ibid, p. 227
3. Ibid, p. ,228
4. Ibid, p. 229
5. Ibid, p. 234-235.
6. Ibid, p. 232.
7. Vipul singh, speaking rivers, environmental history of mid-ganga flood country, delhi books, 2018.p,109.
8. Ibid, p. 112.
9. Ibid, p. 113.
10. Ibid, p. 113.
11. Ibid, p. 114.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

अनुसंधान एवं सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्यिक पत्रिका का महत्त्व

डॉ. दीपशिखा
बसंतपुरा मुहल्ला,
नज़दीक अमरदीप अस्पताल, नाभा,
ज़िला पटियाला, पिन : 147201

अनेकानेक व्यापक अर्थों, विषयों एवं परिस्थितियों की यथार्थ अभिव्यंजक पत्रकारिता शब्द आधुनिक युग में जिसे ए. आई का युग कहा जा रहा है, विशिष्ट चर्चा का विषय है। पत्रकारिता ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, राजनीति, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी विषयों एवं क्षेत्रों से सम्बन्धित जानकारी को, जन-सामान्य तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम रही है, और रहेगी। पत्रकारिता का उद्भव तभी से माना जा सकता है, जब से मानव सभ्यता प्रारम्भ हुई। मानव की प्रवृत्ति प्रारम्भ से जी जिज्ञासु एवं वैचारिक रही है। प्राचीन समय कह सकते हैं आदिम काल से ही मानव किसी न किसी संकेत या ध्वनि के माध्यम से सूचना दूसरे तक प्रेषित एवं प्राप्त करता था। धीरे-धीरे विकसित होती सभ्यता के साथ ही ताड़-पत्रों आदि पर हस्तलिखित संदेश प्रेषित किये जाने लगे। इस प्रकार अपने प्रारम्भिक काल से लेकर आधुनिक युग तक यह विभिन्न माध्यमों यथा- हस्तलिखित सूचना हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले स्रोत, समाचार पत्र, सोशल मीडिया, टी.वी, रेडियो, वेब-पत्रकारिता के माध्यम से जन-सामान्य से जुड़ी रही है, और रहेगी।

निस्सन्देह संचार एवं सूचना क्रान्ति के अतिरिक्त पत्रकारिता का सर्वाधिक महत्त्व सांस्कृतिक मूल्यों एवं सिद्धान्तों से जनसामान्य को जोड़ना और उनके संरक्षण एवं विकास हेतु प्रेरित करना है क्योंकि पत्रकारिता के माध्यम से ही हमें हमारी परम्पराओं, संस्कृति, जीवन जीने की कला, जीवन मूल्यों, सामाजिक सरोकारों तथा सर्वजनकल्याण से सम्बन्धित विषयों की व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। वर्तमान युग में तकनीक एवं प्रोद्यौगिकी के विकास ने पत्रकारिता की उपयोगिता को जहां बहुआयामी एवं असीम बना दिया है वहीं वैश्वीकरण के दौर में पत्रकारिता सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण और सकारात्मक भूमिका निभा रही है, और निभाती रहेगी, क्योंकि कोई भी पत्रिका चाहे वह किसी भी भाषा की हो, किसी भी राज्य, नगर, शहर से सम्बन्धित हो, वहां के तत्कालीन एवं वर्तमान सांस्कृतिक मूल्यों एवं सभ्यता की यथार्थ, विस्तृत एवं सशक्त जानकारी प्रचलित पत्रिकाओं के माध्यम से प्राप्त होती रहती है जिससे कि सामान्य पाठक एवं शोधार्थी तत्कालीन परिस्थितियों आदि की जानकारी तो प्राप्त करता ही है साथ ही उसे शोध हेतु पर्याप्त सामग्री भी पत्रिकाओं के माध्यम से प्राप्त होती रहती है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो पत्रिकारिता के माध्यम से हमें अलग-अलग संस्कृतियों एवं जीवन मूल्यों की जानकारी प्राप्त होती है, परिणामतः समाज में प्रत्येक संस्कृति एवं मूल्यों के प्रति आदर-सम्मान, सहिष्णुता, पारस्परिक समझ की भावना उदित होती है, जो किसी भी समाज में समन्वय एवं समरसता के वातावरण को पैदा करने का मूलाधार है। इस मूलाधार को प्रतिष्ठित करने का दायित्व साहित्यिक पत्रिकाओं ने ले रखा है। डॉ. अर्जुन तिवारी का वक्तव्य, ''समय

और समाज के सन्दर्भ में सजग रहकर नागरिकों में दायित्व बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं। गीता में जगह-जगह पर 'शुभदृष्टि' का प्रयोग है। यह 'शुभदृष्टि' ही पत्रकारिता है जिसमें गुणों को परखना तथा मंगलकारी तत्त्वों को प्रकाश में लाना सम्मिलित है। गांधी जी तो इसमें 'समदृष्टि' को महत्त्व देते थे। समाजहित में सम्यक् प्रकाशन को पत्रकारिता कहा जा सकता है। असत्य, अशिव और असुन्दर पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की शंखध्वनि ही पत्रकारिता है।''[1] पत्रिकारिता की प्रासंगिकता एवं अमूल्य सांस्कृतिक योगदान का अभिव्यंजक है।

साहित्यिक पत्रिका में समाज से सम्बन्धित विभिन्न विषयों का वर्णन प्राप्त होता है क्योंकि साहित्य में मानव-जीवन, उससे सम्बन्धित समस्याओं, विडम्बनाओं के साथ-साथ मानवीय जीवन के उदात्त पक्ष यथा- जीवन मूल्यों, संस्कारों, परम्पराओं आदि का भी सशक्त चित्रण होता है अर्थात् साहित्य में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष का वर्णन किया जाता है। यह समाज में विकसित हो रहे नवीन मूल्यों, प्राचीन मूल्यों के ह्रास तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों को समाज के समक्ष रखते हुए उन्हें सकारात्मक बदलाव, लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास हेतु प्रोत्साहित करती है। साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों सम्बन्धित सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध करवाने का भी महत्त्वपूर्ण स्रोत बनती है। इसी सन्दर्भ में बर्नाड शॉ का कथन, ''ऐसा कुछ भी साहित्य के रूप में बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता जो पत्रकारिता में भी न हो। जो व्यक्ति अपने और अपने समय के बारे में लिखता है, केवल वही सचमुच समस्त मनुष्यता और सभी युगों के लिए लिख सकता है।'' पत्रकारिता का साहित्यिक महत्त्व न मानने वालों को लक्ष्य करके आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि ''हिन्दी दैनिकों ने जहां देश को उद्‌बुद्ध करने में अथक प्रयास किया है वहां जनता में साहित्यिक चेतना जागने का श्रेय भी पाया है।'' भाषा का आदर्श रूप स्थिर करने, लोकरुचि का परिष्कार करने तथा साहित्य के अभावों को दूर करने में पत्रों का महत्त्वपूर्ण अवदान है। जैसा कि शॉ ने कहा है, शाश्वत साहित्य के लिए पत्रकारिता अवरोध नहीं बल्कि सहायक आधार है।... इस प्रकार पत्रकारिता के साहित्यिक अनुशीलन का अपेक्षा-औचित्य भी स्पष्ट हो जाता है।''[2]

निस्सन्देह साहित्यिक संवेदनशीलता, कलात्मक विचारों की गहनता, सामाजिक जागरूकता एवं चेतना जागृत करना साहित्यिक पत्रिका का मूल धर्म होता है। युग निर्माण एवं युग परिवर्तन के प्रति जागरूक साहित्यिक पत्रकारिता को हम जनता की आवाज़, राष्ट्रीयता का बिम्ब कह सकते हैं ''क्योंकि पत्रिकारिता का पावन लक्ष्य राष्ट्र के कोने-कोने में जागरण, नवस्फूर्ति और नव-निर्माण के मंत्र को फूंकना है। यह एक रचनाशील विधा है जिससे समाज का आमूल-चूल परिवर्तन संभव है।''[3] इनकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि किसी भी विषय से सम्बन्धित अनुसंधान हेतु पथ को निर्धारित करने, शोध-प्रक्रिया, शोध-समस्याओं तथा शोध-पद्धति आदि को जानने एवं समझने का सशक्त माध्यम साहित्यिक पत्रिका भी होती है।

समझना होगा कि सार्थक अनुसंधान या शोध तभी सम्भव है, जब उसकी एक विशिष्ट पद्धति के साथ-साथ शोध सम्बन्धी सभी नियमों को सम्पूर्ण आधार बनाकर कार्य किया जाता है। अतः अनुसंधान हेतु जो अनुशासन, रीति, पद्धति या मार्ग निर्धारित किया जाता है, उसे अनुसंधान-प्रविधि कहा जाता है। शोध प्रविधि के अभाव में शोध में क्रम लेकर आना असम्भव होता है। शोध-परियोजना को विशिष्टता एवं मौलिकता प्रदान करने में शोध प्रविधि का अनुपालन अनिवार्य होता है। इसके अभाव में शोध कार्य के साथ सही न्याय कर पाना कठिन होता है। विषय के अनुरूप शोधार्थी को पता होना चाहिए कि मुझे किस अनुसंधान प्रविधि या पद्धति की आवश्यकता है, सर्वेक्षण, साक्षात्कार, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, विश्लेषण, संश्लेषण, मूल्यांकन, तुलनात्मक आदि किसी भी प्रविधि का आधार लेकर ही हम अपने विषय से सम्बन्धित तत्त्वों का विवेचन, उसकी व्याख्या सुव्यवस्थित एवं मौलिक रूप में कर सकते हैं। शोध प्रविधि, शोध-क्षेत्र द्वारा ही हम अपने शोधकार्य के विषय में सही निर्णय कर पाते हैं। साहित्यिक पत्रिका में जहां अलग-अलग साहित्यकारों, कवियों आदि के साहित्य की समीक्षा आदि से सम्बन्धित शोध-पत्र प्रकाशित होते हैं, वहीं किसी भी पत्रिका के विशेषांक में हमें इतिहास से सम्बन्धित साहित्य के किसी एक काल, किसी एक साहित्यकार या कवि आदि के साहित्य के सम्बन्धित सामग्री का शोधात्मक विश्लेषण, किसी महापुरुष एवं धर्म ग्रन्थ से सम्बन्धित शोध-पद्धतियों एवं सामाजिक सरोकारों को आधार बनाकर लिखे गए शोध-पत्र अध्ययन हेतु

उपलब्ध होते हैं। जो अनुसंधान हेतु एक सशक्त आलम्बन बनकर भावी शोध को एक उचित दिशा प्रदान करतें हैं। साहित्य से सम्बन्धित यथा- सरस्वती, नागरी प्रचारिणी, समकालीन भारतीय साहित्य, इंदु, रूपाभ, हंस, नये पत्ते, नयी कविता, साहित्य भारती, समकालीन भारतीय साहित्य, शोध-दिशा, शोध संचयन आदि अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ हैं और रही हैं। निस्सन्देह पत्रिकाओं में काव्य, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, संस्मरण, नाटक, आलोचना आदि किसी भी विधा एवं वाद से सम्बन्धित आलेखों का निरन्तर प्रकाषन अध्येताओं एवं शोधार्थियों की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान करने, उनका बौद्धिक विकास करने का सशक्त टूल सिद्ध होता है। दूसरे ऐतिहासिक स्थलों, संगीत, नृत्य आदि लोक-कलाओं, भारतीय परम्पराओं, सांस्कृतिक सभ्यता एवं मूल्यों से सम्बन्धित आलेख तथा शोध-पत्र सांस्कृतिक विरासत से तो परिचित करवाते ही हैं, संरक्षण हेतु जागरूक भी करते हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं का एक उल्लेखलनीय योगदान यह भी रहता है कि इनके माध्यम से ही अज्ञात साहित्यकारों के साथ रूबरू होने का अवसर भी मिलता है साथ ही श्रेश्ठ एवं मूल्यवान साहित्य की पहुँच भी पाठकों तक होती है। निसन्देह साहित्यिक पत्रिका किसी भी साहित्यकार को प्रतिश्ठित करने में अहम योगदान देती है। इस साहित्यिक प्रतिष्ठा में 'सरस्वती' पत्रिका के योगदान का उल्लेख करते हुए डॉ. रमा सिंह लिखती हैं, ''सरस्वती पत्रिका में उस युग में जिन साहित्य-सर्जकों की कविताएँ या गद्य रचनाएँ छपी वे आज भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बनाए हुए हैं। हाँ, इस बात से कुछ लोग अनभिज्ञ जरूर है कि जो रचनाएँ उन्हें अब पुस्तक रूप में उपलब्ध हो रही हैं, वे वस्तुतः पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही प्रकाश में आई थीं। सन् 1915 की सरस्वती में 'स्वर्गीय संगीत' शीर्षक से प्रकाशित कविता मैथिलीशरण गुप्त की थी। कुछ पंक्तियाँ उद्धरण हेतु प्रस्तुत हैं-''[4]

यहीं प्रेम है, द्रोह भी है यहीं
यहीं ज्ञान है, मोह भी है, यहीं
यहीं पुण्य है, पाप भी है यहीं
यहीं शान्ति हैं, ताप भी है यहीं,
कहो, क्या तुम्हें आज स्वीकार है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।

21 वीं शताब्दी में आज ए.आई विशिष्ट चर्चा का विषय बनता जा रहा है, जिसके माध्यम से प्रत्येक जानकारी चाहे वह किसी विधा, समाज, संस्कृति, धर्म आदि से सम्बन्धित हो, को व्यापक फलक पर उपलब्ध करवाने में उसकी भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इस जानकारी की प्रमाणिकता, सत्यता की जांच हमें स्वयं करनी होगी। तभी सकारात्मक परिणाम प्राप्त होंगे। दूसरे ऐसी परिस्थितियों में पत्रकारिता के सम्बन्ध में यह जानना अनिवार्य है कि किसी भी प्रकार की सूचना या विषय-वस्तु की जो मूल संवेदना है, भावना है, सत्यता एवं यथार्थ अभिव्यंजना है, उसे ए.आई किस स्तर तक महसूस कर पा रहा है, क्या उसकी मूल संवेदना को वह पकड़ पाया है। नहीं, ए.आई डाटा तो उपलब्ध करवा सकता है किन्तु मानवीय संवेदना एवं जीवन-मूल्यों की सषक्त एवं यथार्थ अभिव्यंजना तो साहित्य पठन और स्वयं किसी भी स्थिति को अनुभव करने के माध्यम से ही सम्भव है। हां इतना अवश्य है कि पत्रकारिता के सन्दर्भ में ए.आई का उपयोग एक ऐसे तकनीकी उपकरण के रूप में करना चाहिए जो उसे बाह्य रूप-आकार की दृष्टि से निखार सके अर्थात् भाषाई, व्याकरणिक त्रुटियों आदि को पकड़ सके किन्तु नैतिकता की दृष्टि से पत्रकारिता की सार्थकता तो विशय की मूल अन्तर्आत्मा की ध्वन्यात्मक एवं यथार्थ अभिव्यक्ति में है, जो कि गहन, नैतिक एवं ईमानदार पठन तथा लेखन पर ही निर्भर है। एक संपादक या लेखक को चाहिए कि वह पत्रकारिता की मूल आत्मा को जीवित रखते हुए ए.आई का उपयोग करे तभी पत्रकारिता के मूल उद्देश्य को जनसामान्य तक सम्प्रेशित किया जा सकता है।

परन्तु अध्येताओं पर ए.आई के बढ़ते प्रभाव के परिणामस्वरूप सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की स्थितियाँ हमारे समक्ष प्रस्तुत हैं। पत्रकारिता के प्रारम्भ से लेकर आज 21वीं सदी तक उसके स्वरूप में जहां नये-नये साधनों का समावेश हुआ है, वहीं वैश्वीकरण के प्रभाव स्वरूप उसके विषय-वस्तु एवं प्रस्तुति शैली में भी व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। आज

पियर रिव्यूड पत्रिका का प्रचलन है। आज अधिकतर पत्रिकाएं एक व्यवसाय का रूप भी ले चुकी हैं। एक सीमा तक यह सही भी है कि कोई पत्रकारिता का प्रारम्भ जहां सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति रहा, वहीं यह जीवनयापन का साधन भी रहा है। बेशक वह समाचार, टी.वी आदि किसी भी रूप में हो। परन्तु देय राशि की की सीमा इतनी ही होनी चाहिए कि देने वाले के लिए बोझ न हो तथा प्रकाशक भी प्रकाशित करने मे संकोच न करे। वर्तमान समय की ये त्रासदी कहें या मजबूरी कहीं-कहीं न पत्रिकाएँ आज ए.पी.आई स्कोर को पूरा करने और अधिक से अधिक पैसा कमाने का साधन मात्र रह गई हैं, जिस कारण किसी भी विषय से सम्बन्धित शोध-पत्र या आलेख मात्र तीन-चार पृष्ठों में मांगा जाता है। तो क्या तुलनात्मक, समीक्षात्मक, ऐतिहासिक आदि दृष्टि से लिखे गए शोध-पत्र को मात्र तीन-चार पृष्ठों में उपलब्ध करवाकर शोध हेतु सार्थक सामग्री प्रदान की जा सकती है? यह विचार-विमर्श का विषय है। अतः आवश्यकता है कि पत्रिका के दायित्व और भूमिका के अनुरूप ही उसका प्रचार-प्रसार होना चाहिए तथा पत्रिका केवल व्यवसाय मात्र नहीं होनी चाहिए, उसका मूल उद्देश्य भी शाश्वत रहना चाहिए तभी कोई पत्रिका स्तरीय पत्रिका के रूप में जानी जाती है। इस सन्दर्भ में प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संपादित 'ब्राह्मण' पत्र की यात्रा का उल्लेख यहां अपेक्षित है। ''प्रतापनारायण मिश्र स्वयं ही पत्रों का खर्च उठाते थे और संपादन भी स्वयं ही करते थे। ग्राहक बनाना और वितरण का प्रबन्ध करना भी इन्हीं का काम था। मिश्र जी ने स्वयं ये सारे काम किए। यह पत्र इन्होंने मार्च 1883 में कानपुर से निकाला। उस समय कानपुर के पूरे साहित्यिक परिवेश का इस पत्र में चित्रण मिलता है। मिश्र जी की पत्रकारिता का आदर्श धन अर्जित करना नहीं था। अपने इस पत्र के पहले अंक में मिश्र जी ने अपने इस उद्देश्य से परिचित करवाते हुए कहा था, ''हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है। फिर यदि निर्वाह मात्र भी होता रहेगा तो हम, चाहे जो हो, अपना वचन निबाहे जायेंगे।.... अरे भाई! हमने इस पत्र को अपने लाभ की गरज से नहीं निकाला। लै दे बराबर हो जाय, यही गनीमत है।'' इस पत्र का लक्ष्य था-राष्ट्रीय चेतना को जागृत करना, और हिन्दी साहित्य की सेवा करना।''[5] पत्रकारिता द्वारा की जा रही साहित्यिक सेवा के सन्दर्भ में कतिपय यू.जी.सी केअर लिस्ट पत्रिकाओं का जैसे भाषा, गवेषणा, भावक आदि का नाम विशेष रूप से वर्णनीय है, जो प्रकाशित शोध-पत्र एवं आलेखों के लिए लेखकों एवं शोधार्थियों को सम्मानित राशि प्रदान करते हुए उन्हें लेखन हेतु निरन्तर प्रोत्साहित भी करती हैं।

परन्तु ध्यातव्य रहे कि पत्रिका वही सार्थक एवं जीवन्त मानी जाती है जो समय के साथ चलती है। आज अधिकतर पत्रिकाओं में नवीन एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों से वर्णन के साथ-साथ प्राचीन जीवन मूल्यों की आवश्यकता एवं भारतीय ज्ञान सम्पदा की पुनःस्थापना पर विशेष ध्यान दिए जाने से सम्बन्धित चर्चा मिलती है, यह वर्तमान समय की मांग है, जिसे पूरा करने में पत्रकारिता विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से अपना दायित्व पूर्णतः निष्ठा से निभा रही है क्योंकि इसका मूल लक्ष्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' जैसे समत्वनाद के साथ जनसामान्य को सम्बद्ध करना और जीवन जीने की कला सिखाना है। इस प्रकार पत्रकारिता मूल्यों की निर्मात्री भी है और मानवीय संवेदना को व्यक्त करने वाली शक्ति भी है। ''क्योंकि समाचार-पत्रों आदि में केवल समाचार ही प्रकाशित नहीं होते अपितु मत व निर्णय भी प्रकाशित होते हैं।...भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को पत्रकारिता के द्वारा ही शक्ति मिली। पत्रकारिता ने ही देशवासियों के सुप्त स्वाभिमान को जागृत किया तथा उन्हें यह प्रेरणा दी कि स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता और एकता जैसे जीवन-मूल्य मानव के अस्तित्व को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं।''[6]

निष्कर्ष रूप में पत्रकारिता सामाजिक विसंगतियों यथा-अशिक्षा, साम्प्रदायिकता, धार्मिक संकीर्णता, पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव, अराजकता आदि कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार एवं सशक्त कुठाराघात करने के साथ-साथ देशभक्ति, सांस्कृतिक समरसता, सामाजिक समन्वय, बौद्धिक विकास एवं शोध को एक स्तरीय आयाम प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। परन्तु इसके लिए अनिवार्य है कि पत्रकारिता की ईमानदारी और विश्वसनीयता को कायम रखा जाए और उसके प्रभाव को समझते हुए जन सामान्य को निश्चित ही देश की, समाज की, साहित्य की प्रत्येक स्थिति, विषय आदि की यथार्थ जानकारी दी जाए, परन्तु साथ ही वह जानकारी विसंगतियों के शमन हेतु प्रोत्साहित करने वाली होनी चाहिए, नकारात्मक रूप में उतेजित करने वाली नहीं। पत्रिका में उपलब्ध प्रत्येक वक्तव्य शोध-पत्र, आलेख आदि में समाज आदि की यथार्थ

परिस्थितियों के साथ-साथ जनकल्याण की भावना का भी वर्णन होना चाहिए और ए.आई के उपयोग के माध्यम से इसे और भी तीव्रगामी एवं व्यापक बनाने का प्रयास करना चाहिए। मूलतः पत्रकारिता प्राचीन पीढ़ी को नये मूल्यों की तथा नई पीढ़ी को प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों से सम्बद्ध करने तथा दोनों में समन्वय बनाए रखने में तथा जनसामान्य को प्रेरित करने हेतु जीवंत भूमिका निभा रही है। निस्सन्देह साहित्यिक पत्रिका का किसी भी देशकाल, वातावरण की परिस्थितियों, उसके इतिहास एवं मूल्यों के वर्णन में दिया गया एवं दिया जा रहा योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा क्योंकि पत्रकारिता तत्कालीन एवं वर्तमान की परिस्थितियों, मूल्यों, परिवेश, वैचारिकता तथा समकालीन प्रचलित साहित्यिक विधा एवं मूल्यों का दर्पण, सांस्कृतिक प्रतिमानों की संस्थापक तथा अनुसंधान हेतु उचित मार्गदर्शिका है तो साथ ही सर्वधर्म सौहार्द की भावना को परिपुष्ट, प्रेरित करने का अजस्र स्रोत भी होती है पत्रकारिता अर्थात् साहित्यिक पत्रिका।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. अर्जुन तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008 पंचम संस्करण, पृ. 10
2. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1968, प्रस्ताविका से उद्धृत, पृ. 5
3. डॉ. अर्जुन तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008 पंचम संस्करण, पृ. 13
4. डॉ. रमा सिंह, साहित्यिक पत्रकारिता, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 1984, पृ. 23
5. वही, पृ. 19
6. डॉ. सुशीला जोशी, हिन्दी पत्रिकारिता विकास और विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृ. 9

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

DIGITAL FINANCIAL LITERACY AND INVESTMENT BEHAVIOUR OF GENERATION Z : A COMPREHENSIVE REVIEW

Dr. Atul Kumar
Assistant Professor
Department of Business Administration
Shri Ram College Muzaffarnagar, Uttar Pradesh (India)
M. 8126861795
E-mail Id- vermajiatul@gmail.com

Abstract

Digital financial literacy has become an essential competency in today's technology-driven financial environment. The rapid growth of digital payment systems, mobile banking, online investment platforms, and financial technology (FinTech) has transformed the way individuals manage and invest their financial resources. Generation Z, having grown up in the digital era, is among the most active users of these financial technologies. However, familiarity with digital tools does not necessarily guarantee sound financial knowledge or responsible investment behaviour. This study reviews the relationship between digital financial literacy and the investment behaviour of Generation Z using secondary data from scholarly articles, government reports, institutional publications, and other credible sources. The review highlights how financial knowledge, digital competence, risk perception, financial confidence, and technological awareness influence investment decisions among young adults. It also examines the role of FinTech, financial education, and digital inclusion in promoting informed and responsible investment practices. The findings suggest that higher levels of digital financial literacy improve investment planning, portfolio diversification, and long-term financial well-being, while inadequate literacy increases the risk of poor financial decisions, misinformation, behavioural biases, and digital fraud. The study emphasizes the importance of integrating digital financial education into educational institutions and public policy to strengthen the financial capability of young investors. The paper concludes that improving digital financial literacy is essential for enhancing financial inclusion, encouraging sustainable investment behaviour, and supporting long-term economic development.

Keywords: Digital Financial Literacy, Generation Z, Investment Behaviour, Financial Education, Digital Payments.

1. Introduction

The financial sector has undergone remarkable transformation due to rapid advancements in digital technology. The emergence of financial technology (FinTech), mobile banking, digital wallets, online payment systems, artificial intelligence, and digital investment platforms has changed the way individuals access and manage financial services. Financial transactions that previously required physical visits to banks or financial institutions can now be completed within seconds through smartphones and internet-based applications. As a result, digital financial literacy has become an essential life skill for individuals participating in the modern financial ecosystem.

Digital financial literacy refers to the ability to understand, evaluate, and effectively use digital financial products and services while making informed financial decisions. Unlike traditional financial literacy, which mainly focuses on budgeting, saving, borrowing, and investing, digital financial literacy combines financial knowledge with digital competence. It includes understanding online banking, digital payment systems, cybersecurity, investment applications, fraud prevention, and the ability to critically evaluate financial information available through digital platforms.

Generation Z, generally defined as individuals born between the mid-1990s and early 2010s, represents the first generation to grow up entirely in the digital age. Their daily lives are strongly influenced by smartphones, social media, cloud computing, artificial intelligence, and internet-based services. This technological exposure has encouraged widespread adoption of digital financial services such as Unified Payments Interface (UPI), mobile wallets, online banking, stock trading applications, cryptocurrency exchanges, and mutual fund investment platforms.

Although Generation Z demonstrates high levels of technological familiarity, digital proficiency alone does not guarantee sound financial decision-making. Many young investors enter financial markets with limited knowledge of investment principles, portfolio diversification, financial planning, taxation, and risk management. The growing influence of social media influencers, online discussion forums, investment blogs, and short-form digital content has further complicated investment decisions. While these platforms provide easy access to financial information, they also expose young investors to misinformation, speculative trading practices, and fraudulent investment schemes.

Digital investment platforms have significantly lowered barriers to market participation by reducing transaction costs and simplifying account opening procedures. Today, individuals can invest in stocks, mutual funds, exchange-traded funds (ETFs), government securities, and other financial products using mobile applications with relatively small amounts of capital. This increased accessibility has expanded financial inclusion and encouraged greater participation among first-time investors. However, without adequate digital financial literacy, increased accessibility may also lead to impulsive decision-making, excessive risk-taking, and poor long-term financial outcomes.

Investment behaviour refers to the process through which individuals allocate financial resources among different investment alternatives according to their financial goals, risk preferences, and available information. In today's digital economy, digital financial literacy has emerged as one of the most important factors influencing responsible investment behaviour.

Governments, financial institutions, educational organizations, and regulatory authorities across the world have recognized the importance of improving digital financial literacy. Despite these efforts, significant differences in digital financial literacy continue to exist among young adults, particularly

regarding investment knowledge, cybersecurity awareness, and the ability to evaluate online financial information critically.

Previous research consistently demonstrates a positive relationship between financial literacy and financial well-being. Individuals possessing greater financial knowledge generally exhibit better saving behaviour, effective budgeting practices, diversified investment portfolios, and stronger long-term financial planning. However, as financial systems become increasingly digital, traditional financial literacy alone is no longer sufficient. Modern investors require both financial knowledge and digital competence to navigate complex financial technologies safely and efficiently.

Despite growing interest in this area, existing literature remains fragmented regarding the specific relationship between digital financial literacy and the investment behaviour of Generation Z. Many previous studies have focused on traditional financial literacy or general financial inclusion while giving limited attention to digital competencies required for online financial services. Furthermore, the rapid expansion of FinTech has created new opportunities and challenges that require continuous research and updated policy interventions.

The findings of this review are expected to provide valuable insights for policymakers, educators, researchers, financial institutions, and FinTech organizations. Strengthening digital financial literacy can enhance financial confidence, reduce exposure to fraud and misinformation, improve investment decision-making, and contribute to sustainable financial well-being. As digital finance continues to reshape global financial systems, equipping Generation Z with the necessary financial and technological competencies has become increasingly important for achieving inclusive and sustainable economic development.

2. Literature Review

2.1 Digital Financial Literacy

Digital financial literacy has emerged as an extension of traditional financial literacy in response to the rapid digitalization of financial services. While traditional financial literacy focuses on budgeting, saving, borrowing, and investment knowledge, digital financial literacy integrates these financial concepts with digital competencies. It enables individuals to access, understand, evaluate, and use digital financial products and services effectively while ensuring financial security and responsible decision-making.

Researchers describe digital financial literacy as a multidimensional concept that includes financial knowledge, digital skills, cyber-security awareness, information evaluation, and financial confidence. Individuals with higher digital financial literacy are generally more capable of selecting suitable financial products, comparing investment alternatives, identifying fraudulent activities, protecting personal financial information, and making informed financial decisions through digital platforms. In contrast, inadequate digital financial literacy increases the likelihood of poor financial planning, online fraud, misinformation, and impulsive investment decisions.

The rapid expansion of digital financial services has further highlighted the importance of financial education. Governments, financial regulators, educational institutions, and financial organizations increasingly recognize digital financial literacy as an essential factor in promoting financial inclusion and economic empowerment.

2.2 Generation Z and the Digital Financial Ecosystem

Generation Z represents the first generation raised entirely in a digital environment. Continuous exposure to smartphones, high-speed internet, social media, cloud technologies, and artificial intelligence has significantly influenced their financial behaviour. Compared with previous generations, Generation Z demonstrates greater familiarity with digital financial services, including mobile banking, digital wallets, online brokerage platforms, investment applications, and electronic payment systems.

The widespread adoption of technologies such as Unified Payments Interface (UPI), online investment platforms, robo-advisory services, and artificial intelligence-based financial tools has simplified investment participation for young individuals. Investments that previously required extensive documentation and higher capital can now be initiated through user-friendly mobile applications with relatively small investment amounts.

However, technological familiarity does not always translate into sound financial knowledge. Many young investors rely heavily on social media influencers, online communities, podcasts, YouTube channels, and digital financial content while making investment decisions. Although these sources increase financial awareness, they may also spread misleading information, unrealistic investment expectations, and speculative trading behaviour. Consequently, financial education remains essential for enabling Generation Z to distinguish credible financial information from unreliable digital content.

2.3 Digital Financial Literacy and Investment Behaviour

Investment behaviour refers to the process through which individuals allocate financial resources among available investment opportunities while considering expected returns, financial objectives, and associated risks. Previous research consistently identifies financial literacy as one of the strongest determinants of investment behaviour.

Individuals possessing higher levels of digital financial literacy generally demonstrate better investment planning, effective portfolio diversification, improved risk assessment, and greater participation in formal financial markets. They are more likely to evaluate financial information critically, compare investment alternatives objectively, and adopt long-term investment strategies rather than engaging in speculative trading.

Digital investment platforms have significantly increased accessibility to financial markets by reducing transaction costs and simplifying investment procedures. Nevertheless, the convenience of these platforms may also encourage impulsive investment decisions, excessive trading, and overconfidence among inexperienced investors. Digital financial literacy therefore functions as a protective mechanism by enabling investors to analyse investment opportunities carefully before committing financial resources.

Several studies further indicate that financially literate individuals participate more actively in systematic investment plans, mutual funds, retirement savings, government securities, and diversified investment portfolios. Conversely, limited financial knowledge often results in emotional decision-making, excessive dependence on market rumours, and concentration of investments in high-risk speculative assets.

2.4 Role of Financial Technology (FinTech)

Financial Technology (FinTech) has fundamentally transformed financial services by integrating

digital innovation with traditional banking and investment systems. Technologies such as artificial intelligence, blockchain, machine learning, cloud computing, and big data analytics have improved financial accessibility, efficiency, transparency, and customer experience.

Modern FinTech applications provide investors with real-time market information, automated investment recommendations, portfolio management tools, and personalized financial advice. Robo-advisors and AI-based investment platforms have made professional financial guidance more affordable and accessible, particularly for young investors.

Despite these advantages, researchers emphasize that technology alone cannot guarantee better financial outcomes. Investors lacking sufficient financial literacy may misunderstand financial information, underestimate investment risks, or become vulnerable to fraudulent online schemes. Therefore, effective financial education should combine technological skills with financial knowledge to maximize the benefits of digital financial innovation.

2.5 Financial Literacy and Financial Well-being

Financial well-being refers to an individual's ability to manage present financial obligations while achieving long-term financial security and resilience. Numerous studies have established a strong positive relationship between financial literacy and financial well-being.

Financially literate individuals generally demonstrate disciplined saving habits, effective budgeting practices, responsible debt management, and well-planned investment strategies. Digital financial literacy further strengthens these outcomes by enabling individuals to use digital financial services securely and efficiently.

For Generation Z, financial well-being depends not only on income but also on the ability to understand complex digital financial products, identify investment opportunities, evaluate financial risks, and protect personal financial information. Improving digital financial literacy therefore contributes directly to sustainable financial decision-making and long-term economic security.

2.6 Empirical Evidence

Recent empirical studies consistently demonstrate that digital financial literacy positively influences investment behaviour among young adults. Individuals possessing higher digital financial knowledge exhibit stronger financial confidence, greater investment participation, improved portfolio diversification, and more effective financial planning.

Research conducted in both developed and emerging economies indicates that digital financial services have expanded financial inclusion by increasing access to banking, investment platforms, and digital payment systems. However, studies also emphasize that digital access alone is insufficient without adequate financial understanding.

Evidence further suggests that structured financial education programmes significantly improve investment awareness and responsible financial behaviour. Educational interventions integrating practical digital skills with financial knowledge have proven more effective than conventional financial education alone. These findings support incorporating digital financial literacy into higher education curricula and national financial inclusion strategies.

2.7 Behavioural Perspectives

Behavioural finance explains that investment decisions are frequently influenced by psychological

and emotional factors rather than purely rational analysis. Investors often exhibit behavioural biases such as overconfidence, herd behaviour, confirmation bias, anchoring, and loss aversion.

Generation Z is particularly susceptible to these influences because investment decisions are often shaped by social media trends, online investment communities, and digital financial influencers. Overconfidence may encourage excessive trading, while herd behaviour leads investors to imitate others without conducting independent analysis.

Digital financial literacy reduces these behavioural biases by improving critical thinking, strengthening financial analysis, and encouraging evidence-based investment decisions. Financially literate individuals are better equipped to evaluate investment opportunities objectively and avoid emotionally driven financial choices.

2.8 Theoretical Foundation

The present study is supported by four major theoretical perspectives.

Theory of Planned Behavior (TPB) explains that behavioural intentions are influenced by attitudes, subjective norms, and perceived behavioural control. Higher digital financial literacy strengthens confidence and encourages responsible investment behaviour.

Behavioural Finance Theory argues that investment decisions are influenced by psychological biases and emotions. Financial literacy helps investors recognize these biases and make more rational decisions.

Prospect Theory suggests that individuals perceive financial losses more strongly than equivalent gains. Better financial literacy improves understanding of investment risk and reduces emotional reactions during market fluctuations.

Human Capital Theory views education and knowledge as investments that improve decision-making abilities and long-term productivity. Financial education therefore enhances digital financial literacy and contributes to better investment outcomes.

2.9 Research Gap

Although previous studies have extensively examined traditional financial literacy, comparatively fewer studies have focused specifically on digital financial literacy and its influence on Generation Z. Existing research often emphasizes general financial knowledge while giving limited attention to digital competencies such as online information evaluation, cybersecurity awareness, and digital investment platforms.

Moreover, many studies investigate individual determinants of investment behaviour independently rather than adopting an integrated approach combining financial literacy, behavioural finance, FinTech adoption, and financial well-being. Differences in digital infrastructure, financial inclusion, and educational systems across countries have also produced inconsistent findings.

Therefore, there remains a need for comprehensive review studies that synthesize existing evidence and provide a holistic understanding of how digital financial literacy shapes investment behaviour among Generation Z.

2.10 Summary of Literature Review

The reviewed literature consistently demonstrates that digital financial literacy is a key determinant

of responsible investment behaviour in the digital economy. Individuals possessing stronger financial knowledge and digital competence exhibit greater investment confidence, better portfolio diversification, improved financial planning, and enhanced financial well-being. At the same time, increasing digitalization has created new challenges, including misinformation, cyber fraud, and behavioural biases.

The literature highlights the need for collaborative efforts among educational institutions, policymakers, financial regulators, and FinTech organizations to strengthen digital financial education. Enhancing digital financial literacy among Generation Z will not only improve individual financial outcomes but also contribute to broader financial inclusion and sustainable economic development.

3. Research Gap

A review of existing literature indicates that financial literacy has long been recognized as an important determinant of investment behaviour. However, the rapid digitalization of financial services has introduced new challenges that extend beyond traditional financial knowledge. Although several studies have examined financial literacy and investment decisions, relatively few have focused specifically on **digital financial literacy** as a distinct factor influencing the investment behaviour of Generation Z.

Most previous research has concentrated on general financial awareness, saving habits, or investment knowledge while giving limited attention to digital competencies such as online financial information evaluation, cybersecurity awareness, digital payment systems, mobile investment platforms, and FinTech applications. Moreover, many studies have investigated behavioural factors and financial literacy separately instead of examining their combined influence on investment decision-making in a digital environment.

Another limitation is that existing studies have been conducted in different economic and technological contexts, resulting in inconsistent findings. Variations in financial inclusion, educational systems, digital infrastructure, and FinTech adoption make it difficult to generalize previous results. Therefore, there is a need for a comprehensive review that integrates recent evidence and provides a holistic understanding of how digital financial literacy influences the investment behaviour of Generation Z.

4. Statement of the Problem

The increasing adoption of digital financial technologies has made investing easier and more accessible than ever before. Through smartphones and online investment platforms, Generation Z can participate in financial markets with minimal cost and effort. Despite this accessibility, many young investors lack adequate knowledge of financial planning, investment risk, portfolio diversification, cybersecurity, and fraud prevention.

The growing influence of social media, financial influencers, and online investment communities has further complicated investment decision-making. While these digital platforms provide useful financial information, they also expose investors to misinformation, speculative trading, unrealistic expectations, and fraudulent schemes.

As a result, inadequate digital financial literacy may lead to irrational investment behaviour, poor financial decisions, and long-term financial instability. Understanding how digital financial literacy

affects investment behaviour is therefore essential for designing effective financial education programmes and promoting responsible investment practices among Generation Z.

5. Objectives of the Study

The study is conducted with the following objectives:

1. To examine the concept and dimensions of digital financial literacy in the modern financial environment.
2. To analyse the investment behaviour of Generation Z within digital financial ecosystems.
3. To evaluate the influence of digital financial literacy on investment decision-making.
4. To examine the role of Financial Technology (FinTech) in promoting investment participation.
5. To identify behavioural and technological factors affecting investment behaviour.
6. To suggest recommendations for improving digital financial literacy and encouraging responsible investment practices.

6. Research Questions

The study seeks to answer the following research questions:

- What is digital financial literacy and how does it differ from traditional financial literacy?
- How does digital financial literacy influence the investment behaviour of Generation Z?
- What role does Financial Technology (FinTech) play in digital investment decisions?
- Which behavioural factors significantly affect the investment behaviour of young investors?
- How can digital financial literacy be improved through financial education and policy initiatives?

7. Hypotheses

Although the study is based on secondary data and does not involve statistical testing, the following propositions may guide future empirical research:

H1: Digital financial literacy positively influences the investment behaviour of Generation Z.

H2: Adoption of Financial Technology positively enhances digital financial literacy.

H3: Higher levels of digital financial literacy improve financial confidence and investment decision-making.

H4: Behavioural factors significantly influence the relationship between digital financial literacy and investment behaviour.

H5: Financial education programmes positively contribute to responsible investment practices among Generation Z.

8. Conceptual Framework

The conceptual framework proposes that **Digital Financial Literacy** is the primary independent variable influencing the **Investment Behaviour of Generation Z**. This relationship is strengthened

by supporting factors such as financial education, FinTech adoption, digital financial inclusion, technological competence, financial confidence, risk tolerance, and investment attitude.

Digital financial literacy enables individuals to evaluate financial information critically, understand investment risks, compare financial products, use digital financial services securely, and make informed investment decisions. Consequently, improved digital financial literacy contributes to greater investment participation, diversified portfolios, enhanced financial confidence, and long-term financial well-being.

Conceptual Model

Digital Financial Literacy

- Financial Knowledge
- Digital Skills
- Cybersecurity Awareness
- Financial Confidence
- Information Evaluation

Supporting Factors

- Financial Education
- FinTech Adoption
- Digital Inclusion
- Risk Tolerance
- Investment Attitude

Investment Behaviour of Generation Z

- Investment Participation
- Portfolio Diversification
- Risk Management
- Long-term Financial Planning
- Financial Well-being

9. Research Methodology

Research Design

The present study adopts a **descriptive and exploratory research design** based entirely on secondary data. The study aims to examine the relationship between digital financial literacy and the investment behaviour of Generation Z through a systematic review of existing literature.

Nature of Data

The research relies exclusively on **secondary sources of information**. Data have been collected from peer-reviewed journal articles, books, conference papers, government publications, reports of international organizations, central bank reports, financial institution publications, and reliable online

academic databases.

Sources of Data

The major sources include:

- Scopus-indexed research articles
- Google Scholar publications
- Government and central bank reports
- OECD publications
- World Bank reports
- Reserve Bank of India (RBI) publications
- Financial Technology (FinTech) reports
- Academic books and institutional reports

Method of Analysis

The collected literature has been analysed using a **qualitative review approach**. Relevant studies were systematically examined to identify common themes, research findings, theoretical perspectives, and emerging trends related to digital financial literacy and investment behaviour.

The analysis focuses on:

- Digital financial literacy
- Generation Z investment behaviour
- Financial technology adoption
- Behavioural finance
- Financial education
- Financial well-being

The findings from different studies were compared and synthesised to develop a comprehensive understanding of the topic.

Scope of the Study

The study focuses on understanding how digital financial literacy influences the investment decisions of Generation Z in the context of rapidly evolving digital financial services. It examines the role of financial technology, behavioural factors, financial education, and digital inclusion while identifying challenges and opportunities for future research.

Limitations of the Study

Despite providing valuable insights, the study has certain limitations:

- It is based entirely on secondary data.
- No primary survey or statistical analysis has been conducted.
- Findings depend upon the quality and availability of published literature.

- The rapidly changing nature of digital finance may influence future outcomes.
- Differences in geographical and economic contexts may limit the generalization of findings.

10. Conclusion

The rapid growth of digital technologies has fundamentally transformed the financial landscape, making digital financial literacy an essential competency for individuals participating in modern financial systems. Generation Z, as the first generation to grow up in a fully digital environment, has become one of the largest users of digital banking, online payment systems, and investment platforms. While technology has improved financial accessibility and created numerous investment opportunities, it has also introduced new challenges related to financial awareness, cybersecurity, misinformation, and behavioural biases.

This review demonstrates that digital financial literacy plays a significant role in shaping the investment behaviour of Generation Z. Individuals possessing higher levels of financial knowledge and digital competence are more likely to evaluate investment opportunities critically, diversify their portfolios, manage financial risks effectively, and adopt long-term investment strategies. They also exhibit greater confidence in using digital financial services while remaining more cautious about fraudulent schemes and misleading financial information.

Conversely, inadequate digital financial literacy increases the likelihood of impulsive investment decisions, overconfidence, speculative trading, and financial losses. The widespread influence of social media, financial influencers, and online investment communities further highlights the need for critical evaluation of digital financial information before making investment decisions.

The review also emphasizes the importance of Financial Technology (FinTech) in promoting financial inclusion and expanding access to financial markets. Digital investment platforms, mobile banking applications, artificial intelligence, robo-advisors, and electronic payment systems have simplified financial transactions and investment processes. However, technological advancement alone cannot guarantee positive financial outcomes unless users possess adequate financial knowledge and digital skills.

Behavioural finance theories further explain that investment decisions are influenced by emotions, cognitive biases, and social influences. Digital financial literacy helps reduce these biases by encouraging analytical thinking, informed decision-making, and responsible financial behaviour.

Overall, the findings indicate that improving digital financial literacy should become a priority for governments, educational institutions, financial regulators, and FinTech organizations. Integrating financial education into school and university curricula, organizing awareness programmes, promoting cybersecurity education, and providing reliable digital financial information can significantly improve the financial capability of young investors.

Strengthening digital financial literacy will not only improve individual investment decisions but also enhance financial inclusion, economic resilience, and sustainable economic development. As digital finance continues to evolve, equipping Generation Z with the necessary financial knowledge and technological competencies will remain essential for building a financially responsible society.

11. Practical Implications

The findings of this study have several practical implications:

- Educational institutions should integrate digital financial literacy into school and university curricula.
- Governments should strengthen national financial literacy programmes focusing on digital financial services.
- Financial institutions should provide user-friendly educational resources and awareness campaigns.
- FinTech companies should improve investor education through secure and transparent digital platforms.
- Regulatory authorities should strengthen consumer protection measures against cyber fraud and financial misinformation.
- Young investors should be encouraged to verify financial information from reliable sources before making investment decisions.

12. Future Research Directions

Future researchers may extend this study by:

- Conducting empirical studies using primary data collected from Generation Z investors.
- Comparing digital financial literacy across different countries and economic environments.
- Examining the influence of artificial intelligence and blockchain technologies on investment behaviour.
- Investigating gender differences in digital financial literacy.
- Exploring the relationship between digital financial literacy and cryptocurrency investment behaviour.
- Assessing the long-term impact of financial education programmes on investment performance.

References

Lusardi, A., & Mitchell, O. S. (2014). *The Economic Importance of Financial Literacy: Theory and Evidence.* Journal of Economic Literature, 52(1), 5–44.

Organisation for Economic Co-operation and Development. (2020). *OECD/INFE International Survey of Adult Financial Literacy.*

World Bank. (2022). *Global Findex Database 2021: Financial Inclusion, Digital Payments, and Resilience.*

Reserve Bank of India. (2023). *Report on Trend and Progress of Banking in India.*

Securities and Exchange Board of India. (2023). *Investor Awareness and Financial Education Initiatives.*

National Payments Corporation of India. (2023). *UPI Product Statistics.*

Atkinson, A., & Messy, F. (2012). *Measuring Financial Literacy.* OECD Working Papers on Finance.

Ajzen, I. (1991). *The Theory of Planned Behavior.* Organizational Behavior and Human Decision Processes,

50(2), 179–211.
Kahneman, D., & Tversky, A. (1979). *Prospect Theory: An Analysis of Decision under Risk.* Econometrica, 47(2), 263–291.
Markowitz, H. (1952). *Portfolio Selection.* Journal of Finance, 7(1), 77–91.
Beck, T., Demirgüç-Kunt, A., & Levine, R. (2007). *Finance, Inequality and the Poor.*
International Monetary Fund. (2022). *Digital Financial Inclusion and Financial Stability.*
United Nations. (2022). *Sustainable Development Goals Report.*
Bank for International Settlements. (2021). *Annual Economic Report.*
World Economic Forum. (2023). *The Future of Financial Services.*
Asian Development Bank. (2022). *Financial Inclusion in Asia.*
Financial Stability Board. (2023). *Global Monitoring Report.*
International Finance Corporation. (2021). *Digital Financial Services Toolkit.*
United Nations Development Programme. (2022). *Digital Transformation and Financial Inclusion.*
Cambridge Centre for Alternative Finance. (2022). *Global FinTech Market Report.*

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

हिन्दी उपन्यास साहित्य में देवकीनंदन खत्री का योगदान

डॉ. दस्तगीर एम. मुल्ला
एसोसिएट प्रोफेसर और अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मराठा मंडल कला, वाणिज्य, विज्ञान और गृह विज्ञान महाविद्यालय,
बेलगावी (कर्नाटक)

भारतीय हिन्दी उपन्यास के इतिहास में देवकीनंदन खत्री का एक महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी उपन्यास साहित्य इतिहास में देवकीनंदन खत्री का नाम सदैव ही उल्लेखनीय रहेगा। इनका जन्म सन् 1861 ई. में इनके ननीहाल मुज्जफरपुर (बिहार) में हुआ था और घर पर इन्हें साधारण शिक्षा प्राप्त हुई थी। प्रायः 18 वर्ष की आयु में गया गए और वही अंग्रेजी तथा फारसी का अध्ययन किया। 6 वर्ष तक ये गया में अपनी कोठी का कारबार देखते रहे और तदुपरांत काशी चले गए। काशी नरेश से इन्होंने चकिया और नौगढ़ के जंगलों का ठीका लिया और इस सिलसिले में इन्हें उस पहाड़ी प्रदेश में भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ। मिर्जापुर जिले के चुनार आदि स्थानों में भी ये घूमे और वहाँ की प्राचीन इमारतों उनके भग्नावशेषों आदि में बनी हुई सुरंगों, गर्भगृहों आदि में इनकी कल्पना को उत्तेजित किया। फारसी के 'तिलस्मतेशरूबा' के आधार पर इन्होंने भी तिलिस्मी-ऐय्यारी उपन्यास आरंभ किए और उस युग के उपन्यास पाठकों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया। अपने उपन्यासों के प्रकाशन के लिए इन्होंने सन् 1898 ई. में अपना 'लहरी प्रेस' भी खोला जिसमें इनके तथा इनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यास छपते रहे। बाबा देवकीनन्दन खत्री ने निम्नलिखित उपन्यासों की रचना की—

चन्द्रकांता	1887-1891
नरेन्द्रमोहनी	1893
वीरेन्द्र वीर अथवा कटोरा भर खून	1895
कुसुम कुमारी	1894-1905
चन्द्रकान्ता सन्तति	1894-95
काजर की कोठरी	1902
भूतनाथ भाग-1 से 6 तक	1906-1912
गुप्तगोदना (अपूर्ण)	1913

इनके अतिरिक्त 'लैला मजनूँ' और 'गुप्तगोदना भाग-1, उपन्यास 'लहरी' (1894-1905), 'साहित्य लहरी' (1913) भी उन्हीं की रचित रचनाएँ है जो अब वर्षो से अप्राप्य है। कुछ लोग उनकी रचनाओं में 'नौलखा हार' और अनूठी बेगम' का भी उल्लेख करते हैं।

इनमें चन्द्रकांता, चन्द्रकान्ता संतति और भूतनाथ बहुत प्रसिद्ध हैं। चन्द्रकान्ता के चार भाग हैं। चन्द्रकान्ता संतति के चौबीस और भूतनाथ के इक्कीस भाग हैं। देवकीनन्दन जी खत्री का प्रादुर्भाव हिन्दी गद्य के उस विकास-काल में हुआ जब एक ओर तो भाषा परिमार्जन की ओर अग्रसर हो रही थी और दूसरी ओर साहित्य की बहुमुखी धाराओं का प्रस्फुटन बंगला और

अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में आकर होता जा रहा था। उपन्यास साहित्य अनुवाद के क्षेत्र को छोड़कर मौलिक विचार-धाराओं में बहने की इच्छा करता हुआ कल्पना के पैरों पर उड़ने और इस उड़ानकर्ताओं में उपन्यास साहित्य के सर्वप्रथम महारथी श्री देवकीनंदन खत्री थे। देवकीनंदन जी ने उसे शक्ति प्रदान की, बल दिया और एक निर्धारित मार्ग सुझा कर घटना प्रधान उपन्यासों की नींव रखी। जिसके अन्तर्गत सन् 1881 में खत्री ने 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की।

सन् 1913 में बाबा देवकीनन्दन खत्री की मृत्यु हो गयी। बाबा देवकीनन्दन खत्री हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्हें जनता ने व्यापक रूप से मान्यता दी। ये हिन्दी में ऐय्यारी और तिलिस्मी उपन्यासों के जनक माने गये। हिन्दी साहित्य में इसकी प्रेरणा इन्हें कैसे मिली इसकी चर्चा करते हुए मधुरेश जी लिखते हैं- ''हिन्दी में तिलस्मी-ऐयारी उपन्यास के जिस रूप की परिकल्पना उन्होंने की उसकी प्रेरणा हो सकता है उन्हें फैजी के 'दास्तान-ए-अमीर हम्जा' व 'तिलिस्म होशरबा' से मिली हो। चूंकि वह फारसी जानते थे। इसलिए यह भी बहुत मुमकिन है कि फैजी की इस रचना को उन्होंने मूल फारसी में पढ़ भी रखा हो। लेकिन इस फारसी रचना में और देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में एक आधारभूत अंतर है और यह अंतर खास महत्वपूर्ण है।''[1] कहने का तात्पर्य है कि सन् 1890 ई. से आरम्भ होने वाले दशक में जो कथा परम्पराएँ विकसित हुई उनमें तिलस्म-ऐय्यारी प्रधान कथा की परम्परा सर्वप्रथम उल्लेख है। अन्य कथा परम्पराएँ इस दशक में उद्भूत तो हुई, पर उनका विकास 1900 ई. के बाद ही हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के उपन्यास 1900 ई. उद्भूत तो हुई, पर उनका विकास 1900 ई. के बाद ही हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी के उपन्यास 1900 ई. के बाद ही लोकप्रियता प्राप्त करने में समर्थ हुए, जबकि देवकीनन्दन खत्री की कथापुस्तकों की धूम उनके प्रकाशित होते ही मच गयी। खत्री जी की तिलिस्मी कथाओं का प्रचलन इस दशक में इतना अधिक हुआ कि अन्य प्रकार की कथा पुस्तकों पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा।

उन्होंने हिन्दी के लिए जितने पाठक तैयार किए उतने इस काल के किसी भी अन्य उपन्यासकार ने नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें हिन्दी का मौलिक उपन्यासकार मानते हुए लिखा है- ''उक्त काल के आरंभ में तो 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकान्ता संतति' नामक इनके ऐयारी उपन्यासों की चर्चा चारों ओर इतनी फैली कि जो लोग हिन्दी की किताबे नहीं पढ़ते थे वे भी इन नामों से परिचित हो गए।''[2] देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यासों के अपने जीवन में ही उत्तर भारत में वह ख्याति अर्जित की जो अन्यों को नहीं मिली। इनके उपन्यास चन्द्रकांता को पढ़ने की ललक ने अनेक अहिन्दी भाषियों को भी हिन्दी सीखने के लिए विवश किया। खत्री जी ने हिन्दी कथा साहित्य लेखन क्षेत्र को एक क्रांतिकारी आयाम दिया।

खत्री जी की लोकप्रियता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गोपाल राय लिखते हैं- ''खत्री जी के समकालीन तथा परवती हिन्दी लेखकों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि हिन्दी उपन्यास को लोकप्रिय बनाने का श्रेय देवकीनन्दन खत्री को ही है। खत्री जी के उपन्यास छपते ही इतने लोकप्रिय हुए कि अनेक उर्दू जानने वालों ने उपन्यासों को पढ़ने को लोभ से हिन्दी सीखी। अकेले देवकीनन्दन खत्री हिन्दी के जितने पाठक तैयार किये उतने उस युग के समस्त उपन्यासकारों ने मिलकर भी कदाचित नहीं किये।''[3] देवकीनन्दन खत्री का महत्व इस बात को लेकर है कि उन्होंने नितांत प्रतिकूल परिस्थितियों में हिन्दी कथा साहित्य को लोकप्रिय बनाने का सफल प्रयास किया। 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकांता संतति' की रचना करके खत्री जी ने लोगों का ध्यान सहसा अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यासों के पात्र उच्चवर्ग से लिए हैं। अतः मध्यवर्ग की समस्याओं का चित्रण इनके उपन्यासों में देखने को नहीं मिलता है। खत्री जी ने जनता के मनोरंजन के लिए उपन्यासों की रचना की थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर उन्होंने तिलिस्म और ऐय्यारी की मोहक और जनसुलभ बनाने का सफल प्रयत्न किया है। डॉ. गोपाल राय के शब्दों में—''खत्री जी ने इन सारी पुरानी-नयी बातों और अपने अनुभवों से प्राप्त तथ्यों की सर्जनात्मक प्रतिभा से समृद्ध कर एक ऐसे कथा संसार का निर्माण किया जिसमें एक बार प्रवेश करने के बाद पाठक अपनी सुधबुध खो देने को विवश

था। खत्री जी की एक और उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उन्होंने अपने लगभग पच्चीस वर्षों के कथालेखन की अवधि में न केवल एक विशाल पाठक वर्ग का निर्माण किया वरन् उसकी रूचि का भी विकास किया। प्राचीन कथाओं के अतिलौकिक तत्वों में विश्वास करने वाला हिन्दी का कथाश्रोता था पाठक खत्री जी की कथा रचनाओं को पढ़कर अधिक सावधान, सजग और बौद्धिक पाठक बन गया।''[4]

देवकीनंदन खत्री जी द्वारा रचित सभी उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य मात्र किसी भाव विशेष मनोरंजन प्रदान करना या रस विशेष का संचार करना मात्र नहीं था बल्कि उस समय के सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करना भी उनका लक्ष्य था। 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता संतति', 'भूतनाथ', 'कुसम कुमारी', 'काजर की कोठरी', 'वीरेन्द्र कुमार', 'गुप्त गोदना' आदि उपन्यासों में 'काजर की कोठरी' सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। 'काजर की कोठरी' में खत्री जी ने जमींदार और वेश्या के जीवन पर प्रकाश डाल कर समाज की गम्भीर समस्याओं और उसका समाधान प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का महत्व इसलिए अधिक है कि यह उपन्यास प्रेमचन्द के 'सेवासदन' की भूमिका है। दोनों में ही वेश्या-सुधार पर बल दिया गया है। कहीं न कहीं हम मूलतः प्रमाण रूप में देखते हैं कि प्रेमचंद पूववती उपन्यासों में वस्तुतः सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलू प्राप्त होते हैं जिसका उदाहरण और प्रमाण खत्री जी द्वारा रचित 'काजर की कोठरी' ही है जिसमें आर्थिक समस्या तथा धन के लिए एक सामान्य स्त्री 'सरला' के रूप में शोषण तथा 'बांदी' नामक वेश्या का चित्रण सामाजिक दृष्टिकोण में सहायक है। इसमें लेखक वेश्या जीवन को लेकर अपना अभिमत प्रकट करता है। इस रूप में हम डॉ. सुरेश सिन्हा के वकत्व्य को हम रख सकते हैं- ''काजर की कोठरी' (1902), में वेश्याओं के कारूणिक जीवन का मर्मस्पशी चित्रण किया गया है। यद्यपि इस उपन्यास में सामाजिक पक्ष कुछ उभरा अवश्य है, पर वह तिलिस्म एवं ऐयारी के जाल से ऊपर नहीं उठ पाया है।''[5]

इसमें लेखक ने वेश्याओं के बारे में बतौर से सोचने के तात्कालीन ढंग पर अपने को कहीं अधिक केन्द्रित करके चलता है। उसका प्रमुख आग्रह यहीं दिखायी देता है कि वेश्याओं के लिए आदमी का नहीं धन से मतलब होता है और धन के लिए उन्हें कुछ भी करने को तैयार किया जा सकता है। जैसा कि आज भी हमारे समाज विवश और लाचार निम्न वर्ग की लड़कियाँ इस क्षेत्र में जाने के लिए आर्थिक समस्या के कारण विवश हैं ये हम सब जानते हैं। अतः हम कह सकते हैं तात्कालीन उपन्यास 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता संतति', 'भूतनाथ', 'कुसुम कुमारी', 'काजर की कोठरी' आदि जैसे अनेक उपन्यासों को मनोरंजन मानकर उसे नकार दिया जाता है लेकिन वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में इन उपन्यासों को देखा जाए तो इनकी सामाजिक भूमिका को कभी नकारा नहीं जा सकता है जिसने हिन्दी का एक विशाल पाठक वर्ग तो तैयार किया ही साथ ही साथ हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रसार भी हुआ अर्थात हिन्दी भाषा के विकास की दिशा में, देवकीनन्दन खत्री ने अपने उपन्यासों द्वारा जो कुछ किया वह किसी एक संस्था से बढ़कर उस समय की परिस्थितियों में एक साहसपूर्ण तथा महान कार्य था जिसको हिन्दी के पाठक वर्ग को कभी भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देवकीनन्दन खत्री की रचनाओं के सम्यक और संतुलित मूल्यांकन के बाद ही उनकी ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका पर विचार करना चाहिए।

चन्द्रकान्ता :

इस क्रम मैंने सबसे पहले देवकीनंदन खत्री जी द्वारा रचित चन्द्रकान्ता उपन्यास पर विचार किया है। 'चन्द्रकान्ता' में नौगढ़ के राजा सुरेन्द्रसिंह के पुत्र राजकुमार वीरेन्द्रसिंह एवं विजयगढ़ के राजा जयसिंह की पुत्री राजकुमारी चन्द्रकान्ता की प्रेम कहानी वर्णित है। विजयगढ़ के दीवान के पुत्र क्रूरसिंह के स्वयं राजकुमारी चन्द्रकान्ता की ओर आकृष्ट होने और बाद में उसे प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के षड्यंत्र रचने के कारण अपने नाम के अनुरूप ही उसकी स्थिति एक परम्परागत खलनायक जैसी है। उसका अंत भी उसके कर्मो के अनुरूप ही होता है। विजय गढ़ से निकाल दिये जाने के बाद वह चुनार गढ़ के राजा शिवदत्त के यहां शरण लेता है, उसे राजा जयसिंह के विरूद्ध उभकाता है, स्वयं चन्द्रकान्ता के प्रति आकृष्ट होते हुए भी वह वीरेन्द्रसिंह और चन्द्रकान्ता की प्रेम कहानी राजा शिवदत्त को सुनाकर चन्द्रकान्ता के प्रति उसकी आसक्ति को

हवा देने की कोशिश भी करता है। लेकिन बाद में ऐयारों की सहायता से, नौगढ़ और विजयगढ़ राज्य अपनी पुरानी शत्रुता भूलकर एक हो जाते हैं और उनके सम्मिलित प्रयासों से राजा शिवदत्त और उसके सहयोगियों के सारे प्रयत्न विफल होते हैं। चुनारगढ़ स्थित तिलस्म में राजकुमारी चन्द्रकान्ता और उसकी सखी चपला के बंद हो जाने की स्थिति में अपने ऐयारों-जीतसिंह, तेजसिंह, देवीसिंह, वद्रीनाथ, जगन्नाथ ज्योतिषी और स्त्रियों में चपला और चंपा आदि की सहायता से राजकुमार वीरेन्द्रसिंह पर्याप्त कठिनाइयों और विफलताओं के बाद भी, उस तिलस्म को तोड़कर राजकुमारी चन्द्रकान्ता को मुक्त करके, और उस तिलस्म में पायी जानेवाली अकूत सम्पत्ति के स्वामी बनकर, गुरूजनों और साथियों के आशीर्वाद एवं शुभकामनाओं के बीच, राजकुमारी चन्द्रकान्ता को पत्नी के रूप में ग्रहण करते हैं। वीरेन्द्रसिंह और चन्द्रकान्ता का यह मिलन बहुत कुछ शेक्सपियर के सुखान्त नाटकों के ढर्रे पर आयोजित है जिसमें एक साथ ही कई विवाह संपन्न होते हैं और यहाँ भी मृत्यु विवाह के साथ ही तेजसिंह और चपला तथा देवीसिंह और चंपा भी विवाह-सूत्र में बंधते दिखाये जाते हैं। ''चंद्रकांता शीर्षक उपन्यास के कथांनक पर विचार करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं– ''यह कहानी अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है उपन्यास की बुनावट। यह तिलस्म और ऐयार के ताने-बाने से बुना गया है। तिलस्म एक इमारत होती है जो ज्योतिषियों, तांत्रिकों, नजूमियों की देख रेख में बनायी जाती है और उसमें अपार सम्पत्ति सुरक्षित रहती है।''[6] 'चन्द्रकान्ता' के नैतिक मूल्य वस्तुतः एक सामन्ती समाज व्यवस्था में लम्बे अरसे से प्रश्रय पाते रहे मूल्य ही हैं जिनमें तत्कालीन हिन्दू सोच के अनुसार अच्छे कर्मो का फल अच्छा और बुरे कर्मो का फल बुरा होना ही है।

'चन्द्रकान्ता' मुख्य रूप से एक प्रेम कहानी है। लेकिन उसमें वीरेन्द्रसिंह और चन्द्रकान्ता का प्रेम जिस रूप में अंकित है वह एक बार फिर मध्यकाल में रचित काव्यों की याद दिला देता है, जिसमें सारी दैवी और सांसारिक विध्न-बाधाओं को पार करके नायक अन्ततः नायिका को पा ही लेता है। चन्द्रकान्ता उपन्यास पर विचार करते हुए डॉ. सत्यदेव मिश्र ने लिखा है- ''चन्द्रकान्ता चार भागों में विभक्त एक अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास प्रमाणित हुआ। इस उपन्यास ने हिन्दी पाठकों का विशाल जनसमूह तैयार किया जिसमें न केवल शहरों के पढ़े लिखे लोग ही थे वरन गाँव-कस्बों के कम पढ़े-लिखे लोग भी थे। उपन्यास का रोमानी कथानक यथार्थ की आाधुनिक भूमि को भले ही स्पर्श न करता हो परन्तु प्रेम-मुहब्बत की एक अत्यंत रोचक कल्पना प्रधान दास्ता पाठकों के मन को गहराई से स्पर्श करती है।''[7] अर्थात इस काल में देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों से जनसामान्य अधिक प्रभावित हुआ। उनमें 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता संतति' और भूतनाथ जनता का मनोरंजन कर सकने में समर्थ थे। खत्री जी द्वारा रचित अन्य उपन्यासों में नरेन्द्र मोहनी, वीरेन्द्रवीर, कुसुमकुमारी, काजर की कोठरी, गुप्त गोदना, भूतनाथ (छह भाग) आदि विशेष उल्लेखनीय है।

'चन्द्रान्ता संतति' में प्रेम-संबंध कुछ जटिल हो गया है। चन्द्रकांता के पुत्र इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह अनेक युवतियों के आकर्षण-केन्द्र हैं। इन्द्रजीत सिंह के पास शत्रु-कन्या किशोरी अपनी अंगूठी में जड़ी तस्वीर भेजती है, जिसे देखकर वे मोहित हो जाते हैं। किशोरी की मौसेरी बहन माधवी भी इन्द्रजीतसिंह की ओर आकृष्ट है। अतः एक पुरूष के साथ दो स्त्रियों के प्रेम से नाटकीय स्थिति उत्पन्न होती है। माधवी किशोरी और इन्द्रजीत सिंह को कैदखाने में डाल देती है, जहां दोनों का मधुर मिलन होता है। माधवी के दीवान की लड़की कामिनी आनन्दसिंह को प्यार करती है। शत्रुपक्ष की कन्याओं से प्रेम और सहानुभूति प्राप्त करने में उनके रोमानी व्यक्तित्व की विजय है पर कमलिनी और लाड़िली उनका जो प्रेम होता है उसमें पौरूष कोमलता से पराजित होता हुआ दिखाई पड़ता है। कमलिनी इन्द्रजीत सिंह के घाव अपने नाजुक हाथों से तेल लगाकर और अपने आंचल का टुकड़ा बांधकर उन्हें वशीभूत कर लेती है। कृतज्ञता और आकर्षण से प्रेम का स्वाभाविक विकास होता है। अंत में चारों प्रेमिकाओं का कुमारों से विवाह होता है। वे घर का काज करती हुई पति की सुख-सुविधा का ख्याल रखती है और दासियों के साथ अच्छा वर्ताव करती है। प्रेमिका को पत्नी बनाकर स्वच्छंद प्रेम को परिवार की परिधि में बांधने की यह पद्धति भारतीय है।

चन्द्रकांता संतति :

'चन्द्रकांता संतति' में एक स्थल पर नहीं वरन् अनेक स्थलों पर देवकीनंदन खत्री स्पष्ट शब्दों में भारतेंदु-युग के समाज की नयी शक्ति-नवोदित मध्यवर्ग के आदर्शो, उनके प्रति उसकी निष्ठा और उत्साह व्यक्त करते हैं। उस युग की अनेक समस्याएं भी 'चन्द्रकांता संतति' में प्रतिबिंबित हुई हैं। हिन्दी उपन्यास के प्रेमी पाठक उत्पन्न करने तथा उपन्यास को बिकने वाली पुस्तक बनाने में देवकीनंदन खत्री की चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति का ऐतिहासिक योगदान है।

चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति ने जहाँ एक ओर जनसाधारण में, सिंहासन बत्तीसी, बेताल पचीसी जैसे परंपरागत किस्से-कहानियों के पाठकों के मन को बांधा वहीं दूसरी ओर सहस्र राजनीतिक चरित्र, तिलिस्म होशरूवा जैसी फारसी कथाओं से मनोरंजन प्राप्त करने वाले अभिजात वर्ग के पाठकों को भी नया रस प्रदान किया। इन दोनों लोकरंजक उपन्यासों में जहां परंपरागत भारतीय लोककथा के समस्त गुण विद्यमान थे वहीं उनमें मुसलमानी शासन काल में विकसित किस्सागोई के फन का अत्यंत सशक्त नमूना मिलता था। यही कारण है कि देवकीनंदन खत्री ने नवोदित मध्यम वर्ग के शिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित सभी वर्ग के लोगों में अपने पाठक उत्पन्न कर लिये। कुछ भी हो, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में, जितना योग इन तिलस्मी उपन्यासों का है, उतना अन्य किसी गद्य-विधा का नहीं। यह एक ऐसा तथ्य, है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, और अब तो सामाजिक रूपान्तरण में साहित्य की भूमिका पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए यह लक्षित किया जा रहा है कि खत्रीजी ने केवल मनोरंजन के लिए असीम कल्पना लोक की सृष्टि नहीं की है। जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में सर्वाधिक सफलता बाबू गोपालराम गहमरी को ही प्राप्त हुई। 'चन्द्रकांन्ता' और 'संतति' वास्तव में इतनी रोचक है कि उनका जादू सिर चढ़कर बोलता है। तब से अब तक तो बुद्धिवादियों का दायरा बहुत बढ़ गया है, फिर भी 'चन्द्रकान्ता' के पाठकों की संख्या अभी तक नहीं घट पाई। 'चन्द्रकान्ता' और 'सतति' प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में छपती हैं, खपती हैं।

भूतनाथ :

'चंद्रकांता' संतति' का सबसे आकर्षक ऐयार भूतनाथ है, जिसका वास्तविक नाम गदाधरसिंह है। भूतनाथ का जीवन अनंत रहस्यों से मंडित है। अपने जीवन में उसने अनेक कुकर्म किए है, लेकिन घटनाओं के आघात से वह आत्म सुधार की ओर अग्रसर होता है। उपन्यास के अंत में नौगढ़ के महाराज सुरेन्द्रसिंह उसे अपनी सेवा में लेते हुए इस बात की आज्ञा देते हैं कि वह अपनी जीवनी लिखकर उन्हें सौंप दे, जिससे अन्य लोगों को उससे शिक्षा मिले। 'भूतनाथ' उपन्यास की रचना का मूल कारण यही है। जैसे 'संतति' का बीज 'चन्द्रकांता' में निहित है, वैसे ही भूतनाथ का संतति में। 'भूतनाथ' को बाबू देवकीनंदन खत्री ने 'चन्द्रकांता संतति' का 'उपसंहार भाग' कहा है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि भूतनाथ को पढ़ने से संतति के अनेक धुंधले अंश स्पष्ट हो जाते हैं। इस उपन्यास में उन सभी व्यक्तियों और स्थानों की चर्चा की गई है जो भूतनाथ के जीवन से किसी भी रूप में संबंधित रहे हैं।

काजर की कोठरी :

'काजर की कोठरी' (1902) में खत्रीजी ने जमींदार और वेश्या के जीवन पर प्रकाश डालकर समाज की गम्भीर समस्या और उसका समाधान प्रस्तुत किया। धन के लिए शहर में वेश्या अपनी मुस्कान और गाँव में जमींदार अपना ईमान बेचते हैं, इस सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति उपन्यास में हुई है। जमींदार लालसिंह अपनी इकलौती लड़की सरला की शादी हरनन्दन सिंह से ठीक करते हैं और इस आशय का वसीयतनामा लिखते हैं कि यदि सरला किसी दूसरे व्यक्ति से शादी करेगी तो जायदाद का आधा हिस्सा उसके पति को और आधा उसके चचेरे भाइयों को मिलेगा।

उपन्यास के उद्देश्य और चरित्र में बड़े कौशल से सामंजस्य उपस्थित किया गया है। जमींदारों और वेश्यओं का समान रूप से पर्दाफास किया गया है। लालसिंह क्रूर और क्रोधी जमींदार का प्रतिनिधित्व करते हैं। पारसनाथ इस तथ्य का द्योतक

है कि एक जमींदार लोभ में पड़कर पतन के गर्त में गिर जाता है। लेखक ने एक जमींदार पात्र के मुँह से ही कहलाते हैं, 'क्या' जमींदार लोग कम धूर्त और चालाक तथा फरेवी होते है। वैसे ही, वैश्यायें अपने नाज-नखरे से काम लेती हैं। अर्थात इस काल में देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों से जनसामान्य अधिक प्रभावित हुआ। उनमें चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतति और भूतनाथ जनता का मनोरंजन कर सकने में समर्थ थे। खत्री जी द्वारा रचित अन्य उपन्यासों में नरेन्द्र मोहनी, वीरेन्द्रवीर, कुसुमकुमारी, काजर की कोठरी, गुप्त गोदना, भूतनाथ (छह भाग) आदि विशेष उल्लेखनीय है।

खत्री जी के उपन्यासों ने प्रारंभ से ही पाठकों को जिस ढंग से आकर्षित किया है वह आकर्षण आज तक बना है। काल-प्रवाह में हिन्दी कथा साहित्य ने अनेक उतार चढ़ाव देखे। किंतु देवकीनन्दन खत्री आज भी लोकप्रिय हैं, तिलिस्म कथा सम्राट हैं। अनेक लेखकों ने उनके अनुकरण का प्रयास किया। किंतु कोई भी कथाकार खत्री जी के मानक को तोड़ न सका।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि यह खत्री जी की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। दुनिया की सारी भाषाओं में उपन्यास के उदय और विकास में पाठकों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गयी है। जिस समय खत्री जी ये पंक्तियाँ लिख रहे थे, उसी समय नवाब राय 'बनारसी' (बाद में 'प्रेमचन्द' नाम से ख्यात) उर्दू में उपन्यास लिख रहे थे। खत्री जी की लोकप्रियता की खबर उन्हें अवश्य होगी। हो सकता है, हमखुर्मा व हमसवाब के हिन्दी में अनुवाद (प्रिय अर्थात दो सखियों का विवाह) के पीछे यह कारण भी रहा हो। पर वे उस समय हिन्दी में नहीं आये। 1913 ई. में खत्री जी के देहावसान के बाद हिन्दी में हुई पाठक वर्ग की असाधारण वृद्धि ने प्रेमचन्द को 1915 ई. में हिन्दी में आने को प्रेरित किया। यह मानना असंगत न होगा कि प्रेमचन्द को हिन्दी में लाने का श्रेय, परोक्ष रूप से, देवकीनन्दन खत्री को भी है। खत्री जी ने पाठक वर्ग के निर्माण के रूप में आवश्यक उपजाऊ जमीन तैयार कर दी जिस पर प्रेमचन्द ने उपन्यास की समृद्ध फसल उगाने में सफलता प्राप्त की।

संदर्भ सूची :

1. मधुरेश, देवकीनन्दन खत्री, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 1980, पुर्नमुद्रण-1989, 1995, 1999, 2002, पृ. 16
2. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवीन संस्करण- 2003, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली-6, पृ. 296
3. राम, डॉ. गोपाल राय, हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव, प्रथम संस्करण- 1965, ग्रंथ निकेतन, चौधरी टोला, पटना-6, पृ. 271
4. वही, पृ. 271
5. सिन्हा, डॉ. सुरेश, हिन्दी उपन्यासः उद्‌भव और विकास, प्रथम संस्करण- 1965, जगदीशचन्द्र गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली-1, पृ. 88
6. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि. नयी दिल्ली, संस्करण- 2008, पृ. 303
7. मिश्र, डॉ. सत्यदेव, हिन्दी साहित्य का उत्तरवर्त्ती काल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण- 2012, पृ. 185

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा : गांधीवादी दृष्टिकोण से अध्ययन

ललिता यादव
शोधार्थी
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

डॉ. शिल्पा रानी
सहायक आचार्य
टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

शोध का सारांश

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक व्यापक एवं दूरदर्शी परिवर्तन का दस्तावेज है। इस नीति का प्रमुख उद्देश्य शिक्षा को अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण, व्यावहारिक एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप बनाना है। नीति में विशेष रूप से प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा में प्रदान करने पर बल दिया गया है। यह व्यवस्था न केवल बालकों के बौद्धिक विकास को गति प्रदान करती है, बल्कि उनकी भाषाई, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान को भी सुदृढ़ करती है। महात्मा गांधी ने भी शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को सर्वाधिक उपयुक्त माना था। उनका विश्वास था कि बालक अपनी भाषा में सहज रूप से ज्ञान अर्जित करता है तथा उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास संभव होता है।

गांधीजी के अनुसार विदेशी भाषा में प्रारंभिक शिक्षा बालकों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, रचनात्मकता तथा आत्मविश्वास को प्रभावित करती है। इसी कारण उन्होंने मातृभाषा आधारित शिक्षा को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का आधार माना। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस विचारधारा को पुनः स्थापित करते हुए भारतीय भाषाओं के संरक्षण, संवर्धन तथा शिक्षा में उनके प्रभावी उपयोग का समर्थन करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा की अवधारणा का गांधीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है तथा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि यह नीति भारतीय शिक्षा को अधिक लोकतांत्रिक, समावेशी एवं सांस्कृतिक रूप से सशक्त बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है।

शोध कुंजी : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मातृभाषा, गांधीवादी शिक्षा-दर्शन, नई तालीम, भारतीय भाषाएँ, बहुभाषिकता, प्राथमिक शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण, आत्मनिर्भरता, मूल्यपरक शिक्षा आदि।

शोध की प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास का मूल आधार होती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व, नैतिकता, सामाजिक चेतना तथा राष्ट्रीय मूल्यों का विकास करना भी है। प्रभावी शिक्षा तभी संभव है जब शिक्षण का माध्यम विद्यार्थियों के अनुभवों, परिवेश तथा भाषा से जुड़ा हो। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति, परंपरा, ज्ञान तथा सामाजिक पहचान की संवाहक होती है। इसी कारण विश्वभर के शिक्षा विशेषज्ञ प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में दिए जाने का समर्थन करते हैं।

भारत भाषाई विविधता वाला देश है, जहाँ सैकड़ों भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। लंबे समय तक अंग्रेजी-केंद्रित शिक्षा

व्यवस्था के कारण अनेक भारतीय भाषाएँ उपेक्षित होती रहीं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता, विशेषकर ग्रामीण एवं वंचित वर्गों के विद्यार्थियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस चुनौती को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने प्रारंभिक स्तर पर मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा में शिक्षा प्रदान करने की अनुशंसा की है। यह निर्णय केवल भाषाई सुधार नहीं, बल्कि शैक्षिक समानता एवं सांस्कृतिक संरक्षण की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण पहल है।

महात्मा गांधी ने अपनी शिक्षा-दृष्टि में मातृभाषा को केंद्रीय स्थान दिया था। उनका मानना था कि विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाला विद्यार्थी अपने समाज एवं संस्कृति से धीरे-धीरे दूर हो जाता है। गांधीजी के अनुसार मातृभाषा में शिक्षा बालकों की समझ, रचनात्मकता, तार्किक क्षमता तथा आत्मविश्वास को विकसित करती है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि शिक्षा तभी सार्थक होगी जब वह बालक के जीवन, समाज एवं स्थानीय परिवेश से जुड़ी होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 गांधीजी की इसी भावना को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में पुनर्स्थापित करती है। नीति भारतीय भाषाओं के संरक्षण, बहुभाषिकता के विकास तथा स्थानीय ज्ञान परंपराओं को शिक्षा से जोड़ने पर बल देती है। इससे विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक गौरव तथा आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है। इस प्रकार मातृभाषा आधारित शिक्षा केवल शैक्षणिक सुधार का विषय नहीं, बल्कि भारतीयता, सामाजिक न्याय तथा समावेशी विकास का भी आधार है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसी संदर्भ का गांधीवादी दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

शोध के सोपान

प्रस्तुत शोध-पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आधिकारिक दस्तावेज, महात्मा गांधी के शिक्षा संबंधी विचार, भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर आधारित पुस्तकों, शोध-पत्रों तथा विभिन्न अकादमिक स्रोतों का अध्ययन किया गया है। उपलब्ध तथ्यों का तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि मातृभाषा आधारित शिक्षा गांधीजी के शिक्षा-दर्शन के कितने निकट है तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इसका क्या स्थान है। अध्ययन का स्वरूप गुणात्मक है तथा इसमें द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। विषय की व्याख्या करते समय गांधीवादी सिद्धांतों एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रमुख प्रावधानों के मध्य वैचारिक सामंजस्य का विश्लेषण किया गया है।

शोध का महत्व

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा का अध्ययन वर्तमान समय में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भाषा शिक्षा की गुणवत्ता, सीखने की क्षमता तथा व्यक्तित्व विकास का आधार होती है। गांधीजी ने मातृभाषा को शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ माध्यम माना था और उनका विश्वास था कि बालक अपनी भाषा में अधिक सहजता, आत्मविश्वास तथा रचनात्मकता के साथ सीखता है। नई शिक्षा नीति इसी विचार को स्वीकार करते हुए भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन पर बल देती है। इससे विद्यार्थियों में सांस्कृतिक पहचान मजबूत होती है तथा स्थानीय ज्ञान एवं परंपराओं का संरक्षण संभव होता है।

यह अध्ययन शिक्षा और भारतीय संस्कृति के संबंध को समझने में भी सहायक है। मातृभाषा आधारित शिक्षा सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देती है तथा ग्रामीण एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के विद्यार्थियों के लिए शिक्षा को अधिक सुलभ बनाती है। साथ ही यह राष्ट्रीय एकता, भाषाई विविधता के सम्मान तथा आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को भी सुदृढ़ करती है। इसलिए यह विषय वर्तमान शिक्षा विमर्श एवं गांधीवादी दर्शन दोनों की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक एवं उपयोगी है।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा की अवधारणा का अध्ययन करना।

2. महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन में मातृभाषा के महत्त्व को स्पष्ट करना।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं गांधीवादी विचारों के मध्य सामंजस्य का विश्लेषण करना।
4. मातृभाषा आधारित शिक्षा के शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का मूल्यांकन करना।
5. भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्धन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की भूमिका का अध्ययन करना।
6. विद्यार्थियों के समग्र विकास एवं आत्मनिर्भरता में मातृभाषा आधारित शिक्षा के योगदान का विश्लेषण करना।

शोध के निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण एवं भारतीय जीवन-मूल्यों से जोड़ने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है। मातृभाषा आधारित शिक्षा इस नीति का प्रमुख आधार है, जो महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन के साथ गहरा सामंजस्य स्थापित करती है। गांधीजी का विश्वास था कि बालक अपनी मातृभाषा में अधिक प्रभावी ढंग से सीखता है तथा वही शिक्षा उसके व्यक्तित्व, नैतिकता और सामाजिक चेतना का समुचित विकास कर सकती है। नई शिक्षा नीति इसी सिद्धांत को स्वीकार करते हुए प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा एवं स्थानीय भाषाओं को प्राथमिकता प्रदान करती है।

यह नीति भारतीय भाषाओं के संरक्षण, सांस्कृतिक विरासत के संवर्धन तथा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास और रचनात्मकता के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। साथ ही यह शिक्षा को अधिक समान, सुलभ एवं प्रभावी बनाकर सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। यद्यपि इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए गुणवत्तापूर्ण पाठ्यसामग्री, प्रशिक्षित शिक्षकों तथा सभी भारतीय भाषाओं में पर्याप्त शैक्षिक संसाधनों की आवश्यकता होगी, फिर भी यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा गांधीजी के शिक्षा-दर्शन को आधुनिक संदर्भों में पुनर्जीवित करने का एक सशक्त एवं दूरदर्शी प्रयास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- महात्मा गांधी (1909), हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- महात्मा गांधी (1951), बुनियादी शिक्षा (नई तालीम), नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- महात्मा गांधी (1948), रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।
- जाकिर हुसैन (1938), Basic National Education, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा।
- जे. सी. कुमारप्पा (1951), Education for Life, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- विनोबा भावे (1962), शिक्षा विचार, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।
- काका कालेलकर (1964), गांधीजी की शिक्षा, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- एम. एस. पटेल (1953), The Educational Philosophy of Ma°tma Gandhi, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
- डी. एम. दत्ता (1961), The Philosophy of Ma°tma Gandhi, यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस।
- जे. पी. नाइक (1976), Education and Development, एलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- कृष्ण कुमार (2005), PoliticalAgenda of Education, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन तथा उसकी समकालीन युग में प्रासंगिकता का अध्ययन

किरण यादव
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू
प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

1. सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में महान शिक्षाशास्त्री, समाज सुधारिका, थियोसोफिस्ट और स्वतंत्रता सेनानी डॉ. एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है, साथ ही वर्तमान 21वीं सदी के वैश्विक परिदृश्य और भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के संदर्भ में उनके विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है।

डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक व आध्यात्मिक मूल्यों (सनातन आदर्शों) तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक व तकनीकी दृष्टिकोण का एक अनूठा समन्वय था। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा, व्यावहारिक कौशल, स्त्री शिक्षा और आत्म-अनुशासन पर विशेष बल दिया।

आज के अत्यधिक व्यावसायिक और तकनीकी युग में जहां मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है ऐसे में डॉ. एनी बेसेंट द्वारा प्रतिपादित 'मूल्य-आधारित शिक्षा' और 'वैश्विक बंधुत्व' की अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक है।

2. मुख्य शब्द : डॉ. एनी बेसेंट, शिक्षा दर्शन, समकालीन युग, प्रासंगिकता, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

3. प्रस्तावना :

डॉ. एनी बेसेंट (1847-1933) न केवल एक महान समाज सुधारिका, थियोसोफिस्ट और स्वतंत्रता सेनानी थीं, बल्कि वे एक दूरदर्शी शिक्षाशास्त्री भी थीं। भारत आगमन (1893) के बाद उन्होंने महसूस किया कि तत्कालीन ब्रिटिश शिक्षा पद्धति भारतीयों को केवल 'क्लर्क' बनाने और उनकी मौलिक सांस्कृतिक जड़ों से काटने का काम कर रही थी। इसके विरोध में उन्होंने एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की वकालत की जो भारतीय आत्मा (अध्यात्म व संस्कृति) को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीक को आत्मसात कर सके। उन्होंने 1898 में बनारस में 'सेंट्रल हिंदू कॉलेज' की स्थापना की, जो बाद में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का आधार बना।

4. शोध के उद्देश्य :

- डॉ. एनी बेसेंट के जीवन दर्शन और थियोसोफिकल विचारों के शैक्षिक आधार का अध्ययन करना।
- एनी बेसेंट के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों का अध्ययन करना।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) और वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ में उनके शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता का

अध्ययन करना।

5. डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन :

एनी बेसेंट मनुष्य को एक 'divine' (दिव्य) प्राणी मानती थीं। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ केवल सूचनाएं रटना नहीं, बल्कि बालक के भीतर छिपी आंतरिक शक्तियों को बाहर निकालना है। उनके दर्शन को चार मुख्य स्तंभों में समझा जा सकता है–

(क) शिक्षा के उद्देश्य :

आध्यात्मिक व नैतिक विकास :- शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य व्यक्ति में 'वसुधैव कुटुंबकम' और आत्म-नियंत्रण की भावना जगाना है।

शारीरिक विकास :- स्वस्थ शरीर के बिना मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति असंभव है। उन्होंने बच्चों के लिए खेलकूद और इंद्रिय-प्रशिक्षण (Senses Training) को अनिवार्य माना।

मानसिक व बौद्धिक विकास :- स्वतंत्र चिंतन और मौलिकता (Originality) को बढ़ावा देना, न कि रटने की प्रवृत्ति को।

सामाजिक व नागरिक कर्तव्य :- छात्रों में देशप्रेम, त्याग और समाज सेवा की भावना का संचार करना।

(ख) पाठयक्रम :

डॉ. एनी बेसेंट का पाठ्यक्रम बहुआयामी और लचीला था, जिसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश था–

धार्मिक और नैतिक शिक्षा :- डॉ. एनी बेसेंट संकीर्ण धार्मिक कट्टरता के खिलाफ थीं, लेकिन नैतिक मूल्यों के लिए 'सनातन धर्म' के मूल सिद्धांतों की शिक्षा को आवश्यक मानती थीं।

विज्ञान और तकनीकी शिक्षा :- डॉ. एनी बेसेंट ने पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं व्यावहारिक कौशल को उपयोगी माना है।

कला और इतिहास :- डॉ. एनी बेसेंट ने भारतीय इतिहास, गौरवशाली संस्कृति और कलात्मक अभिरुचि का विकास को उपयोगी माना है।

(ग) शिक्षण पद्धति :

मातृभाषा में शिक्षा :- उनका दृढ़ विश्वास था कि मातृभाषा में दी गई शिक्षा ही हृदयग्राही और जीवंत होती है। विदेशी भाषा का थोपा जाना बुद्धि को कुंठित करता है।

आत्म-अनुशासन विधि :- वे शारीरिक दंड के सख्त खिलाफ थीं। अनुशासन आंतरिक होना चाहिए, जो प्रेम और सहानुभूति से उपजे।

6. डॉ. एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन की समकालीन युग में प्रासंगिकता :

डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन केवल उनके समय के लिए नहीं था, बल्कि आज के आधुनिक और तेजी से बदलते समाज में भी उतना ही प्रासंगिक है। आज के संदर्भ में उनके शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता को हम इन मुख्य बिंदुओं के जरिए समझ सकते हैं–

सर्वांगीण विकास पर बल :-एनी बेसेंट ने 'मस्तिष्क, हाथ और हृदय' के विकास की बात कही थी। आज की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) भी इसी बात पर जोर देती है कि बच्चों का केवल मानसिक विकास न हो, बल्कि उनका शारीरिक, भावनात्मक और नैतिक विकास भी हो।

चरित्र निर्माण और नैतिक शिक्षा :- आज समाज में तकनीकी और आर्थिक प्रगति तो हो रही है, लेकिन नैतिक मूल्यों में गिरावट एक बड़ी चिंता है। एनी बेसेंट ने शिक्षा में धार्मिक और नैतिक मूल्यों को अनिवार्य माना था।

मातृभाषा में शिक्षा :- एनी बेसेंट ने पुरजोर वकालत की थी कि बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में होनी चाहिए, आज के शिक्षा शास्त्री भी इस बात को पूरी तरह स्वीकार करते हैं।

नारी शिक्षा और समानता :- उन्होंने उस दौर में महिलाओं की शिक्षा और समाज में उनकी बराबरी के हक की बात की थी, जब इसे बहुत कम समर्थन प्राप्त था। आज महिला सशक्तिकरण के दौर में उनके यह विचार हमें याद आते हैं।

निष्कर्ष :

डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन संकीर्णताओं से परे एक वैश्विक और मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वे अतीत के गौरव (भारतीय संस्कृति) और भविष्य की आवश्यकताओं (पाश्चात्य विज्ञान) के बीच एक मजबूत सेतु थीं। आज के तकनीकी और ए.आई. के युग में, जहां इंसान मशीन बनता जा रहा है, एनी बेसेंट की अध्यात्म, नैतिकता और मातृभाषा आधारित शिक्षा ही हमें वापस 'मानव' बनाए रखने और एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण में सबसे बड़ी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- www.google com
- प्रो. कृष्णमूर्ति ''विश्व-प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री'' सुरेन्द्र कुमार एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृं.सं. 184.
- कुमार मनोरंजन ''डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन'' International Journal of Research andAnalytical Review, Volume 4, Issue 2, पृं.सं. 110
- लाल एवं तोमर ''विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 245-246.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

ग्रामीण व शहरी अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

खुशबू कँवर
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू
प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र 'ग्रामीण व शहरी अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन' पर आधारित है। वर्तमान तकनीकी और वैश्वीकरण के दौर में बदलते सामाजिक परिवेश का शिक्षकों के नैतिक मूल्यों पर क्या प्रभाव पड़ा है

यह शोध पत्र बताता है कि ग्रामीण क्षेत्र के शिक्षकों में पारंपरिक व सामाजिक नैतिक मूल्य अधिक गहरे हैं, जबकि शहरी शिक्षकों में व्यावसायिकता ज्यादा दिखती है हालांकि शिक्षक पुरुष हो या महिला, दोनों के नैतिक मूल्यों में कोई खास अंतर नहीं होता। आधुनिक दौर में जहाँ शहरी शिक्षकों को पारंपरिक मूल्यों से जुड़ने की जरूरत है, वहीं ग्रामीण शिक्षकों को डिजिटल युग के नए नैतिक मानकों को सीखने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : ग्रामीण, शहरी, अध्यापक,-अध्यापिका, नैतिक मूल्य।

1. प्रस्तावना :

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के निर्माण की नींव होती है और शिक्षक उस नींव का मुख्य वास्तुकार होता है। एक शिक्षक न केवल ज्ञान का प्रसार करता है, बल्कि समाज में नैतिक मूल्यों का बीजारोपण भी करता है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के कारण समाज की संरचना तेजी से बदल रही है। ऐसे में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के परिवेश, संस्कृति और जीवनशैली में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है। यह शोध ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कार्यरत अध्यापक,-अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों, जैसे ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, न्यायप्रियता और सामाजिक उत्तरदायित्व का तुलनात्मक विश्लेषण करता है।

2. शोध के उद्देश्य :

- ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
- शहरी क्षेत्र के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का मूल्यांकन करना।
- ग्रामीण और शहरी शिक्षकों के नैतिक मूल्यों के बीच अंतर का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
  लिंग के आधार पर (अध्यापक बनाम अध्यापिका) नैतिक मूल्यों में भिन्नता का पता लगाना।

3. शोध परिकल्पना :

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के शिक्षकों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- ग्रामीण व शहरी अध्यापकों और अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों में लिंग के आधार पर कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाता है।

4. शोध विधि :

इस अध्ययन में वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

5. न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध हेतु जयपुर जिले के 20 स्कूलों से कुल 200 शिक्षकों (100 ग्रामीण और 100 शहरी) का यादृच्छिक चयन किया गया, जिसमें पुरुष और महिला शिक्षक समान संख्या में शामिल थे।

6. उपकरण :

शिक्षकों के नैतिक मूल्यों को मापने के लिए मानकीकृत 'नैतिक मूल्य प्रश्नावली' का उपयोग किया गया।

7. सांख्यिकीय विश्लेषण :

आंकड़ों के विश्लेषण के लिए माध्य (Mean), मानक विचलन (S.D) और टी-परीक्षण (t-Test) का उपयोग किया गया।

8. आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों का संक्षिप्त विवरण नीचे तालिका में प्रस्तुत है -

वर्ग/समूह (Group)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (SD)
ग्रामीण शिक्षक	100	78.50	8.20
शहरी शिक्षक	100	72.50	9.40
अध्यापक (पुरुष)	100	74.30	8.90
अध्यापिका (महिला)	100	76.30	8.50

ग्रामीण शिक्षकों का माध्य स्कोर (78.50) तथा शहरी शिक्षकों का माध्य स्कोर (72.10) से अधिक पाया गया, जो दर्शाता है कि ग्रामीण परिवेश में पारंपरिक नैतिक मूल्यों और सामुदायिक जुड़ाव का प्रभाव अधिक है।

लिंग के आधार पर (t=k1.20 जो कि असार्थक है) पुरुष और महिला शिक्षकों के नैतिक मूल्यों में कोई बड़ा या खास अंतर नहीं देखा गया।

निष्कर्ष :

इस तुलनात्मक अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि भौगोलिक परिवेश (ग्रामीण और शहरी) शिक्षकों के नैतिक मूल्यों को प्रभावित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षकों में सामाजिक जुड़ाव, सांस्कृतिक संरक्षण और संतोष की भावना अधिक पाई गई, जबकि शहरी शिक्षकों में व्यावसायिकता, आधुनिकता और समयबद्धता के प्रति अधिक सजगता देखी गई। हालांकि,

लिंग के आधार पर नैतिक मूल्यों में कोई बड़ा अंतर नहीं है, जिससे सिद्ध होता है कि शिक्षण के प्रति निष्ठा दोनों में समान है।

7. सुझाव :

- शहरी क्षेत्रों के स्कूलों में भी शिक्षकों और छात्रों के बीच मानवीय व नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए।
- ग्रामीण शिक्षकों को आधुनिक तकनीकी और वैश्विक नैतिक मानकों (जैसे- डिजिटल एथिक्स) से अवगत कराया जाना चाहिए।
- शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों (ठण्म्कध्क्ण्म्स.म्क) के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के व्यावहारिक पहलुओं को और अधिक सुदृढ़ किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- गुप्ता, एस. पी. (2021) : ''आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान और मापन'' शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- पाण्डेय रामशकल (2016) : ''समकालीन भारत और शिक्षा'' अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
- शर्मा, आर. ए. (2019) : शिक्षा के दार्शनिक और सामाजिक आधार. मेरठः आर. लाल बुक डिपो।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) की मूल्य शिक्षा मार्गदर्शिका।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारतीय दलीय प्रणाली : स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात

डॉ. गायत्री देवी
अतिथि प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश—भारत जनतंत्र की जन्मभूमि है, जहां राजतंत्र का पूर्ण वैभव रहा है साथ ही साथ जनतांत्रिक व्यवस्था को भी स्वीकार किया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन से यह पता चलता है कि आरंभ से ही जनता की रुचि को जानने का प्रचलन रहा है परन्तु अंतिम निर्णय सत्ताधारियों द्वारा ही लिया जाता रहा है। आचार्य चाणक्य जैसे विद्वान एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि जनमत राजमत से ऊपर है।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय राजव्यवस्था में कांग्रेस जैसे दलों की उपस्थिति दिखाई देती है। जिसकी स्थापना डैमेज कंट्रोल के रूप में हुई थी लेकिन यह दल आजादी के बाद भी एक बड़े दल के रूप सामने उपस्थित हुआ और बीसवीं सदी नवें दशक तक एक छत्र राज किया।

वर्तमान समय में भारत की शासन प्रणाली में भारतीय जनता पार्टी का वर्चस्व है जिसने भारत को एक सुदृढ़ नेतृत्व प्रदान करने का कार्य किया है। नये-नये दलों के गठन के कारण जहां शासन में निरंकुशता समाप्त होती वहीं एक सुशासन स्थापित होता है।

मूल शब्द- लोकतंत्र, दल, आजादी पूर्व, आजादी पश्चात्, कांग्रेस, उपनिषद्, अर्थशास्त्र।

प्रस्तावना- भारत विश्व का सबसे बड़ा एवं प्राचीन लोकतान्त्रिक देश है। जहाँ की उर्वरा भूमि में सदियों पहले लोकतन्त्र के बीज रोपे गये थे, जो वर्तमान में एक विशाल वृक्ष के रूप में सामने उपस्थित है। लोकतन्त्र की स्थापना के लिए जो सर्वाधिक आवश्यक है वह है चयन या चुनाव प्रक्रिया। सामान्य तौर पर चुनाव प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र अथवा समुदाय विशेष के व्यक्ति अपना प्रतिनिधि स्वयं बिना किसी दबाव के पूर्णतः निष्पक्ष रूप से चयनित करते हैं। चुनाव की यह प्रक्रिया विभिन्न माध्यमों से सम्पन्न की जाती है।

वर्तमान समय में भारत में प्रतिनिधि चयन या चुनाव की प्रक्रिया अत्यन्त सरल एवं शीर्घ सम्पन्न होने वाली प्रक्रिया बन चुकी है। परन्तु यह प्रक्रिया प्राचीन समय से ही सम्पन्न होने वाली है तब प्रतिनिधियों का चुनाव बहुत ही अनोखे ढंग से समपन्न हेाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। ऐसे तरीकों में कहकर मत देना, गुप्त मतदान करना और खुला मतदान करना जैसे तरीके थे, जो विभिन्न अवसरों पर अपनाएँ जाते थे। प्राचीन यूनान और इटली जैसे देशों में बहुत समय पूर्व ही प्रत्येक्ष मतदान की व्यवस्था थी। प्राचीन कालीन भारत मैं भी अनेक राजा गम्भीर विषयों पर अपने निर्णय लेने से पहले जनसाधारण की राय लेना को प्रमुखता देते थे। राय प्राप्ति भी एक प्रकार की चुनावी प्रक्रिया ही थी। परन्तु अधिकतर स्थानों पर यह प्रक्रिया मौखिक ढंग से ही सम्पन्न की जाती थी। वहाँ पर मतपत्र जैसी अवधारणाओं से लोग अनभिज्ञ थे फिर भी किसी न किसी से प्रकार चयन प्रक्रिया सम्पन्न की जाती थी। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय दलीय स्थिति को वर्णित किया गया है।

भारत में लोकतांत्रिकता- भारत के प्राचीनतम् लिखित इतिहास के आरम्भिक काल को वैदिक काल कहा जाता है। ईसा पूर्व पन्द्रहवी शताब्दी में दक्षिण मध्य एशिया से धीरे-धीरे आर्यों के कबीले बहुसंख्यक रूप में भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरीय और पश्चिमी भागों में बसने लगे थे। उन्होने इन हिस्सों के मूल निवासियों को दक्षिण की ओर भगा दिया था। प्राचीन भारत में शासक गण 'धर्म' से शासन करते थे, कोई भी राजा धर्म की अवहेलना नहीं कर सकता था। ऐसे कई प्रमाण सामने आयें हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पुराने भारतीय समाज में गणतन्त्रीय शासन प्रणाली प्रतिनिधि विचार मण्डल तथा स्थातीय स्वशासी संस्थाएँ कई भागों में स्थापित थीं।

भारत का वैदिक काल आर्यों की सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का परिचायक है। ''वैदिक काल में एक गण (एक जनजातीय संगठन) का राजागण (संगठन) द्वारा चुना गया था। राजा हमेशा क्षत्रीय वर्ग (योद्धा वर्ग) से सम्बन्धित होता था और आमतौर पर राजा का पुत्र होता था। हाँलाकि उनके पद पर गण सदस्यों का अन्तिम अधिकार था।"[1]

भारत वर्ष में वैदिककाल तक नगर राज्यों के स्थान पर लोकतन्त्र या प्रजातन्त्र राज्यों की स्थापना के दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद तथा अथर्वेद में सभा (साधारण सभा) तथा समिति (वयोवृद्धों की सभा) का वर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन वैदिक साहित्य में ऐसी अवधारणा विकसित है कि ''भारतीय राजनीति का प्रारम्भ प्रजातन्त्र राज्यों से हुआ।"[2] ऐतरेय ब्राह्मण उपनिषद, पाणिनी की अष्टाध्यायी, चाणक्य का अर्थशास्त्र, महाभारत, अशोक के स्तंभों पर खुदे लेख, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ, मनु स्मृति इस बात के प्रमाण है कि भारतीय इतिहास के वैदिककाल के उपरान्त समय में कई सक्रिया गणतन्त्र स्थापित थे।

प्राचीन भारतीय व्यवस्था 'नीति संहिता' पर टिकी थी, ''जिसके केन्द्र में धार्मिक अवधारणा थी कोई भी एक पूर्ण संहिता नहीं थी धर्म का उल्लंधन करने वालों को पंच सजा सुनाते थे।''[3]

एक राजनीतिक दल सम्पूर्ण राष्ट्र में चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, एक रूपता के साथ अपने विचारधारा के अनुरूप नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन करता है। मदन गोपाल गुप्ता के अनुसार- ''राजनीतिक दल संगठित सहयोग का नाम है।''[4]

मैकाइवर के अनुसार- ''राजनीतिक दल वह समुदाय है जो किसी विशेष सिद्धान्त या नीति के समर्थन के लिए संगठित किया गया हो और जो संवैधानिक उपायों से उस सिद्धान्त अथवा नीति का शासन का आधार बनाने का प्रयत्न करता है।''[5]

राबर्ट एन. गिलक्राइस्ट ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल ऑफ पालिटिकल सांइस (1921)' में कहा है कि ष्राजनीतिक दल को नागरिकों के उस संगठित समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो समान राजनीतिक विचार रखते हैं तथा जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में सरकार पर नियंत्रण का प्रयास करते हैं।''[6]

राजनीतिक दल व्यक्तिवाद के स्थान पर वस्तुवाद का समर्थन तथा राष्ट्रहित को हयान में रखकर कार्य करते हैं। इनके अभाव में व्यक्तिवाद का विकास होता है जो अंततः तानाशाही का रूप ले लेता है जो किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा खतरा प्रमाणित होता है।

आजादी के पहले दल- भारत में राजनीतिक दलों की स्थिति स्वतन्त्रता से पूर्व ही बनने लगी थी। देश में राजनीतिक दलों का विधिवत स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से स्वीकार किया जाता है। हालांकि प्रारम्भ में कांग्रेस एक राजनीतिक दल न होकर दबाव गुट के रूप में था। सन् 1885 में कांग्रेस का निर्माण इसी रूप में किया गया था। कांग्रेस के संदर्भ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का विचार द्रष्टव्य है-

''कांग्रेस एक धर्मशाला के समान है जो मूर्खों, धूर्तों, मित्र और शत्रु, सम्प्रदायों और धर्म निरपेक्ष, सुधारवादी तथा कट्टरपंथी, पूँजीपति और पूँजीवादी विरोधी सभी लोगों के लिए खुली है।''[7]

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में द्वितीय राजनीतिक दल की स्थापना सन् 1906 में की गयी, जो एक साम्द्रायिक संगठन था इसका नाम मुस्लिम लीग रखा गया था। इसी दल के प्रतिक्रिया स्वरूप एक अन्य साम्प्रदायिक संगठन हिन्दू महासभा का गठन सन् 1916 में किया गया। इस दल का उद्देश्य पूर्ण स्वराज की प्राप्ति और हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना था।

सन् 1924 में साम्यवादी दल का गठन किया। गया जिसे 1934 में गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया था। परन्तु

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह प्रतिबन्ध पूर्णतः हटा दिया गया था। 1934 ई. में समाजवादी दल कांग्रेस की एक शाखा के रूप में कार्यरत था जो 1948 तक रहा किन्तु एक प्रस्ताव के माध्यम से कांग्रेस ने यह घोषित किया कि उसके अन्दर कोई भी अन्य पार्टियाँ नहीं रहेंगी तब यह पृथक दल के रूप में कार्य करने लगा था। स्वतन्त्रता से पूर्व उपरोक्त प्रमुख राजनीतिक दलों के अतिरिक्त विभिन्न प्रदेशों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की भी स्थापनों की गयी। इन दलों में उत्तर प्रदेश में कृषक पार्टी, पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी, चेन्नई में जस्टिस पार्टी आदि का नाम लिया जाता है।

आजादी के बाद दल- जब 1947 ई. में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उसके पश्चात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक राजनीतिक दल का रूप ग्रहण किया। स्वतन्त्रता के समय भारत में दो राष्ट्रीय दल विद्यमान थे- प्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जिसका व्यापक स्तर पर संगठन था। द्वितीय साम्यवादी दल जो एक सीमित स्तर पर काम कर रहा था। तत्पश्चात् धीरे-धीरे अन्य दलों का विकास हुआ। स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रीय स्तर का प्रथम राजनीतिक दल जनसंघ है जिसकी स्थापना सन् 1951 में हुई। इस पार्टी का सिद्धान्त समाजवादी पार्टी और कांग्रेस दोनों के सिद्धान्तों से भिन्न था। सन् 1949 में डी. एम. के. 1950 में भारतीय समाजवादी दल और किसान-मजदूर प्रजा पार्टी का गठन हुआ था। सन् 1952 के चुनावों में राष्ट्रीय स्तर के 14 तथा प्रादेशिक स्तर के 51 दलों ने भाग लिया था।

सन् 1979 को जनता पार्टी में विभाजन के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय स्तर समाप्त हो गया था। 1980 में इस पार्टी को भारतीय जनता पार्टी कहा जाने लगा था और सन् 1996 के लोकसभा चुनाव में चुनाव आयेगा द्वारा 14 दलों को राष्ट्रीय दल की मान्यता दी गयी थी, जबकि सम्पूर्ण देश में 462 ऐसी राजनीतिक पार्टियाँ थीं, जिन्हें अखिल भारतीय पार्टी के रूप में मान्यता नहीं दी गयी थी।

इस प्रकार भारतीय लोकतान्त्रिक इतिहास में दलों की स्थिति अत्यन्त ही सुदृढ दिखाई देती है। राजनीतिक दलों की दृष्टि से सन् 1885 से लेकर अब तक भारतीय राजनीतिक पटल पर कई दलों का विकास हुआ तथा कई दल लुप्त हुए और दलों में निजी हितों तथा सरकार बनाने के लिए मिलकर कई गठबन्धन भी तैयार किये जिनके माध्यम से लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली संचालित हुई।

निष्कर्ष : इस प्रकार भारतीय लोकतान्त्रिक व्यवस्था में दलों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिनके बिना शासन के सुचारू संचालन की कल्पना अधूरी है। भारत में बहुदलीय व्यवस्था है जिसके कारण समय-समय पर सत्ता का हस्तांतरण होना रहता है और भारतीय लोकतंत्र मजबूत बनता है।

संदर्भ सूची

1. एरिक, डब्ल्यू रॉबिन्सन, प्रथम लोकतन्त्र : एथेंस के बाहर प्रारम्भिक लोकप्रिय सरकार, फ्रान्ज सटीनर वेराल, 1997, पृ.-22-23.
2. अग्रवाल, आर. सी. और भटनागर डॉ. महेश, भारतीय संविधान का विकास और राष्ट्रीय आंदोलन, यश चन्द्र एंड कंपनी लि., आगरा, 2017, पृ.-388.
3. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान, द्वितीय संस्करण, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011, पृ.-08.
4. सिंघल, डॉ. सुरेश चन्द्र, भारतीय शासन एवं राजनीति, षष्ठम् संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृ. -251.
5. वही.
6. अवस्थी, डॉ. ए. पी., भारतीय शासन एवं राजनीति, षष्ठम् संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृ.-333 में उद्धृत।
7. सिंहल, डॉ.,एस.सी., भारतीय शासन एवं राजनीतिक, षष्ठम् संस्करण, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशन आगरा, 2016, पृ.-255 में उद्धृत।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विषयानुसार पाठ्यक्रम का उनकी शैक्षिक उपलब्धि एवं नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

नेहा शेखावत
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू
प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के विषयानुसार पाठ्यक्रम का उनकी शैक्षिक उपलब्धि और नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में केवल अंक अर्जित करने पर बल दिया जा रहा है, जिससे विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास और नैतिक उत्थान में कमी देखी जा रही है। इस शोध पत्र में वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का यादृच्छिक प्रतिदर्श का प्रयोग किया गया है।

शोध पत्र के निष्कर्ष बनाते हैं कि पाठयक्रम की प्रकृति का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के साथ-साथ उनके नैतिक विकास पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। कला वर्ग के विद्यार्थियों में सामाजिक व नैतिक मूल्यों के प्रति संवेदनशीलता अधिक पाई गई, जबकि विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में तार्किक क्षमता और शैक्षिक उपलब्धि (अंकों के संदर्भ में) का स्तर बेहतर देखा गया। शोध के अंत में एक संतुलित पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया गया है जो ज्ञान के साथ-साथ चरित्र निर्माण में भी सहायक हो।

तकनीकी शब्दावली : माध्यमिक स्तर, अध्ययनरत विद्यार्थी, विषयानुसार पाठ्यक्रम, शैक्षिक उपलब्धि एवं नैतिक मूल्य।

1. प्रस्तावना :

किसी भी राष्ट्र के विकास की नींव उसकी भावी पीढ़ी और उन्हें मिलने वाली शिक्षा पर टिकी होती है। माध्यमिक स्तर (कक्षा 9 से 12) विद्यार्थी के जीवन का वह संधिकाल या महत्वपूर्ण पड़ाव होता है, जहाँ वह न केवल अपने करियर की दिशा तय करता है, बल्कि उसके व्यक्तित्व और नैतिक दृष्टिकोण का भी तेजी से विकास होता है। इस स्तर पर विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार अलग-अलग विषयों (विषयानुसार पाठ्यक्रम) का चयन करते हैं।

वर्तमान समय में हमारी शिक्षा व्यवस्था के सामने दो मुख्य चुनौतियाँ हैं–

शैक्षिक उपलब्धि :- शैक्षिक उपलब्धि, जिसे आमतौर पर परीक्षा में प्राप्त अंकों और शैक्षणिक प्रदर्शन से मापा जाता है। आज का माहौल अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है।

नैतिक मूल्य :- नैतिक मूल्य जैसे ईमानदारी, राष्ट्रप्रेम, सहानुभूति, सम्मान और सामाजिक जिम्मेदारी। वैश्वीकरण और तकनीकी विस्तार के इस दौर में नैतिक मूल्यों में लगातार गिरावट एक चिंता का विषय बनी हुई है।

2. शोध के उद्देश्य :

- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के विषयानुसार पाठ्यक्रम (विज्ञान, कला, वाणिज्य) और उनकी शैक्षिक उपलब्धि के बीच संबंध का अध्ययन करना।
- अलग-अलग पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों (जैसे सामाजिक उत्तरदायित्व, ईमानदारी, सहयोग की भावना) के स्तर का आकलन और तुलना का अध्ययन करना।

3. शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

4. न्यादर्श :

अध्ययन के लिए यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि द्वारा माध्यमिक विद्यालयों के 150 विद्यार्थियों (50 विज्ञान, 50 कला, 50 वाणिज्य) का चयन किया गया।

5. अध्ययन के उपकरण :

- विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के मापन हेतु मानक 'नैतिक मूल्य अनुसूची' का प्रयोग किया गया है।
- शैक्षिक उपलब्धि के लिए विद्यार्थियों के विगत बोर्ड व वार्षिक परीक्षा के अंकों का उपयोग किया गया।

6. सांख्यिकीय विश्लेषण :

आंकड़ों के विश्लेषण के लिए माध्य (डमंद), प्रमाणिक विचलन ैक) तथा 'टी-परीक्षण' (ज.ज्मेज) एनोवा (।छव्ट ।) का प्रयोग किया गया।

7. प्रदत्त विश्लेषण एवं मुख्य निष्कर्ष :

शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में :- विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के अनुसार, विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की औसत शैक्षिक उपलब्धि (अंक प्रतिशत) कला वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में उच्च पाई गई। इसमें पाठ्यक्रम की तकनीकी व व्यावहारिक प्रकृति और भविष्य के करियर के अवसरों का प्रभाव देखा गया।

नैतिक मूल्यों के संदर्भ में :- नैतिक मूल्यों के पैमाने पर कला वर्ग के विद्यार्थियों ने विज्ञान और वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए। साहित्य, इतिहास और नागरिक शास्त्र जैसे विषयों के अध्ययन से उनमें सहानुभूति, सामाजिक सरोकार और मानवीय मूल्यों के प्रति जुड़ाव अधिक पाया गया।

सह-संबंध :- शोध में यह भी संकेत मिला कि अत्यधिक अंक केंद्रित पाठ्यक्रम और तीव्र प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के कारण कभी-कभी विद्यार्थियों में नैतिक मूल्यों और सहयोगात्मक भावना में कमी आने लगती है।

8. शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव :

एकीकृत पाठ्यक्रम :- माध्यमिक स्तर पर विज्ञान और वाणिज्य के पाठ्यक्रम में भी अनिवार्य रूप से मूल्य-परक

शिक्षा, साहित्य और नैतिक विचारों को स्थान दिया जाना चाहिए, जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) में भी अनुशंसित है।

मूल्यांकन पद्धति में बदलाव :- विद्यार्थियों का मूल्यांकन केवल उनके लिखित परीक्षा के अंकों (शैक्षिक उपलब्धि) के आधार पर न होकर उनके व्यावहारिक व्यवहार, अनुशासन और नैतिक आचरण के आधार पर भी होना चाहिए।

सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ :- विद्यालयों में निरंतर समाज सेवा (NSS), नैतिक कार्यशालाओं और मूल्य-आधारित नाटकों का आयोजन किया जाना चाहिए ताकि सभी वर्गों के विद्यार्थियों का संतुलित विकास हो सके।

निष्कर्ष :

माध्यमिक स्तर पर विषयानुसार पाठ्यक्रम न केवल विद्यार्थियों की शैक्षणिक दिशा तय करता है, बल्कि उनके चरित्र और नैतिक मूल्यों को भी अनजाने में प्रभावित करता है। आज की शिक्षा व्यवस्था को एक ऐसे संतुलन की आवश्यकता है जहाँ विज्ञान वर्ग का विद्यार्थी संवेदनशील और नैतिक बन सके, तथा कला वर्ग का विद्यार्थी तार्किक और उच्च शैक्षणिक प्रदर्शन कर सके। एक आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए शैक्षिक उपलब्धि और नैतिक मूल्य दोनों का समानांतर विकास अनिवार्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- गुप्ता, एस. पी., एवं गुप्ता, ए. (2020). उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं उनके नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन. शिक्षा अनुसंधान पत्रिका, पृ. सं.45-52.
- Kumar, M. (2023). Subject-wise curriculum analysis and its relationship with moral values among adolescents. Journal of Adolescent Education and Development, 8(3), 114-125
- मिश्र, के. एस. (2019). माध्यमिक विद्यालयी पाठ्यक्रम एवं मूल्य शिक्षा. आलोक प्रकाशन, नई दिल्ली
- शर्मा, आर. ए. (2021). शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार और मूल्य विकास. आर लाल बुक डिपो, मेरठ

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

विनोबा भावे का शिक्षा दर्शन तथा उसकी वर्तमान युग में उपादेयता

रेणु चौधरी
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

श्रीमती अन्जू चंदेल
सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

1. सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र में विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों, उनके मुख्य सिद्धांतों और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के संदर्भ में उनकी वर्तमान उपादेयता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। आचार्य विनोबा भावे केवल एक महान स्वतंत्रता सेनानी और भूदान आंदोलन के प्रणेता ही नहीं थे, बल्कि एक मौलिक शिक्षा विचारक भी थे। उनका शिक्षा दर्शन महात्मा गांधी के 'बुनियादी शिक्षा' (नई तालीम) का ही संवर्धित और व्यावहारिक रूप है। विनोबा जी शिक्षा को जीवन से अलग नहीं मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा 'जीवन के लिए, जीवन के द्वारा और जीवन भर' चलने वाली प्रक्रिया है। वर्तमान 21 वीं सदी में जब संपूर्ण विश्व नैतिक पतन, अत्यधिक भौतिकवाद, मानसिक तनाव तथा बेरोजगारी जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा है, तब विनोबा जी का शिक्षा दर्शन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

2. मुख्य शब्द : विनोबा भावे, शिक्षा दर्शन, नई तालीम, वर्तमान युग, उपादेयता, नैतिक शिक्षा।

3. प्रस्तावना :

हमारी भारतीय चिंतन परंपरा में शिक्षा को केवल जीविकोपार्जन का साधन न मानकर 'सा विद्या या विमुक्तये' (विद्या वह है जो विमुक्त करे) माना गया है। आधुनिक युग में इस विचार को व्यावहारिक रूप देने वाले मनीषियों में आचार्य विनोबा भावे का नाम अग्रगण्य है। विनोबा जी का सोचना था कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली केवल बुद्धि का विकास करती है, हृदय का नहीं। वर्तमान शिक्षा शिक्षार्थी को समाज से काटने का कार्य करती है।

विनोबा जी ने शिक्षा को स्वायत रखने पर बल दिया ताकि इस पर किसी राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव न पड़े। आज के तकनीकी और व्यावसायिक युग में जहाँ शिक्षा एक उत्पाद बन चुकी है, वहाँ विनोबा जी के मानवीय और आध्यात्मिक शैक्षिक मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

4. विनोबा भावे के शिक्षा दर्शन के मूल सिद्धांत

विनोबा जी का शिक्षा दर्शन निम्नलिखित तीन स्तंभों पर टिका है–

ज्ञान और कर्म का समन्वय :- विनोबा भावे जी के अनुसार ज्ञान और कर्म (काम) अलग नहीं हैं। उन्होंने कहा कि ''उद्योग (श्रम) के माध्यम से ही ज्ञान दिया जाना चाहिए।'' केवल किताबी ज्ञान मनुष्य को परजीवी बनाता है।

शिक्षण पद्धति :- 'संयोग' और 'सहजता': उन्होंने किसी कृत्रिम पद्धति के बजाय 'संयोग' पद्धति का समर्थन किया। अर्थात जब बालक कोई व्यावहारिक कार्य (जैसे- कृषि, कताई, भोजन बनाना) कर रहा हो, उसी समय उससे जुड़े विज्ञान, गणित और भूगोल का ज्ञान सहज रूप से दिया जाए।

त्रि-सूत्रीय शिक्षा :- विनोबा भावे जी ने निम्न तीन त्रि-सूत्रीय शिक्षा सूत्रों पर बल दिया–

योग : मानसिक और आध्यात्मिक विकास।

उद्योग : शारीरिक श्रम और कौशल विकास।

सहयोग : समाज के प्रति संवेदनशीलता और साम्यवादी दृष्टिकोण।

5. वर्तमान युग में विनोबा के शिक्षा दर्शन की उपादेयता :

आज की शिक्षा प्रणाली जिन चुनौतियों का सामना कर रही है, उनका समाधान विनोबा जी के विचारों में निहित है–

कौशल विकास और आत्मनिर्भरता :- आज देश में डिग्रियों की भरमार है, लेकिन युवाओं में व्यावहारिक कौशल की कमी है जिससे बेरोजगारी बढ़ रही है। विनोबा जी की 'स्वावलम्बी शिक्षा' यह सिखाती है कि शिक्षा ऐसी हो जो छात्र को आत्मनिर्भर बनाए। वर्तमान सरकार का 'स्किल इंडिया' अभियान और व्यावसायिक शिक्षा का विचार विनोबा जी के श्रम-केंद्रित शिक्षा मॉडल से ही प्रेरित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के साथ साम्यता :- भारत की नई शिक्षा नीति (2020) में जिन मुख्य बिंदुओं पर जोर दिया गया है, वे विनोबा जी के दर्शन के बेहद करीब हैं। विनोबा जी का स्पष्ट मत था कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए ताकि बालक का स्वाभाविक विकास हो सके। ज्ञान को रटने के बजाय व्यावहारिक अनुप्रयोग पर बल देना।

नैतिक और आध्यात्मिक संकट का समाधान :- आधुनिक युवा अवसाद, हिंसा और अनैतिकता की ओर बढ़ रहा है। विनोबा जी ने शिक्षा में 'आत्मज्ञान' और विज्ञान के समन्वय पर बल दिया था। उनका प्रसिद्ध सूत्र था–

विज्ञान + आत्मज्ञान = सर्वोदय (सबका उदय)

यदि विज्ञान को आत्मज्ञान (नैतिकता) का साथ नहीं मिला, तो वह विनाश का कारण बनेगा। आज के युग में नैतिक शिक्षा के रूप में इसकी महती आवश्यकता है।

पर्यावरण और प्रकृति से जुड़ाव :-विनोबा जी की शिक्षा प्रकृति की गोद में, कृषि और पर्यावरण के सानिध्य में पूरी होती थी। आज ग्लोबल वॉर्मिंग और पर्यावरणीय संकट के दौर में छात्रों को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाना अनिवार्य है, जो विनोबा जी के दर्शन का मूल तत्व है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आचार्य विनोबा भावे का शिक्षा दर्शन भूतकाल की वस्तु नहीं, बल्कि भविष्य का मार्गदर्शक है। उनकी शिक्षा केवल साक्षर बनाने का उपक्रम नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के 'शील' (चरित्र) का निर्माण करती है। वर्तमान युग की यांत्रिक और उद्देश्यहीन शिक्षा प्रणाली को यदि सार्थकता प्रदान करनी है, तो हमें विनोबा जी के 'ज्ञान-कर्म समन्वय', 'श्रम के प्रति सम्मान' और 'नैतिकता' के सिद्धांतों को प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक अनिवार्य रूप से लागू करना होगा। तभी एक स्वस्थ, आत्मनिर्भर और समतामूलक समाज (सर्वोदय) का निर्माण संभव है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो. कृष्णमूर्ति ''विश्व-प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री'' सुरेन्द्र कुमार एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृं.सं. 184.
- www.google.com
- लाल एवं तोमर ''विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 245-246.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

दिव्यांग विमर्श और भारतीय दार्शनिक परम्परा : अष्टावक्र महाकाव्य के संदर्भ में

शिवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट
Mob: 9919881145
Email : jaishreekamtanath@gmail.com

शोध सारांश : समकालीन साहित्यिक और सामाजिक परिदृश्य में दिव्यांग विमर्श एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक विमर्श के रूप में स्थापित हुआ है। यह विमर्श दिव्यांग व्यक्तियों को केवल सहानुभूति या करुणा का विषय मानने के बजाय उनके अधिकारों, गरिमा, अस्मिता और सामाजिक सहभागिता पर बल देता है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में भी मनुष्य की श्रेष्ठता का आधार उसके शारीरिक स्वरूप को नहीं, बल्कि उसके ज्ञान, चेतना और आत्मबोध को माना गया है। इस दृष्टि से अष्टावक्र महाकाव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इसके नायक अष्टावक्र शारीरिक विकृति के बावजूद अपनी विलक्षण प्रतिभा, आत्मविश्वास और आध्यात्मिक ज्ञान के माध्यम से मानवीय गरिमा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में दिव्यांग विमर्श की सैद्धान्तिक अवधारणा तथा भारतीय दार्शनिक परम्परा के आलोक में अष्टावक्र महाकाव्य का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि अष्टावक्र का व्यक्तित्व शारीरिक सीमाओं से परे जाकर ज्ञान, आत्मसम्मान और आत्मबोध की सर्वोच्च अभिव्यक्ति के रूप में सामने आता है। महाकाव्य में निहित दार्शनिक चेतना यह स्थापित करती है कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके बाह्य रूप में नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक क्षमता और वैचारिक ऊँचाई में निहित है। इस प्रकार यह शोध भारतीय चिंतन परम्परा और समकालीन दिव्यांग विमर्श के मध्य एक सार्थक संवाद स्थापित करते हुए समावेशी एवं मानवीय समाज की अवधारणा को सुदृढ़ करता है।

बीज शब्द : दिव्यांग विमर्श, अष्टावक्र महाकाव्य, भारतीय दार्शनिक परम्परा, आत्मबोध, अस्मिता, आत्मसम्मान, समावेशिता, सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा, दिव्यांग चेतना।

प्रस्तावना : आधुनिक हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्शों के माध्यम से उन समुदायों और वर्गों की आवाज़ को अभिव्यक्ति प्रदान की जा रही है, जो लंबे समय तक सामाजिक एवं साहित्यिक उपेक्षा के शिकार रहे हैं। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श की तरह ही दिव्यांग विमर्श भी समकालीन साहित्यिक चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम बनकर उभरा है। यह विमर्श दिव्यांग व्यक्तियों को दया, करुणा अथवा परोपकार के विषय के रूप में देखने की परम्परागत मानसिकता का विरोध करते हुए उनके अधिकार, स्वाभिमान, अस्मिता और सामाजिक सहभागिता पर बल देता है। वर्तमान संदर्भ में दिव्यांगता को केवल शारीरिक या मानसिक अक्षमता तक सीमित नहीं माना जाता, बल्कि उसे सामाजिक संरचनाओं, पूर्वाग्रहों और अवसरों की असमानता से भी जोड़कर देखा जाता है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में मनुष्य के मूल्यांकन का आधार उसके शारीरिक स्वरूप के स्थान पर उसकी चेतना, ज्ञान

और आत्मबोध को माना गया है। उपनिषदों, वेदान्त तथा अन्य दार्शनिक ग्रंथों में आत्मा की सार्वभौमिकता और मानव-मात्र की समानता का प्रतिपादन मिलता है। इसी परम्परा के एक विशिष्ट प्रतिनिधि अष्टावक्र हैं, जिनका व्यक्तित्व भारतीय ज्ञान-संस्कृति में अद्वितीय स्थान रखता है। शरीर के आठ अंगों में विकृति होने के कारण वे सामाजिक दृष्टि से दिव्यांग थे, किन्तु अपने असाधारण ज्ञान, तर्कशक्ति और आध्यात्मिक दृष्टि के कारण उन्होंने स्वयं को एक महान दार्शनिक के रूप में स्थापित किया। उनका जीवन इस तथ्य का प्रमाण है कि शारीरिक सीमाएँ मनुष्य की प्रतिभा, ज्ञान और आत्मिक सामर्थ्य को बाधित नहीं कर सकतीं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में अष्टावक्र महाकाव्य का अध्ययन दिव्यांग विमर्श तथा भारतीय दार्शनिक परम्परा के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि अष्टावक्र का चरित्र केवल एक दिव्यांग व्यक्ति की संघर्षगाथा नहीं है, बल्कि वह आत्मसम्मान, आत्मबोध, ज्ञान और मानवीय गरिमा का सशक्त प्रतीक भी है। साथ ही यह शोध भारतीय चिंतन की उस मानवीय और समावेशी दृष्टि को रेखांकित करता है, जो बाह्य शारीरिक सीमाओं से परे मनुष्य के आंतरिक मूल्य और उसकी चेतना को सर्वोपरि मानती है।

अष्टावक्र महाकाव्य : कथ्य एवं शिल्प

अष्टावक्र महाकाव्य आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट कृति है, जिसकी रचना प्रज्ञाचक्षु जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा की गई है। यह महाकाव्य अपने कथ्य, शिल्प और वैचारिक गहनता के कारण विशेष महत्त्व रखता है। महाकाव्य आठ सर्गों—संभव, संक्रान्ति, समस्या, संकट, संकल्प, साधना, संभावना तथा समाधान—में विभक्त है तथा प्रत्येक सर्ग में 108 छंदों का सुव्यवस्थित विन्यास किया गया है। इसकी संरचना केवल कलात्मक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि यह दिव्यांग व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष, मानसिक अवस्थाओं तथा आत्मविकास की क्रमिक यात्रा का भी प्रतीकात्मक निरूपण करती है।

महाकाव्य की कथावस्तु का आधार वाल्मीकीय रामायण, महाभारत के वनपर्व तथा अष्टावक्र गीता में वर्णित प्रसंग हैं। इसमें अष्टावक्र के जीवन की प्रमुख घटनाओं का क्रमबद्ध एवं प्रभावशाली चित्रण किया गया है। गर्भावस्था में ही अपने पिता कहोल के अशुद्ध वेदपाठ का विरोध करने के कारण उन्हें शाप मिलता है, जिससे उनका शरीर आठ स्थानों पर वक्र हो जाता है। बाद में कहोल राजा जनक की सभा में बंदी नामक विद्वान से शास्त्रार्थ में पराजित होकर जलबंदी बना दिए जाते हैं। इसके पश्चात् अल्पायु में ही अष्टावक्र राजा जनक की सभा में पहुँचते हैं और अपने अद्वितीय ज्ञान, तर्कशक्ति तथा आत्मविश्वास के बल पर बंदी को पराजित कर अपने पिता सहित अन्य विद्वानों को भी मुक्त कराते हैं।

काव्यगत दृष्टि से यह महाकाव्य करुण रस से अनुप्राणित होते हुए भी वीर रस की प्रधानता से युक्त है, जिसमें उत्साह स्थायी भाव के रूप में विद्यमान है। महाकवि ने अपनी इस नवीन काव्य-दृष्टि को 'क्रान्तिवाद' की संज्ञा दी है। इसकी भाषा परिमार्जित, ओजस्वी, संस्कृतनिष्ठ तथा खड़ी बोली हिन्दी पर आधारित है। छंद-विधान की सुसंगति, अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग, भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति तथा शैली की गरिमा महाकाव्य को विशिष्ट साहित्यिक ऊँचाई प्रदान करती है। भाषा में ओज और माधुर्य का संतुलित समन्वय इसकी अभिव्यक्ति को और अधिक प्रभावशाली बनाता है।

इस महाकाव्य का केंद्रीय पात्र अष्टावक्र हैं, जिनका व्यक्तित्व अदम्य आत्मविश्वास, गहन विद्वत्ता, स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा और संघर्षशीलता का प्रतीक बनकर उभरता है। वे अपनी शारीरिक विकलांगता को कभी भी दुर्बलता के रूप में स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसे आत्मविकास, आत्मबोध और उपलब्धि का माध्यम बना देते हैं। उनके चरित्र के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसके शरीर में नहीं, बल्कि उसके ज्ञान, विवेक और चेतना में निहित होती है। इसी कारण अष्टावक्र का चरित्र आज भी आत्मसम्मान, बौद्धिक क्षमता और जीवन-संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करता है।

महाकवि ने अष्टावक्र के माध्यम से यह स्थापित किया है कि शारीरिक भिन्नता किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा, बौद्धिक क्षमता अथवा आध्यात्मिक उत्कर्ष में बाधक नहीं होती। बाह्य रूप-रंग की अपेक्षा आंतरिक गुणों, ज्ञान और व्यक्तित्व को अधिक

महत्त्व देकर महाकाव्य समाज में व्याप्त रूढ़ धारणाओं का प्रभावी प्रतिरोध करता है। इस प्रकार अष्टावक्र महाकाव्य अपने सशक्त कथ्य, प्रभावपूर्ण शिल्प, उत्कृष्ट चरित्र-चित्रण तथा मानवीय दृष्टिकोण के माध्यम से न केवल हिन्दी महाकाव्य परंपरा को समृद्ध करता है, बल्कि दिव्यांगता के प्रति समाज में सम्मान, समानता और संवेदनशीलता की नई चेतना का भी विकास करता है।

अष्टावक्र महाकाव्य में दिव्यांग विमर्श

जगद्गुरु रामभद्राचार्य द्वारा रचित अष्टावक्र महाकाव्य समकालीन हिंदी साहित्य में दिव्यांग विमर्श को एक नूतन, प्रगतिशील और दार्शनिक धरातल प्रदान करता है। यह महाकाव्य केवल एक पौराणिक कथा का काव्यानुवाद नहीं है, बल्कि यह शारीरिक भिन्नता को देखने वाली पारंपरिक सामाजिक दृष्टि के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोधात्मक विमर्श खड़ा करता है। कवि ने महाकाव्य के प्रारंभ में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि अष्टावक्र का जीवन और उनका शारीरिक स्वरूप इस संपूर्ण काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है, जो संपूर्ण विकलांग जगत के लिए एक नई दिशा तय करता है। काव्य के मंगलाचरण के तुरंत बाद कवि स्पष्ट घोषणा करते हैं :

"विकलांगों के गव्य बन गए जीवन पथ में जिसके सर्ग।
महाकाव्य के सर्ग बन गए जिसके आठों निश्चित निसर्ग।
वही बनें इस महाकाव्य का वर्ण्य वर्णिवर अष्टावक्र।
सरस्वती की यही प्रेरणा मुझे मिल रही आज अवक्र॥"[1]

यह काव्य इस बात की पुरज़ोर वकालत करता है कि दिव्यांगता कोई दैवीय अभिशाप या पूर्वजन्मों के पापों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह मानव अस्तित्व की ही एक जैविक भिन्नता है। सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों की दृष्टि से यह महाकाव्य अत्यंत क्रांतिकारी बन पड़ा है, जहाँ दिव्यांगों के लिए केवल सहानुभूति या दया की भीख नहीं माँगी गई है, बल्कि समाज में उनके बुनियादी अधिकारों और पूर्ण समावेशन की मांग की गई है। कवि की यह प्रगतिशील और लोक-कल्याणकारी दृष्टि इन छंदों में पूर्णतः मुखरित होती है :

"उससे पा कर्तव्य प्रेरणा जग में अधिकृत हो विकलांग।
सफल बनेंगे स्पर्धा में विवश करेंगे सब सकलांग।
विकलांगों को सभी मिलेंगे अब मौलिक मानवाधिकार।
अब सकलांग न दे पाएगा विकलांगों को कटु धिक्कार॥
अब न निजी अधिकारों से विकलांग रहेगा परिवंचित।
अब विकलांग न ताडित होगा उसे मिलेंगे शुभ संचित।"[2]

महाकाव्य में इस बात पर गहरा क्षोभ व्यक्त किया गया है कि समाज एक ही माता-पिता की संतानों में शारीरिक बनावट के आधार पर भेद करने लगता है। सकलांग यानी शारीरिक रूप से पूर्ण व्यक्ति को पलकों पर बैठाया जाता है, जबकि विकलांग को धूल धूसरित छोड़ दिया जाता है। इस सामाजिक विषमता और दोहरे चरित्र को रेखांकित करते हुए समाज की संकीर्ण मानसिकता से एक तीखा प्रश्न पूछा गया है :

"एक ही जनक जननी से जने, युगल सकलांग और विकलांग।
स्नेह में क्यों इतना यह भेद, कहो कैसा यह विषम समाज॥
एक पितु के हैं दोनों पुत्र, नियम में फिर भी क्यों अपवाद।
पलक पर पलता है सकलांग, रिरकता रजरूषित विकलांग॥"[3]

अष्टावक्र का चरित्र इस रूढ़िवादी सामाजिक सोच के विरुद्ध एक जीवंत संघर्ष है। वे शारीरिक रूप से आठ जगहों से वक्र होने के बावजूद अपनी इच्छाशक्ति और आंतरिक संकल्प के बल पर परिस्थितियों को परास्त करते हैं। वे सिद्ध करते

हैं कि शरीर की सीमाएँ कभी भी आत्मा या बुद्धि की सीमाओं का निर्धारण नहीं कर सकतीं। अष्टावक्र की इसी अदम्य संकल्प-शक्ति का जीवंत चित्रण करते हुए काव्यकार लिखते हैं :

''यद्यपि ऋषि अष्टावक्र जने।
विकलांग अल्प कमठाण्डाकृति।
फिर भी न कभी विकलांग हुई।
उनकी अनल्प सङ्कल्प प्रकृति॥
कभी हार न मानी ऋषिसुतने।
विकलांगित कुपरिस्थितियों से।''[4]

पिता के शाप के कारण शारीरिक वक्रता प्राप्त होने पर भी अष्टावक्र हतोत्साहित नहीं होते, बल्कि अपनी आध्यात्मिक चेतना को अक्षुण्ण रखते हैं। वे मानते हैं कि भौतिक अंग भले ही शिथिल या विकृत हों, किंतु यदि मनुष्य का संकल्प सुदृढ़ है तो वह बड़े से बड़े अवरोधों को पार कर सकता है। इस भाव को पुष्ट करते हुए स्वयं अष्टावक्र का यह उद्घोष द्रष्टव्य है :

''देकर के शाप पिता ने मुझे भले विकलांग बनाया।
पर नहीं विकल कर पाए मेरी आध्यात्मिक काया।
मैं कक्षप की ही गति से बढ़ता जाऊँगा आगे।
होकर भी पंगु पर्वत पर मैं चढ़ूँगा आलस त्यागे॥"[5]

अंततः, यह महाकाव्य समाज को यह चेतावनी भी देता है कि दिव्यांग जनों की उपेक्षा करना या उन्हें परिवार का भार समझना एक विकृत सामाजिक मानसिकता का परिचायक है। काव्य में दिव्यांगों को साक्षात् जगन्नाथ का रूप मानकर उनकी सेवा और आदर करने का संदेश दिया गया है, साथ ही यह भी आगाह किया गया है कि किसी दिव्यांग की आँखों से गिरा आँसू संपूर्ण समाज का संहार करने की शक्ति रखता है। ये पंक्तियाँ इस पूरे विमर्श को एक संवेगात्मक और विद्रोही दृष्टिकोण देती हैं :

''भार है विकलांग क्या परिवार का।
क्या उपेक्षा पात्र वह सकलाङ्ग का।
जगत को जर्जरित करदेगी झटिति।
यह विषम अवधारणा कुसमाज की॥
मत निरादर करो अब विकलांग का।
मूर्ति है यह साक्षात् जगन्नाथ की।
मत रुलाओ किसी भी निजकृत्य से।
स्वप्न में भी भूलकर विकलांग को।
अन्यथा विकलांग का दृगविन्दु भी।
वज्र बनकर दलित कर देगा तुम्हें॥"[6]

इस प्रकार, अष्टावक्र महाकाव्य में दिव्यांग विमर्श केवल शारीरिक अक्षमता का विलाप नहीं है, बल्कि वह अस्मिता की खोज, सामाजिक रूढ़ियों का प्रतिकार, समतामूलक समाज की स्थापना और मानवाधिकारों की प्राप्ति का एक प्रखर उद्घोष है। यह काव्य हाशिए के इस समाज को केंद्र में लाकर स्थापित करता है और एक सच्चे समावेशी समाज की रूपरेखा निर्मित करता है।

अष्टावक्र महाकाव्य में भारतीय दार्शनिक चेतना

जगद्गुरु रामभद्राचार्य कृत अष्टावक्र महाकाव्य भारतीय दर्शन, संस्कृति और सनातन चेतना का एक उत्कृष्ट काव्यात्मक दस्तावेज़ है। यह महाकाव्य केवल ऐतिहासिक या पौराणिक आख्यान मात्र नहीं है, अपूर्णतः उपनिषदिक ज्ञान, वेदांत दर्शन, सात्त्विक साधना और सनातन मूल्यों की जीवंत अभिव्यक्ति है। कवि ने संपूर्ण कथावस्तु को दार्शनिक धरातल पर बुनते हुए यह स्थापित किया है कि मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसके नश्वर शरीर से नहीं, बल्कि उसकी अविनाशी आत्मिक चेतना और शाश्वत ज्ञान से निर्धारित होता है।

काव्य के द्वितीय सर्ग में ब्रह्मवर्चसी चेतना और अविद्या (अज्ञान) के मध्य अंतर्संबंधों को अत्यंत सूक्ष्मता से उकेरा गया है। जब अष्टावक्र गर्भ में होते हैं, तभी से उनके भीतर सात्त्विक विवेक और ब्रह्मतेज का प्रादुर्भाव हो जाता है। संसार की कोई भी मायावी शक्ति या अविद्या उनके इस आंतरिक आलोक को ढकने में असमर्थ सिद्ध होती है। इस दार्शनिक सत्य को अभिव्यक्त करते हुए महाकाव्य में अंकित है :

"सौर तैजस तनु सौर विवेक, ब्रह्मवर्चसी स्वान्त निर्दोष।
नहीं ढँक सकी अविद्या इसे, इसीसे करके भी षड्यन्त्र॥"[7]

भारतीय दर्शन में केवल कंठस्थ ज्ञान या रटन-प्रणाली को वास्तविक विद्या नहीं माना गया है। यदि कोई व्यक्ति वेदों और श्रुतियों का पाठ तो करता है परंतु उसके गूढ़ दार्शनिक अर्थ को आत्मसात नहीं कर पाता, तो वह केवल एक दंभ का प्रदर्शन है। महाकाव्य में ऋषि कहोल के माध्यम से इसी वैचारिक संकीर्णता पर प्रहार किया गया है, जहाँ रटने की प्रवृत्ति और विस्मरण की मानवीय सीमा को रेखांकित करते हुए कहा गया है :

"रात दिन तोते के ही भाँति, ऋचायें रटते हैं मम तात।
अरे फिर भी होता विस्मरण, अहो कैसा प्रतिभा परिहास॥"[8]

सनातन परंपरा में प्रतिभा को किसी विशिष्ट देश, वेश अथवा जाति की परिधि में आबद्ध नहीं किया जा सकता। दार्शनिक दृष्टि से प्रतिभा देशकाल से सर्वथा परे एक सार्वभौमिक सत्ता है, जो विषम से विषम परिस्थितियों में भी अपने संकल्प बल से प्रकट होती है। पंचम सर्ग में प्रतिभा के इसी दार्शनिक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कवि लिखते हैं :

"प्रतिभा की कोई जाति नहीं प्रतिभा का कोई देश नहीं।
यह देश काल से ऊपर है प्रतिभा का कोई वेश नहीं॥"[8]

षष्ठ सर्ग (साधना) में भारतीय दर्शन के व्यावहारिक पक्ष, जैसे सत्यभाषण, धर्माचरण, स्वाध्याय और गुरु-शिष्य परंपरा के आदर्शों का सुंदर निरूपण मिलता है। अष्टावक्र को उपदेश देते हुए सनातन धर्म की महत्ता और उसके शाश्वत स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है। यह दर्शन सिखाता है कि जो चिर पुरातन होने के साथ-साथ नित्य नूतन बना रहे, वही वास्तविक सनातन धर्म है :

"यह विश्ववारा प्रथम है श्रुतिविहित भारत संस्कृति।
इसकी कृपासे सतत होगा पूतमन तेरा कृती॥
यह चिर पुरातन नित्य नूतन शुचि सनातन धर्म है।
इससे विरूद्धाचरण ही नितराम् निषिद्ध विधर्म है॥"[9]

आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु केवल अनुकूल परिस्थितियाँ ही पर्याप्त नहीं होतीं, अपितु प्रतिकूलताओं के मध्य भी अंतःकरण में संभावना की ज्योति जलाए रखना ही मुख्य साधना है। जब मनुष्य पूर्ण साहस के साथ ईश्वर पर विश्वास रखकर आगे बढ़ता है, तो दार्शनिक धरातल पर उसकी सफलता निश्चित हो जाती है। इसी सत्य को उद्घाटित करते हुए सप्तम सर्ग में कहा गया है :

"फिर भी संभावना खोज ले मत अपने मन में डर।
ईश्वर देंगे तुझे सफलता थोड़ा तो साहस कर॥
तू अमर्त्यसुत है ब्राह्मण है अष्टावक्र ऋषि है।
करती साहस मेघ प्रतीक्षा संभावना कृषी है॥"[10]

काव्य का अंतिम लक्ष्य समाज और राष्ट्र को एक स्वस्थ समाधान देना है। भारतीय काव्यशास्त्र और दर्शन की यह सुदृढ़ मान्यता रही है कि जीवन और काव्य दोनों का चरमोत्कर्ष रामादि के समान सदाचरण की स्थापना में है, न कि रावणादि के समान कुटिल प्रवृत्तियों के पोषण में। महाकाव्य के अष्टम सर्ग में इस दार्शनिक समाधान को अत्यंत सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है :

"किन्तु सभी काव्यों का अन्तिम एक लक्ष्य है।
समाधान सामयिक संभूतिवत् सुरक्ष्य है॥
वर्तन रामादिवत् कदापि ना रावणादिवत्।
यही काव्य का समाधान है अधुना यावत॥"[11]

इस प्रकार, अष्टावक्र महाकाव्य अपने दार्शनिक वितान में ब्रह्म, जीव, अविद्या, प्रतिभा, सनातन धर्म और आत्मिक समाधान जैसे गंभीर तत्वों को अत्यंत सरलता और प्रामाणिकता के साथ समेटे हुए है, जो पाठक को एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना की ओर उन्मुख करता है।

समकालीन संदर्भ और अष्टावक्र महाकाव्य

जगद्गुरु रामभद्राचार्य द्वारा रचित अष्टावक्र महाकाव्य अपने विचारों और संदेश की दृष्टि से वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक एवं समकालीन कृति है। आज जब विश्वभर में मानवाधिकार, समान अवसर तथा सामाजिक न्याय जैसे विषय व्यापक विमर्श के केंद्र में हैं, तब यह महाकाव्य दिव्यांग विमर्श को एक सशक्त वैचारिक आधार प्रदान करता है। समकालीन समाज में दिव्यांग व्यक्तियों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती उनकी शारीरिक सीमाएँ नहीं, बल्कि समाज की वह संकीर्ण मानसिकता है जो उनकी क्षमता का मूल्यांकन बाह्य स्वरूप के आधार पर करती है। मिथिला की राजसभा में अष्टावक्र के वक्र शरीर का उपहास करने वाले विद्वानों का प्रसंग इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है, जो आज भी अनेक रूपों में समाज में विद्यमान है।

यह महाकाव्य दिव्यांगता के प्रति दया और करुणा की पारंपरिक दृष्टि के स्थान पर गरिमा, आत्मसम्मान और अधिकार-आधारित दृष्टिकोण को स्थापित करता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में दिव्यांग जनों को प्रायः सहानुभूति अथवा दान के पात्र के रूप में देखा जाता है, जबकि अष्टावक्र का व्यक्तित्व इस सोच का प्रभावी प्रतिवाद प्रस्तुत करता है। वे किसी प्रकार की कृपा या अनुकंपा की अपेक्षा नहीं करते, बल्कि अपने विलक्षण ज्ञान, प्रखर बुद्धि और सुदृढ़ तर्कशक्ति के माध्यम से राजसभा में सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। उनका चरित्र स्पष्ट रूप से यह संदेश देता है कि दिव्यांग व्यक्तियों को दया नहीं, बल्कि समान अधिकार, सम्मान और समाज में न्यायपूर्ण सहभागिता की आवश्यकता है।

सामाजिक समावेशन की अवधारणा के संदर्भ में भी अष्टावक्र महाकाव्य अत्यंत दूरदर्शी और प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। आज जिस समावेशी समाज की संकल्पना सामाजिक विज्ञान और सार्वजनिक नीतियों का महत्वपूर्ण लक्ष्य मानी जाती है, उसका वैचारिक स्वरूप इस महाकाव्य में पहले ही अभिव्यक्त हो चुका है। कवि ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ व्यक्ति का मूल्यांकन उसके शारीरिक स्वरूप से नहीं, बल्कि उसके ज्ञान, क्षमता और व्यक्तित्व के आधार पर किया जाए। अष्टावक्र की शास्त्रार्थ में विजय तथा उसके उपरांत संपूर्ण राजसभा द्वारा उन्हें सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाना इसी समावेशी दृष्टि का सशक्त प्रतीक है। इस प्रकार यह महाकाव्य केवल एक धार्मिक अथवा साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि दिव्यांग अधिकारों, सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा का कालजयी घोषणापत्र बनकर आज भी समाज को अधिक संवेदनशील, न्यायपूर्ण और समावेशी बनने की प्रेरणा देता है।

निष्कर्ष : अष्टावक्र महाकाव्य अपने दार्शनिक चिंतन, सांस्कृतिक दृष्टि और सामाजिक सरोकारों के कारण एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रगतिशील कृति के रूप में प्रतिष्ठित होता है। यह महाकाव्य पौराणिक आख्यान को आधार बनाकर अद्वैत वेदांत, उपनिषदों की ज्ञानपरंपरा, सत्यनिष्ठा तथा सनातन जीवन-दृष्टि जैसे भारतीय दार्शनिक मूल्यों का प्रभावी निरूपण करता है। साथ ही, यह दिव्यांग विमर्श को मानवीय गरिमा, समानता और अधिकारों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए समकालीन सामाजिक चिंतन को नई दिशा प्रदान करता है।

कवि ने परंपरागत रूढ़ धारणाओं का खंडन करते हुए स्पष्ट किया है कि दिव्यांगता किसी दैवी दंड या अभिशाप का परिणाम नहीं, बल्कि मानवीय विविधता का एक स्वाभाविक रूप है। अष्टावक्र का व्यक्तित्व इस तथ्य का सशक्त प्रमाण है कि मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसके ज्ञान, विवेक और आत्मबोध में निहित होती है, न कि उसके शारीरिक स्वरूप में। वे सहानुभूति या अनुकंपा की अपेक्षा किए बिना अपने अद्वितीय ज्ञान, तर्कशक्ति और आत्मविश्वास के माध्यम से समाज में सम्मान और समान अधिकार प्राप्त करते हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह महाकाव्य सामाजिक समावेशन, समान अवसर और मानवाधिकारों की अवधारणाओं को सार्थक आधार प्रदान करता है। यह बाह्य रूप-रंग अथवा शारीरिक संरचना की अपेक्षा व्यक्ति की प्रतिभा, नैतिकता और बौद्धिक क्षमता को अधिक महत्त्व देता है। इस प्रकार अष्टावक्र महाकाव्य भारतीय दार्शनिक परंपरा को सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और समावेशी चेतना से जोड़ते हुए ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को उसकी विशिष्टता के साथ सम्मान, समान अवसर और आत्मसम्मानपूर्ण जीवन का अधिकार प्राप्त हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रामभद्राचार्य, जगद्गुरु। अष्टावक्र (महाकाव्य), नई दिल्ली : रंजन कम्युनिकेशन्स, 2010 (प्रथम सर्ग-संभव), पृ. 2।
2. रामभद्राचार्य, जगद्गुरु। अष्टावक्र (महाकाव्य), नई दिल्ली : रंजन कम्युनिकेशन्स, 2010 (प्रथम सर्ग-संभव), पृ. 17।
3. रामभद्राचार्य, जगद्गुरु। अष्टावक्र (महाकाव्य), नई दिल्ली : रंजन कम्युनिकेशन्स, 2010 (द्वितीय सर्ग-संक्रांति), पृ. 35।
4. वही, 2010 (पंचम सर्ग-संकल्प), पृ. 109।
5. वही, 2010 (तृतीय सर्ग- समस्या), पृ. 62।
6. वही, 2010 (पंचम सर्ग-संकल्प), पृ. 100।
7. वही, 2010 (द्वितीय सर्ग-संक्रांति), पृ. 38।
8. वही, 2010 (द्वितीय सर्ग-संक्रांति), पृ. 39।
9. वही, 2010 (पंचम सर्ग-संकल्प), पृ. 117।
10. वही, 2010 (षष्ठ सर्ग- साधना), पृ. 149।
11. वही, 2010 (सप्तम सर्ग-संभावना), पृ. 170।
12. वही, 2010 (अष्टम सर्ग-समाधान), पृ. 199।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

भारत में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने में चुनाव आयोग की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Fatima Zohra
Research Scholar
Department of Political Science,
Ismail National Mahila PG College, Meerut
Chaudhay Charan Singh University, Meerut

सारांश (Abstract)

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव किसी भी लोकतंत्र का मूल तत्व होते हैं। भारत, जो कि एक विशाल और विविधता से भरा लोकतंत्र है, में चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता और विश्वसनीयता बनाए रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। भारत निर्वाचन आयोग एक प्रमुख संवैधानिक संस्था के रूप में चुनावों को स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से संचालित करने में अहम भूमिका निभाता है।

इस अध्ययन का उद्देश्य भारत में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने में निर्वाचन आयोग की भूमिका का गहराई से विश्लेषण करना है। इसमें निर्वाचन आयोग के संवैधानिक प्रावधानों, इसके कार्यों और प्रभावशीलता पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा, ताकि यह समझा जा सके कि यह कैसे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूती प्रदान करता है।

यह अध्ययन एक वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है, जिसमें संविधान, निर्वाचन आयोग की रिपोर्टें, न्यायिक निर्णय और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसके निष्कर्ष दर्शाते हैं कि भारत का निर्वाचन आयोग एक महत्वपूर्ण संस्था है, जो निष्पक्ष और पारदर्शी चुनावों को सुनिश्चित करती है। हालाँकि, समाज, राजनीति और प्रौद्योगिकी में निरंतर हो रहे परिवर्तनों के मद्देनज़र, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूत रखने के लिए निरंतर सुधार, संस्थागत सक्षमता और व्यापक सहयोग की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द (Keywords) : चुनावी निष्पक्षता, भारत निर्वाचन आयोग, लोकतंत्र, चुनाव सुधार, आदर्श आचार संहिता, ईवीएम, वीवीपैट, मतदाता जागरूकता।

1. प्रस्तावना

भारतीय संविधान ने निर्वाचन आयोग को संसद, राज्य विधानसभाओं, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों का निष्पक्ष और पारदर्शी संचालन सुनिश्चित करने का कार्य सौंपा है। आयोग की स्थापना के बाद से, इसने चुनाव प्रक्रिया को अधिक विश्वसनीय और प्रभावी बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। ईवीएम और वीवीपैट का उपयोग, आदर्श आचार संहिता के पालन की निगरानी, चुनावी खर्चों पर नियंत्रण, मतदाता सूचियों का नियमित अद्यतन, और मतदाता जागरूकता कार्यक्रम जैसे प्रमुख प्रयासों ने चुनाव प्रक्रिया को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सूचना प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया के उपयोग ने राजनीतिक संचार को सरल और द्विपक्षीय बना दिया है, जिसके चलते चुनाव प्रचार के तरीकों में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप, चुनावी प्रक्रिया पहले की तुलना में अधिक जटिल हो गई है। जहां ये माध्यम राजनीतिक संवाद को विस्तृत करने में सहायक बने हैं, वहीं फेक न्यूज़, भ्रामक जानकारी और डिजिटल दुष्प्रचार जैसी चुनौतियाँ भी उभरी हैं। इसके अलावा, धन बल, बाहु बल, चुनावी ध्रुवीकरण, और चुनावी नियमों का उल्लंघन जैसी समस्याएँ आज भी चुनावों की निष्पक्षता को प्रभावित कर रही हैं।

निर्वाचन आयोग की जिम्मेदारी केवल चुनाव आयोजित करने तक सीमित नहीं है। इसके साथ ही, यह सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है कि चुनाव प्रक्रिया निष्पक्ष और विश्वसनीय हो, सभी राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को समान अवसर मिले, और मतदाताओं का विश्वास बनाए रखा जाए। इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, हाल के वर्षों में निर्वाचन आयोग ने तकनीकी साधनों का उपयोग करते हुए चुनाव प्रबंधन, डिजिटल निगरानी, शिकायत निवारण प्रणाली और मतदाता शिक्षा कार्यक्रमों को सुदृढ़ करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। फिर भी, आयोग की स्वायत्तता, उसके अधिकारों की सीमाएं और निर्णयों का प्रभाव भी ध्यान में रखने योग्य हैं।

2. चुनावी निष्पक्षता की अवधारणा एवं भारत के चुनाव आयोग का संवैधानिक आधार

भारत के निर्वाचन आयोग का मुख्य कार्य है यह सुनिश्चित करना कि चुनाव स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी ढंग से संपन्न हो। जब मतदाता अपने अधिकार का उपयोग बिना किसी भय, दबाव या प्रलोभन के कर सकें, और सभी राजनीतिक दलों एवं उम्मीदवारों को समान अवसर प्राप्त हों, तभी चुनावों को वास्तव में निष्पक्ष माना जा सकता है। लोकतांत्रिक प्रणाली में चुनाव न केवल प्रतिनिधियों के चयन का उपाय हैं, बल्कि वे जनता की आकांक्षाओं और इच्छाओं का परिचायक भी हैं। चुनावी निष्पक्षता मतदान तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि यह पूरी चुनाव प्रक्रिया में समाहित होती है। इसमें मतदाता सूची का निर्माण, चुनाव कार्यक्रम की घोषणा, नामांकन प्रक्रिया, और चुनाव प्रचार शामिल होता है।

भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में चुनावों को निष्पक्ष तरीके से संचालित करना कोई आसान काम नहीं है। यहाँ मतदाताओं की बड़ी संख्या, सामाजिक और सांस्कृतिक विभिन्नताएँ, धन का दुरुपयोग, बाहुबल का प्रभाव, चुनावी ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया पर फैलने वाली भ्रामक सूचनाएँ चुनावी प्रक्रिया को बाधित कर सकती हैं। इसलिए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन आयोग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। इसी उद्देश्य से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 के तहत निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई है। संविधान ने संसद, राज्य विधानसभाओं, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनावों की देखरेख और संचालन की जिम्मेदारी आयोग को सौंपी है।

निर्वाचन आयोग की स्वतंत्रता और स्वायत्तता की रक्षा के लिए संविधान में विशेष प्रावधान स्थापित किए गए हैं। मुख्य निर्वाचन आयुक्त के निष्कासन की प्रक्रिया सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के निष्कासन के समान है, जो उनकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने मामले Mohinder Singh Gill v. Chief Election Commissioner (1978) में स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 324 आयोग को स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव आयोजित करने के लिए व्यापक अधिकार प्रदान करता है। इसके अलावा, 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 के तहत मतदान की आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष करने से लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा मिला है।

हालाँकि निर्वाचन आयोग को कई संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं, लेकिन इसकी सक्षमता राजनीतिक दलों, प्रशासनिक ढांचे और मतदाताओं के समर्थन पर भी निर्भर करती है। आयोग की स्वतंत्रता और निर्णयों के बारे में समय-समय पर चर्चा होती रहती है, फिर भी भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने में इसकी भूमिका बेहद अहम है।

3. भारत में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने में निर्वाचन आयोग की भूमिका

भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों का संचालन मुख्य रूप से निर्वाचन आयोग की जिम्मेदारी होती है।

आयोग चुनाव प्रक्रिया के हर चरण की निगरानी करता है, ताकि सभी राजनीतिक दलों और उम्मीदवारों को समान अवसर मिल सके। इसके अलावा, यह सुनिश्चित करता है कि मतदाता बिना किसी दबाव या प्रभाव से अपने मताधिकार का प्रयोग कर सकें। समय के साथ, आयोग ने चुनावों को और अधिक पारदर्शी, विश्वसनीय और प्रभावी बनाने के लिए कई अहम कदम उठाए हैं।

3.1 आदर्श आचार संहिता

आदर्श आचार संहिता चुनाव के चुनावी घोषणा के साथ ही लागू हो जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि चुनाव प्रचार के दौरान सभी राजनीतिक दल और उम्मीदवार तय नियमों का पालन करें। इसमें सरकारी संसाधनों के अनुचित उपयोग, भड़काऊ भाषण देने, जातीय या धार्मिक आधार पर वोट मांगने और मतदाताओं को गलत तरीके से प्रभावित करने जैसी गतिविधियों पर रोक लगाई जाती है। यदि कोई उल्लंघन होता है, तो आयोग चेतावनी, नोटिस, या अन्य आवश्यक कार्रवाई कर सकता है।

3.2 मतदाता सूची

निष्पक्ष चुनाव के लिए एक सटीक और ताजा मतदाता सूची अत्यंत आवश्यक है। निर्वाचन आयोग नियमित अंतराल पर इस सूची की समीक्षा करता है, नए मतदाताओं का पंजीकरण करता है और कमबमेंमक या स्थानांतरित मतदाताओं के नाम हटाने की प्रक्रिया को लागू करता है। इससे हर योग्य नागरिक को मतदान का अवसर मिलता है, जिससे चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता में वृद्धि होती है। (भारतीय निर्वाचन आयोग, 2023)

3.3 ईवीएम और वीवीपैट

निर्वाचन आयोग ने चुनाव प्रक्रिया को अधिक स्पष्ट और तेजी से संपन्न करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (ईवीएम) और पेपर ऑडिट ट्रेल (वीवीपैट) का प्रयोग शुरू किया है। ईवीएम की मदद से वोटों की गिनती में समय की बचत होती है, जबकि वीवीपैट मतदाताओं को यह सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान करता है कि उनका वोट सही उम्मीदवार के पक्ष में डाला गया है। इस प्रणाली ने चुनाव परिणामों के प्रति आम जनता का विश्वास बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3.4 चुनावी व्यय की निगरानी

चुनावों में धनबल के प्रभाव को कम करने के लिए चुनाव आयोग उम्मीदवारों के चुनावी खर्च की बारीकी से निगरानी करता है। हर उम्मीदवार को अपने खर्च का विस्तृत विवरण पेश करना होता है। आयोग की निगरानी टीमें निर्धारित सीमा से अधिक खर्च या गलत तरीके से धन के उपयोग पर कड़ा एक्शन ले सकती हैं। यह व्यवस्था चुनावी प्रतियोगिता को और अधिक निष्पक्ष बनाने में मदद करती है।

3.5 मतदाता जागरूकता (SVEEP)

मतदाता जागरूकता के लिए, निर्वाचन आयोग ने Systematic Voters' Education and Electoral Participation (SVEEP) पहल शुरू की है। इस कार्यक्रम के तहत, मतदान का महत्व, मतदाता पंजीकरण और चुनावी प्रक्रिया की जानकारी विभिन्न साधनों से साझा की जाती है, ताकि अधिक से अधिक लोग मतदान में भाग ले सकें।

3.6 चुनाव पर्यवेक्षक

निर्वाचन आयोग चुनावों के दौरान सामान्य, व्यय और पुलिस पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करता है। ये पर्यवेक्षक चुनाव प्रक्रिया पर स्वतंत्र निगरानी रखते हैं, शिकायतों की जाँच करते हैं और आवश्यकता होने पर आयोग को अपनी रिपोर्ट भेजते हैं। उनकी उपस्थिति चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता और पारदर्शिता को मजबूत करती है। (Election Commission of India, 2023)

3.7 सोशल मीडिया और डिजिटल निगरानी

डिजिटल माध्यमों के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए निर्वाचन आयोग ने सोशल मीडिया गतिविधियों की निगरानी पर भी

विशेष ध्यान देना शुरू किया है। आयोग संबंधित एजेंसियों और सोशल मीडिया मंचों के साथ समन्वय स्थापित कर फेक न्यूज़, भ्रामक सूचनाओं, घृणा फैलाने वाली सामग्री और चुनाव संबंधी नियमों के उल्लंघन पर निगरानी रखता है। इसका उद्देश्य डिजिटल माध्यमों के दुरुपयोग को रोकना और चुनावी वातावरण को निष्पक्ष बनाए रखना है। (Election Commission of India, 2025)

उपरोक्त उपायों से स्पष्ट होता है कि निर्वाचन आयोग केवल चुनाव कराने वाली संस्था नहीं है, बल्कि वह चुनाव प्रक्रिया की पारदर्शिता, निष्पक्षता और विश्वसनीयता बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बदलती परिस्थितियों और नई चुनौतियों के बीच आयोग की यह भूमिका भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बनाने में निरंतर महत्त्वपूर्ण बनी हुई है।

4. चुनावी निष्पक्षता के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

भारत में चुनावी प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी और निष्पक्ष बनाने के लिए निर्वाचन आयोग द्वारा कई महत्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं, फिर भी चुनावों की निष्पक्षता के सामने कुछ गंभीर चुनौतियाँ बनी हुई हैं। बदलते सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी परिवेश में ये चुनौतियाँ चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए चिंता का विषय बनी रहती हैं।

4.1 धनबल

चुनावों में धन का बढ़ता प्रभाव निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा के लिए एक बड़ी चुनौती है। कई बार अधिक आर्थिक संसाधन वाले उम्मीदवार और राजनीतिक दल चुनाव प्रचार में अन्य उम्मीदवारों की तुलना में अधिक प्रभाव डालने की स्थिति में होते हैं। मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए धन के अनुचित उपयोग, अवैध खर्च और मतदाताओं को प्रलोभन देने जैसी गतिविधियाँ चुनावी समानता को प्रभावित करती हैं। निर्वाचन आयोग चुनावी व्यय की निगरानी के माध्यम से इस समस्या को नियंत्रित करने का प्रयास करता है, लेकिन यह चुनौती अभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। (Law Commission of India, 2015)

4.2 बाहुबल

कुछ क्षेत्रों में चुनावों के दौरान बाहुबल का प्रभाव भी निष्पक्षता के लिए चुनौती बना रहता है। दबाव, डर या हिंसा के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने के प्रयास स्वतंत्र मतदान की भावना को कमजोर कर सकते हैं। यद्यपि कानून-व्यवस्था बनाए रखने और केंद्रीय सुरक्षा बलों की तैनाती जैसे उपायों से इस समस्या को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है, फिर भी कुछ स्थानों पर यह समस्या देखने को मिलती है। (Kothari, 1970)

4.3 फेक न्यूज़ और भ्रामक सूचनाएँ

डिजिटल युग में फेक न्यूज़ और गलत सूचनाएँ चुनावी प्रक्रिया के लिए एक नई चुनौती बनकर सामने आई हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से तेजी से फैलने वाली गलत जानकारी मतदाताओं की सोच और निर्णय को प्रभावित कर सकती है। इससे चुनावी वातावरण में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है और निष्पक्ष जनमत निर्माण की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। (Election Commission of India, 2025)

4.4 सोशल मीडिया का दुरुपयोग

सोशल मीडिया ने चुनाव प्रचार को अधिक व्यापक और प्रभावी बनाया है, लेकिन इसके दुरुपयोग की संभावना भी बढ़ी है। राजनीतिक प्रचार, लक्षित संदेशों और ऑनलाइन अभियानों के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने के प्रयास किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त गलत सूचना, घृणास्पद सामग्री और नियमों के उल्लंघन जैसी समस्याएँ भी सामने आती हैं। इसलिए डिजिटल प्लेटफॉर्म की निगरानी चुनावी निष्पक्षता बनाए रखने के लिए आवश्यक हो गई है।

4.5 सांप्रदायिक ध्रुवीकरण

जाति, धर्म और समुदाय के आधार पर मतदाताओं को विभाजित करने की प्रवृत्ति भी चुनावी निष्पक्षता के लिए एक

गंभीर चुनौती है। जब चुनावी प्रचार विकास और नीतिगत मुद्दों के स्थान पर भावनात्मक या सांप्रदायिक मुद्दों पर केंद्रित हो जाता है, तो इससे स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। निर्वाचन आयोग आदर्श आचार संहिता के माध्यम से ऐसी गतिविधियों को रोकने का प्रयास करता है। (Law Commission of India, 2015)

4.6 निर्वाचन आयोग की सीमाएँ

निर्वाचन आयोग को संविधान द्वारा व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं, फिर भी उसकी कार्यक्षमता कुछ सीमाओं से प्रभावित होती है। आयोग की शक्तियों का प्रभावी उपयोग कई बार प्रशासनिक सहयोग, कानूनी प्रावधानों और राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसके अलावा कुछ मामलों में आयोग के निर्णयों के क्रियान्वयन और उसकी स्वायत्तता को लेकर भी चर्चा होती रही है। इसलिए चुनावी निष्पक्षता को मजबूत बनाने के लिए आयोग की संस्थागत क्षमता और अधिकारों को और प्रभावी बनाने की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जाती है।

इस प्रकार, चुनावी निष्पक्षता के सामने मौजूद चुनौतियाँ केवल प्रशासनिक नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी स्तर पर भी जुड़ी हुई हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए निर्वाचन आयोग के प्रयासों के साथ-साथ राजनीतिक दलों, नागरिक समाज, मीडिया और मतदाताओं की सक्रिय भूमिका भी आवश्यक है।

5. निर्वाचन आयोग द्वारा किए गए प्रमुख सुधार एवं पहल

भारतीय चुनाव प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी, निष्पक्ष और प्रभावी बनाने के लिए निर्वाचन आयोग ने समय-समय पर कई महत्वपूर्ण सुधार और पहल की हैं। इनका उद्देश्य चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता बढ़ाना, मतदाताओं की भागीदारी को मजबूत करना और चुनाव से जुड़ी अनियमितताओं को कम करना रहा है।

5.1 इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) और वीवीपैट

चुनाव प्रक्रिया में तकनीक के उपयोग की दिशा में ईवीएम और वीवीपैट का प्रयोग एक महत्वपूर्ण सुधार रहा है। ईवीएम के माध्यम से मतदान और मतगणना प्रक्रिया को अधिक सरल और तेज बनाया गया, जबकि वीवीपैट ने मतदाताओं को अपने मत के सही दर्ज होने की पुष्टि करने का अवसर दिया। इससे चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता और विश्वास बढ़ाने में सहायता मिली है।(Election Commission of India, 2023)

5.2 मतदाता सूची का आधुनिकीकरण

निष्पक्ष चुनाव के लिए सही और अद्यतन मतदाता सूची आवश्यक है। निर्वाचन आयोग ने मतदाता सूची के डिजिटलीकरण, ऑनलाइन पंजीकरण और मतदाता सेवाओं के विस्तार के माध्यम से इस प्रक्रिया को अधिक सरल और प्रभावी बनाया है। इससे पात्र मतदाताओं को चुनाव प्रक्रिया से जोड़ने और त्रुटियों को कम करने में सहायता मिली है।(Election Commission of India, 2023)

5.3 cVIGIL और शिकायत निवारण व्यवस्था

चुनावी अनियमितताओं की त्वरित सूचना और समाधान के लिए निर्वाचन आयोग ने cVIGIL मोबाइल एप शुरू किया। इसके माध्यम से नागरिक आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन, अवैध प्रचार, धन वितरण या अन्य चुनावी अनियमितताओं की शिकायत सीधे आयोग तक पहुँचा सकते हैं। इस पहल ने नागरिकों को चुनाव प्रक्रिया की निगरानी में भागीदार बनाया है। (Election Commission of India, द.क.)

5.4 चुनावी व्यय निगरानी

चुनावों में धन के प्रभाव को घटाने के उद्देश्य से आयोग ने चुनावी व्यय निगरानी व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ किया है। व्यय पर्यवेक्षकों की नियुक्ति, निगरानी समितियों का गठन, और उम्मीदवारों के खर्च की जाँच जैसी पहल के जरिए चुनावों में पारदर्शिता सुनिश्चित करने की कोशिश की जा रही है। (भारत निर्वाचन आयोग, 2023)

5.5 मतदाता जागरूकता कार्यक्रम (SVEEP)

मतदाताओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निर्वाचन आयोग ने SVEEP कार्यक्रम की शुरुआत की है। इस कार्यक्रम के तहत, मतदान का महत्व, मतदाता अधिकारों तथा चुनावी प्रक्रिया के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न अभियान चलाए जाते हैं। यह पहल खासतौर पर युवाओं, महिलाओं और नए मतदाताओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया के साथ जोड़ने में काफी प्रभावी सिद्ध हुई है। (Election Commission of India, 2023)

5.6 चुनाव पर्यवेक्षक और डिजिटल निगरानी

निष्पक्ष चुनाव सुनिश्चित करने के लिए आयोग सामान्य पर्यवेक्षकों, व्यय पर्यवेक्षकों और पुलिस पर्यवेक्षकों की नियुक्ति करता है। इसके अलावा, चुनाव संबंधित गतिविधियों की निगरानी के लिए सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर विशेष व्यवस्थाएँ भी बनाई गई हैं। इन सभी प्रयासों का उद्देश्य फजी समाचार, भ्रामक जानकारियों और चुनावी नियमों के उल्लंघनों को प्रभावी तरीके से नियंत्रित करना है। (Election Commission of India, 2023)

6. चुनाव सुधारों का विश्लेषण एवं चर्चा

भारत में चुनाव सुधारों की प्रक्रिया केवल निर्वाचन आयोग के प्रयासों तक सीमित नहीं रही है। इसमें संवैधानिक संशोधन, विधायी परिवर्तन और न्यायिक हस्तक्षेप जैसे कई महत्वपूर्ण तत्व शामिल हैं। इन सुधारों का मुख्य उद्देश्य चुनाव प्रणाली को और अधिक समावेशी, पारदर्शी और लोकतांत्रिक बनाना है।

भारतीय चुनाव प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1988 के माध्यम से हुआ, जिसके तहत मतदान की आयु को 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। इस बदलाव ने युवाओं की चुनावी भागीदारी को बढ़ावा दिया और चुनाव प्रक्रिया को अधिक प्रतिनिधित्वशील बनाया।

इसी क्रम में, चुनावों में पारदर्शिता को बढ़ाने के लिए उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि, संपत्ति और शैक्षणिक योग्यताओं से जुड़ी जानकारियों को सार्वजनिक करने का मार्ग तय किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों ने मतदाताओं के सूचना अधिकार को सशक्त किया और उम्मीदवारों के बारे में अधिक स्पष्टता सुनिश्चित करने में अहम भूमिका निभाई। (पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ, 2003)

आज के समय में चुनाव सुधारों को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सोशल मीडिया का गलत उपयोग, फजी खबरों का प्रसार, चुनावी वित्त में पारदर्शिता की कमी और राजनीतिक ध्रुवीकरण जैसी समस्याएँ चुनावी निष्पक्षता पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि चुनावी प्रणाली में समय समय पर सुधार किए जाएं और निर्वाचन संस्थाओं को उपयुक्त संसाधन और अधिकार प्रदान किए जाएं।

इसी प्रकार, चुनाव सुधार एक सतत प्रक्रिया है। निर्वाचन आयोग की गतिविधियाँ, संवैधानिक प्रावधान और न्यायालयीय हस्तक्षेप मिलकर भारतीय चुनाव प्रणाली को मजबूत बनाने में मदद कर रहे हैं। फिर भी, लोकतंत्र की बदलती जरूरतों के अनुरूप इसमें लगातार सुधार की आवश्यकता है।

7. निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र की सफलता के लिए एक प्रमुख आधार स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी चुनाव हैं। ये चुनाव केवल सरकार का चयन करने की प्रक्रिया नहीं हैं, बल्कि नागरिकों की राजनीतिक सहभागिता और लोकतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं। इस संदर्भ में निर्वाचन आयोग की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है। एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था के रूप में, निर्वाचन आयोग ने भारत में चुनावी प्रक्रिया को सुव्यवस्थित, विश्वसनीय और पारदर्शी बनाने में असाधारण योगदान दिया है।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि निर्वाचन आयोग ने चुनावों की निष्पक्षता बनाए रखने के लिए कई प्रभावशाली

कदम उठाए हैं। आदर्श आचार संहिता का पालन, मतदाता सूची में सुधार, ईवीएम और वीवीपैट का उपयोग, चुनावी खर्च की निगरानी, SVEEP कार्यक्रम, बटप्ळप्स् जैसी डिजिटल पहलों और चुनाव पर्यवेक्षकों की नियुक्ति ने चुनाव प्रबंधन को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इन सभी प्रयासों ने केवल चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता को ही नहीं बढ़ाया, बल्कि मतदाताओं के विश्वास को भी मजबूत किया है।

हाल के समय में चुनावी निष्पक्षता के लिए कई नई और पुरानी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। धन का प्रभाव, हिंसा, झूठी जानकारियाँ, सोशल मीडिया का दुरुपयोग, धार्मिक ध्रुवीकरण, और चुनावी नियमों का उल्लंघन, इन सभी समस्याएँ चुनावी प्रक्रिया को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती हैं। इसके अलावा, चुनाव आयोग की शक्तियों, उसकी स्वायत्तता, और उसके निर्णयों को प्रभावी ढंग से लागू करने पर भी समय-समय पर बहस होती रही है। इसलिए, केवल कानूनी अधिकारों की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है; आयोग की संस्थागत क्षमता और स्वतंत्र कार्यप्रणाली को लगातार मजबूत करना भी बहुत आवश्यक है।

चुनाव सुधार एक लगातार जारी रहने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी परिवेश के बदलते हालात के अनुसार चुनाव प्रणाली में नए सुधारों की आवश्यकता बनी रहेगी। चुनावी वित्त प्रणाली में पारदर्शिता को बढ़ाना, डिजिटल प्लेटफार्मों का जिम्मेदार उपयोग करना, राजनीतिक दलों के भीतर आंतरिक लोकतंत्र को प्रोत्साहित करना और मतदाता जागरूकता को बढ़ावा देना भविष्य के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियां हो सकती हैं।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि निर्वाचन आयोग भारतीय लोकतंत्र में चुनावी निष्पक्षता के संरक्षण में सबसे प्रमुख संस्थाओं में से है। हालांकि, चुनावों की निष्पक्षता केवल आयोग के हाथों में नहीं है; इसमें राजनीतिक दलों, प्रशासन, मीडिया और नागरिकों की भी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। एक मजबूत लोकतंत्र के लिए यह अनिवार्य है कि चुनाव प्रक्रिया न केवल निष्पक्ष और पारदर्शी हो, बल्कि सभी नागरिकों के विश्वास के अनुरूप भी हो।

संदर्भ सूची (APA 7जी शैली)

1. A.C. Jose v. Sivan Pillai, (1984) 2 SCC 656. https://indiankanoon.org/doc/1793214/
2. Election Commission of India. (2023). Annual Report 2022-23. https://eci.gov.in/annual-reports/
3. Election Commission of India. (n.d.). Constitutional provisions and functions. https://eci.gov.in
4. Election Commission of India. (n.d.). Model Code of Conduct. https://www.eci.gov.in/mcc
5. Election Commission of India. (2023). SVEEP Strategy 2022-2025. https://ecisveep.nic.in/files/file/2151-sveep-strategy-2022-2025/
6. Government of India. (1950). The Constitution of India. Ministry of Law and Justice. https://legislative.gov.in/constitution-of-india/
7. Government of India. (1988). The Constitution (Sixty-first Amendment) Act, 1988. Ministry of Law and Justice. https://legislative.gov.in/constitution-amendment-acts/
8. Kashyap, S. C. (2011). Our Constitution: An Introduction to India's Constitution and Constitutional Law. National Book Trust.
9. Kothari, R. (1970). Politics in India. Little, Brown and Company.
10. Mohinder Singh Gill v. Chief Election Commissioner, (1978) 1 SCC 405. https://indiankanoon.org/doc/1896615/
11. People's Union for Civil Liberties v. Union of India, (2003) 4 SCC 399. https://indiankanoon.org/doc/87341/
12. T.N. Seshan v. Union of India, (1995) 4 SCC 611. https://indiankanoon.org/doc/1115003/

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

जयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की विद्यालय परिवेश में कुंठा परिस्थितियों का एक विवरणात्मक अध्ययन

रेनू बाला शर्मा
एम.एड़ छात्रा
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

श्रीमती अन्जू चंदेल
सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य जयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के 200 प्रधानाध्यापकों (100 राजकीय व 100 निजी) की विद्यालय परिवेश में कुंठा परिस्थितियों का विवरणात्मक व तुलनात्मक अध्ययन करना है। विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि तथा व्यावसायिक कुंठा मापनी द्वारा संकलित आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान, मानक विचलन और t-test विधियों से किया गया। निष्कर्ष दर्शाते हैं कि अत्यधिक गैर-शैक्षणिक कार्य और संसाधनों की कमी प्रधानाध्यापकों में कुंठा के मुख्य कारक हैं। तुलनात्मक रूप से, ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक संसाधनों का अभाव तथा शहरी क्षेत्रों में मानवीय संबंधों की जटिलताएं व अभिभावकों का हस्तक्षेप तनाव का बड़ा कारण हैं। साथ ही, राजकीय विद्यालयों में प्रशासनिक दबाव और निजी क्षेत्रों में प्रबंधन का अत्यधिक दखल कार्य-स्वायत्तता को प्रभावित करता है। अतः यह शोध जयपुर जिले के शैक्षिक नेतृत्व को सुदृढ़ करने हेतु प्रधानाध्यापकों को गैर-शैक्षणिक कार्यों से मुक्त करने तथा नियमित तनाव प्रबंधन कार्यशालाएँ आयोजित करने का पुरजोर सुझाव देता है।

तकनीकी शब्दावली : जयपुर जिला, प्रधानाध्यापक, विद्यालय परिवेश, कुंठा परिस्थितियाँ, माध्यमिक विद्यालय, न्यादर्श (200)।

1. प्रस्तावना :

किसी भी राष्ट्र की प्रगति, सामाजिक चेतना और उसकी भावी पीढ़ी के चरित्र का निर्माण देश की सुदृढ़ एवं व्यावहारिक शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करता है, और इस संपूर्ण व्यवस्था को धरातल पर क्रियान्वित करने का मुख्य उत्तरदायित्व विद्यालय के सर्वोच्च शैक्षिक नेतृत्व अर्थात प्रधानाध्यापक पर होता है। प्रधानाध्यापक केवल एक प्रशासनिक पद या शासकीय अधिकारी नहीं होता, बल्कि वह विद्यालय रूपी लघु समाज का एक कुशल संचालक, नीति निर्धारक, शिक्षकों का मार्गदर्शक और शिक्षा विभाग व स्थानीय समाज के मध्य समन्वय स्थापित करने वाली अत्यंत महत्वपूर्ण धुरी है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण और सूचना तकनीकी के इस आधुनिक युग में जहाँ एक ओर शिक्षा के स्तर में गुणात्मक सुधार की सामाजिक और राष्ट्रीय अपेक्षाएं लगातार बढ़ी हैं, वहीं दूसरी ओर विद्यालय परिवेश की आंतरिक व बाह्य जटिलताओं में भी तीव्र वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय शिक्षा

नीति के समसामयिक उद्देश्यों को पूरा करने के साथ-साथ विद्यालय के दैनिक प्रशासनिक कार्यों, वित्तीय प्रबंधन, समय सारणी के सुचारू संचालन और बोर्ड परीक्षा परिणामों को उत्कृष्ट बनाए रखने का सीधा मानसिक दबाव प्रधानाध्यापक पर ही आकर ठहरता है। इस बहुआयामी और चुनौतीपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते समय संस्था प्रधानों को प्रतिदिन कई ऐसी विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जो उनकी व्यक्तिगत कार्यशैली और व्यावसायिक कार्यक्षमता के अनुकूल नहीं होती हैं, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान विद्यालय परिवेश में एक अदृश्य मानसिक दबाव, हताशा और नैराश्य का जन्म होता है।

2. शोध के उद्देश्य :

- जयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों में पाई जाने वाली प्रमुख कुंठा परिस्थितियों का अध्ययन करना।
- शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के प्रधानाध्यापकों की कुंठा परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- राजकीय और निजी माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के तनावध्कुंठा स्तर में अंतर का अध्ययन करना।

3. शोध परिकल्पनाएँ :

- जयपुर जिले के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की कुंठा परिस्थितियों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
- राजकीय और निजी विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के विद्यालय परिवेश में कुंठा के स्तर में कोई सांख्यिकीय अंतर नहीं पाया जाता है।

4. शोध विधि :

- इस अध्ययन के लिए 'विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि' का उपयोग किया गया है।

5. जनसंख्या :

- जयपुर जिले के राजकीय और निजी माध्यमिक विद्यालयों के पुरुष व महिला प्रधानाध्यापक।

6. न्यादर्श :

- जयपुर जिले के विभिन्न ब्लॉकों से यादृच्छिक ढंग से चुने गए 200 प्रधानाध्यापक (100 राजकीय 100 तथा 100 गैर राजकीय)।

7. उपकरण :

- कुंठा परिस्थितियों के मापन के लिए स्वयं निर्मित 'प्रधानाध्यापक व्यावसायिक कुंठा मापनी' का उपयोग किया गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- www.google com
- प्रो. कृष्णमूर्ति ''विश्व-प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री'' सुरेन्द्र कुमार एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृं.सं. 184.
- कुमार मनोरंजन ''डॉ. एनी बेसेंट का शिक्षा दर्शन'' International Journal of Research andAnalytical Review, Volume 4, Issue 2, पृं.सं. 110
- लाल एवं तोमर ''विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक'' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 245-246

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

Vitamins and Coenzymes: Their Role in Metabolism and Enzyme Activity

Kamini Kumari
PGT Chemistry, M.SC., B.Ed, M.Phil.
Incharge Principal
(B.P. Inter school, Begusarai)
State resource person science for society, Bihar and mentor & escort guide teacher Begusarai
E-mail- kaminipgtchemistry@gmail.com
Mob- 9135266489

Introduction

Vitamins are essential organic compounds that the human body requires in small amounts to maintain normal growth, metabolism, and overall health. Since the body cannot produce most vitamins in sufficient quantities, they must be obtained through a balanced diet. Many vitamins, particularly the B-complex vitamins, are converted into coenzymes that assist enzymes in carrying out vital biochemical reactions. Without these vitamins and coenzymes, normal metabolism would be severely impaired.

What Are Vitamins?

Vitamins are classified into two major groups:

• Water-soluble vitamins (B-complex vitamins and Vitamin C)

• Fat-soluble vitamins (Vitamins A, D, E, and K) While all vitamins have important physiological functions, the B-complex vitamins are especially significant because they serve as precursors of coenzymes involved in energy metabolism.

What Are Coenzymes?

Coenzymes are small, non-protein organic molecules that bind to enzymes and help them catalyze biochemical reactions. They act as carriers of electrons, hydrogen atoms or specific chemical groups during metabolic processes. Unlike enzymes, coenzymes are not permanently attached to enzymes and can be released and reused after each reaction.

Role of Vitamins in Co-enzyme Formation

Many vitamins are converted into active co-enzyme forms after absorption into the body. These coenzymes are essential for the proper functioning of enzymes.

. Vitamin B1 (Thiamine) forms Thiamine Pyrophosphate (TPP), which is involved in carbohydrate metabolism.

Vitamin B2 (Riboflavin) forms Flavin Adenine Dinucleotide (FAD) and Flavin Mononucleotide (FMN), which participate in oxidation–reduction (redox) reactions.

Vitamin B3 (Niacin) forms Nicotinamide Adenine Dinucleotide (NAD) and NADP, which are important in cellular respiration.

Vitamin B5 (Pantothenic Acid) forms Coenzyme A (CoA), which is essential for fatty acid metabolism and the citric acid cycle.

Vitamin B6 (Pyridoxine) forms Pyridoxal Phosphate (PLP), which is involved in amino acid metabolism.

Vitamin B7 (Biotin) functions as a coenzyme in carboxylation reactions.

Vitamin B9 (Folate) forms Tetrahydrofolate (THF), which is required for DNA synthesis.

Vitamin B12 (Cobalamin) is involved in DNA synthesis and red blood cell formation.

Role in Metabolism

Metabolism includes all the chemical reactions that occur in living cells to sustain life. Coenzymes play a central role in these reactions by helping enzymes convert nutrients into energy and other essential molecules.

They contribute to:

• Energy production through cellular respiration.

• Breakdown of carbohydrates, proteins, and fats.

• Synthesis of amino acids, nucleic acids, and fatty acids.

• Electron transport and ATP production.

• Maintenance of normal cellular functions and growth. Without adequate vitamins, these metabolic pathways become inefficient, leading to reduced energy production and various metabolic disorders.

Role in Enzyme Activity

Enzymes are biological catalysts that accelerate chemical reactions without being consumed. Many enzymes require coenzymes to function effectively. Coenzymes assist enzymes by transferring electrons, hydrogen atoms, or specific chemical groups during metabolic reactions.

Examples include:

• NAD carrying electrons during cellular respiration.

• Coenzyme A (CoA) transferring acetyl groups in the citric acid cycle. • Pyridoxal Phosphate (PLP) assisting enzymes involved in amino acid metabolism.

Clinical Significance

Vitamin deficiencies reduce the availability of coenzymes and impair enzyme function, resulting in various diseases.

Examples include:

• Thiamine (Vitamin B1) deficiency causes Beriberi and Wernicke–Korsakoff syndrome.

• Niacin (Vitamin B3) deficiency leads to Pellagra.

• Folate (Vitamin B9) deficiency causes Megaloblastic anemia.

• Vitamin B12 deficiency results in Anemia and Neurological disorders.

A balanced diet containing whole grains, fruits, vegetables, dairy products, meat, legumes, and nuts helps prevent these deficiencies.

Conclusion

Vitamins and coenzymes are essential components of human metabolism. They enable enzymes to catalyze biochemical reactions necessary for energy production, nutrient metabolism, DNA synthesis, and cellular maintenance. Since the body cannot produce most vitamins in adequate amounts, obtaining them through a healthy and balanced diet is essential.

Understanding the relationship between vitamins, coenzymes, and enzymes provides valuable insight into the biochemical processes that sustain life and maintain good health. Adequate intake of vitamins supports proper enzyme function, efficient metabolism, disease prevention, and overall well-beings.

References

1. **Colinas M, Fitzpatrick TB. (2022). Coenzymes and the primary and specialized metabolism interface. Current Opinion in Plant Biology, 66:102170.**
   (B-vitamin derived coenzymes का primary और specialized metabolism में role)
2. **Bolander FF. (2006). Vitamins: not just for enzymes. Current Opinion in Investigational Drugs, 7(10):912–915.**
   (Vitamins के coenzyme role के अलावा अन्य functions पर)
3. **Depeint F, et al. (2006). Mitochondrial function and toxicity: role of the B vitamin family on mitochondrial energy metabolism. Chemico-Biological Interactions, 163(1–2):94–112.**
   (B vitamins का mitochondrial metabolism और enzyme activity में महत्वपूर्ण role; deficiency effects)
4. **Parra M, et al. (2018).** Vitamin B6 and Its Role in Cell Metabolism and Physiology. Cells, 7(7):84.
   Vitamin B6/PLP acts as a coenzyme for 100+ enzymes and plays an important role in cellular metabolism.
5. **Hanna M, et al. (2022).** B Vitamins: Functions and Uses in Medicine. Nutrients (PMC).
   Describes the coenzyme functions of B vitamins in enzymatic processes and cellular physiology.
6. **Palmieri F, et al. (2022).** Mitochondrial transport and metabolism of the vitamin B-derived cofactors. Review on thiamine pyrophosphate, CoA, FAD, NAD+.
   Reviews mitochondrial transport and metabolism of vitamin B-derived cofactors.
7. **Lykstad J, et al. (2023).** Biochemistry, Water Soluble Vitamins. StatPearls.
   Explains the role of water-soluble vitamins as coenzymes in enzymes and metabolism.
8. **Merrill AH Jr. (2000).** Mechanistic Aspects of Vitamin and Coenzyme Utilization. Journal of Nutrition.
   Related work on vitamin and coenzyme utilization.

9. **da Fonseca-Pereira P, et al. (2023).** Harnessing enzyme cofactors and plant metabolism. PubMed.
Discusses cofactors/vitamins in enzyme and metabolism regulation.
10. **Yuan Y, et al. (2025).** Transporters in vitamin uptake and cellular metabolism. PMC.
Explains the role of vitamins as coenzymes/cofactors in enzymatic reactions.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

'अनबीता व्यतीत' उपन्यास में टैक्सीडर्मी और पर्यावरण चेतना

Dr. M. Kala
Associate Professor, Dept.of Hindi
Mar Ivanios college
Thiruvananthapuram, Kerala

"पर्यावरण का अर्थ है हमारे चारों ओर का प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार पर्यावरण में प्रकृति की सभी जैविक तथा जैविक घटक सम्मिलित होते हैं।"[1] पर्यावरण और पारिस्थितिकी का गहरा संबंध है। पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जो जीव-जन्तुओं तथा उनके पर्यावरण के बीच स्थापित पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करता है। सभी जीव एक-दूसरे तथा अपने प्राकृतिक परिवेश पर निर्भर रहते हैं, इसलिए प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने के लिए इनका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। सामान्यतरू पर्यावरण को दो भागों में विभाजित किया जाता है- भौतिक पर्यावरण जिसमें जल, वायु, भूमि, प्रकाश तथा जलवायु सम्मिलित हैं, तथा जैविक पर्यावरण, जिसमें मनुष्य, वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी और सूक्ष्मजीव शामिल हैं।

पक्षी पर्यावरण संतुलन तथा प्रकृति को समृद्ध एवं हरा-भरा बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे परागण और बीज प्रसार (हमिंगबर्ड और सनबर्ड),कीट एवं कृंतक नियंत्रण (अबाबील, वार्बलर, भुजंग तथा उल्लू), अपशिष्ट निपटान (गिद्ध, कौए और चील) तथा खाद्य श्रृंखला के संतुलन जैसी अनेक पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं में सक्रिय योगदान देते हैं। अनेक उष्णकटिबंधीय पौधे अपने परागण के लिए मुख्य रूप से पक्षियों पर निर्भर रहते हैं। धनेश, मैना और बुलबुल जैसे पक्षी जंगलों के पुनर्जनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

'टैक्सीडर्मी' या 'चर्म प्रसादन' वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत मृत पशु-पक्षियों की खाल को विशेष रासायनिक विधियों द्वारा संरक्षित कर उन्हें जीवित जैसी आकृति प्रदान की जाती है। प्रारंभ में इसका उद्देश्य वैज्ञानिक अध्ययन तथा संग्रहालयों के लिए नमूनों का संरक्षण था, किंतु समय के साथ यह शिकार-आधारित ट्रॉफी उद्योग और व्यावसायिक गतिविधि का भी महत्वपूर्ण माध्यम बन गया। अन्य देशों की तुलना में भारत में भी सीमित स्तर पर टैक्सीडर्मी का कार्य किया जाता है और इसे प्राकृतिक इतिहास संग्रहालयों, वन्यजीव अनुसंधान संस्थानों तथा सरकारी संग्रहालयों में सुरक्षित रखा जाता है। "टैक्सीडर्मी के प्रमुख क्षेत्र पर अगर गौर किया जाए तो भारत में टैक्सीडर्मी का कार्य मुख्य रूप से भारतीय प्राणी सर्वेक्षण तथा भारतीय संग्रहालय, कोलकाता जैसे संस्थानों में किया जाता है। निजी विशेषज्ञ एवं पशु-चिकित्सा संस्थान जैसे महाविद्यालयों तथा शोध संस्थानों में इस क्षेत्र से संबंधित कार्य किया जाता है।

अमेरिका, कनाडा तथा अनेक यूरोपीय देशों में खेल-शिकार और ट्रॉफी संरक्षण की परंपरा के कारण टैक्सीडर्मी एक विकसित उद्योग के रूप में भी स्थापित है।"[2]

'अनबीता व्यतीत' में टैक्सीडर्मी : कमलेश्वर की भावुक दृष्टि

कमलेश्वर बीसवीं शती के सबसे सशक्त लेखकों में से एक हैं। कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तंभ लेखन, फिल्म

पटकथा जैसी अनेक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया है। 'अनबीता व्यतीत' उनका चर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में पर्यावरण चेतना, प्रकृति-प्रेम तथा पक्षियों के संरक्षण का सशक्त संदेश देखने को मिलता है। इस उपन्यास का केंद्रीय विषय पर्यावरण का विनाश तथा पक्षियों के शोषण का विरोध है। आधुनिक युग में मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं की पूर्ति के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन प्रारंभ किया, जिससे वन्य जीवों का अस्तित्व संकट में पड़ गया। इस उपन्यास में अत्यंत मासूम वन्य पक्षियों की पीड़ा तथा उनका शिकार करके अपनी आजीविका और विलासपूर्ण जीवन जीने वाले निष्ठुर मनुष्यों की संवेदनहीनता पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है।

'अनबीता व्यतीत' की कथावस्तु में दो प्रकार के मनुष्यों का चित्रण किया गया है, एक वर्ग ऐसा है जो पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम, दया और करुणा का भाव रखता हैं जबकि दूसरा वर्ग निष्ठुरता के साथ साथ पशु-पक्षियों का शिकार करके अपना व्यवसाय चलाता है। कथा का आरंभ सुमेरगढ़ राज्य से होता है, जहाँ रानी राजलक्ष्मी और उनकी नातिन समीरा के पक्षियों के प्रति गहरे प्रेम तथा राजा सुरेन्द्र सिंह के पशु-पक्षियों के प्रति क्रूर और अमानवीय व्यवहार का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। महल के जोहड़ में विभिन्न आकार के छोटे-बड़े पक्षियों के मृत शरीर बिखरे पड़े थे। एक कोने में एक मादा हिरणी की रक्तरंजित लाश भी पड़ी थी। यह दृश्य देखकर महारानी राजलक्ष्मी व्यथित होकर भगवान से प्रार्थना करती हैं—"हे भगवान! तूने इन मासूम पक्षियों को इतनी शक्ति क्यों नहीं दी कि वे अपने जीवन की रक्षा स्वयं कर सकते?"

इसी प्रकार समीरा की माँ विजयलक्ष्मी के पक्षियों के प्रति प्रेम को भी रानी राजलक्ष्मी स्मरण करती हैं। विजयलक्ष्मी के शब्द हैं- "माँ साब, चिड़ियाँ पिंजरों में नहीं, पेड़ों और खुले आकाश में उड़ती हुई ही अच्छी लगती हैं...।"[3] पक्षियों के प्रति समीरा का अपार प्रेम और गहरा लगाव :

"आजकल नीली झील में बहुत सारे परदेसी पंछी आ रहे हैं, उन्हीं को देखने चली जाती हूँ"।[4] इस कथन में स्पष्ट रूप से झलकता है।

महाराज सुरेन्द्र सिंह के हाथों से शासन चले जाने के बाद वे महल की रौनक बनाए रखने के लिए अनेक प्रकार के व्यापार और व्यवसाय करने लगे। जब भी उन्हें किसी कारोबार में हानि होती, वे मन बहलाने के लिए आखेट पर निकल जाते, जिसका रानी माँ सदैव विरोध करती थीं।

महारानी राजलक्ष्मी, रानी विजयलक्ष्मी, राजकुमारी समीरा हमेशा पशु-पक्षियों के पक्षधर रहे हैं।

राज्य की पुरातात्त्विक महत्ता वाली इमारतों, ऐतिहासिक धरोहरों तथा उनसे संबंधित स्थलों का विस्तृत सर्वेक्षण कर उनका प्रामाणिक विवरण तैयार करने के लिए भारतीय पुरातत्व विभाग का युवा अधिकारी गौतम से दूरी बनाने के लिए समीरा पर प्रतिबंध लगाता जाता है और राजमहल की सीमाओं में कैद रखा जाता है। जिसके फलस्वरुप महल की शोभा बढाने वाली और राजाओं के कथा कहने वाली शोपीसों को देखकर ओर अधिक भावुक हो उठती है।

टैक्सीडर्मी का पहला उल्लेख निम्नलिखित प्रसंग में मिलता है—"वह समय बिताने के लिए राजमहल के सुसज्जित कक्षों में घूमती है तो उसका मन बहलने के बजाय और अधिक दुःखी तथा बेचैन हो उठता। राजमहल की दीवारों पर हिरन, सिंह, बाघ आदि जानवरों के सिरों के साथ ढाल-तलवारें सजी दिखाई देतीं। काँच की अलमारियों तथा संगमरमर की मेजों-चौकियों पर भूसा भरे पशु-पक्षियों के बेजान शरीर रखे दिखाई देते थे।"[5] यह दृश्य राजमहल में प्रचलित शिकार-परंपरा तथा टैक्सीडर्मी के प्रति राजपरिवार की रुचि को स्पष्ट रूप से उद्घाटित करता है।

समीरा अपने पिता नरेन्द्र सिंह का अत्यंत आदर और सम्मान करती थी। किन्तु एक दिन जब वह उनके कक्ष में पहुँचती है, तो उसे पक्षियों के करुण आर्तनाद सुनाई देते हैं। उस दृश्य का वर्णन उपन्यास में इस प्रकार किया गया है—"वह एक काफी बड़ा हालनुमा कमरा था, जिसके सामने और अगल-बगल की दीवारों के सहारे लोहे की मजबूत जालियों वाले ऐसे पिंजरे फर्श से लेकर दस-बारह फुट की ऊँचाई तक रखे हुए थे, जिनमें तरह-तरह की चिड़ियाँ कैद थीं। वे चिड़ियाँ पिंजरों की लोहे की जालियों पर चोंच और पंख मार-मारकर चीख रही थीं तथा उन पिंजरों में बेचैनी से चक्कर काटते हुए बाधित उड़ान का बार-बार प्रयास कर रही थीं।"

समीरा यह देखकर बदहवास हो उठी और उसने तत्काल पिंजरों में बंद सभी पक्षियों को मुक्त कर दिया। यह प्रसंग कमलेश्वर के जीवों की स्वायत्तता का समर्थन करता है।

समीरा के इस व्यवहार से क्रोधित होकर कुँवर नरेन्द्र सिंह ने उसके गाल पर तमाचा जड़ दिया और कहा - "तुमने इन परिन्दों को पिंजरों से क्यों आज़ाद किया? जानती हो, कल सुबह ही मुझे इन परिन्दों को एक्सपोर्ट करना था... तुमने मेरे लाखों रुपये मिट्टी में मिला दिए..."। [6] टैक्सीडर्मी का दूसरा उदाहरण इसी प्रसंग में देखने को मिलता है।

समीरा का विवाह रतनपुर के कुँवर जयसिंह के साथ संपन्न होता है। यद्यपि रतनपुर राज्य भारतीय गणराज्य में विलीन हो चुका था, तथापि कुँवर जयसिंह ने अपनी शिक्षा पूर्ण करने के बाद पारिवारिक कारोबार को सफलतापूर्वक संभाला तथा अनेक नये व्यवसाय स्थापित कर राज्य की आर्थिक समृद्धि को बनाए रखा। समीरा कुँवर जयसिंह फार्म हाउस में स्थित अजायबघर को देखकर वह स्तब्ध रह जाती है।

टैक्सीडर्मी का तीसरा उदाहरण फार्म हाउस में दिखाई देता है- "सामने काँच के छोटे-बड़े शोकेसों की कतारें थीं। दाएँ और बाएँ भी अनेक शोकेस सजे हुए थे। प्रकाश की विशेष व्यवस्था के बीच उन शोकेसों में छोटे-बड़े, विभिन्न प्रजातियों के पक्षी प्रदर्शित थे। एक बड़े शोकेस में क्रेन का एक जोड़ा था, दूसरी ओर एक गुलाबी फ्लेमिंगो। दाएँ धनेश, बाएँ चातक; इधर हंस, उधर सारस; कहीं बाज तो कहीं बया....."[7] इसके बाद कुँवर जयसिंह गर्व से समीरा से कहता है-"एक-एक को देखो, समीरा। कितनी खूबसूरती से इन्हें सिला और स्टफ किया गया है। यह कमाल सिर्फ हमारी टैनरी के कारीगरों का है..."[8]

कुँवर जयसिंह का यह संवाद यहाँ आर्थिक लाभ और वैभव के लिए प्रकृति का निर्मम शोषण करने वाले इंसानों का प्रतिनिधित्व करता है। पक्षियों की सुंदरता उनके जीवित और स्वतंत्र अस्तित्व में है, न कि उन्हें मृत अवस्था में सजाकर प्रदर्शित करने में। इंसान की तरह पशु फी भी प्रकृति के हिस्सेदार हैं। इनकी स्वतंत्रता छीनकर इन्हें शोकेस में सजाना पर्यावरणीय संवेदनहीनता है। यहाँ मृत पक्षियों पर गर्व करना प्रकृति के प्रति असंवेदनशील और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण को प्रकट करता है।

"रेनबो लोरीकीत...इंद्रधनुषी तोता...इस पक्षी की ओर संकेत करते हुए जयसिंह कहता है कि यह तुम्हारी नानी माँ महारानी साहिबा के काकातुआ से छोटा जरूर होता है, लेकिन इसके पंखों में दुनिया के सारे रंग मौजूद हैं।"[9] घुँघरू बँधे इस पंछी को देखकर समीरा अवाक् रह जाती है। सैलानी शिकारियों की गोली से घायल उस पक्षी (पिंकू) का वह उपचार करती है उसके पैरों में घुँघरू बाँधकर उसे महल की छत से खुले आकाश में उड़ा देती है। उधर कुँवर जयसिंह रेनबो लोरीकीत की विशेषताओं का उत्साहपूर्वक वर्णन करता रहता है, जबकि समीरा अपनी पुरानी स्मृतियों में खोई रहती है।

इस घटना बाद तथा अपने पति के व्यापार की वास्तविकता जानने के बाद उसे अपने पति के साथ आगे जीवन बिताना अत्यंत कठिन प्रतीत होने लगता है। समीरा आगे अपने विरोध को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहती है- "अगर आप चाहते हैं कि मैं यहीं रहूँ- जिंदगी भर आपके पास और आपके साथ रहूँ, तो यह टैनरी का धंधा आपको बंद करना पड़ेगा। विदेशों में आप जो डिब्बाबंद गोश्त, तरह-तरह के जीवित और मृत पशु-पक्षियों का निर्यात, पशुओं की चबी तथा उनकी खालों आदि का व्यापार करते हैं, वह सब आपको बंद करना पड़ेगा।"[10]

समीरा के इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि वह आर्थिक लाभ से अधिक पर्यावरण संरक्षण, पशु-करुणा और नैतिक मूल्यों को महत्व देती है तथा किसी भी प्रकार के जीव-शोषण को स्वीकार नहीं करती। यही कारण है कि वह अपने वैवाहिक जीवन से भी अधिक महत्व पर्यावरणीय नैतिकता और जीवों के संरक्षण को देती है। समीरा के निरंतर विरोध के बावजूद कुँवर जयसिंह अपने पक्षी-व्यापार को छोड़ा है।

गौतम द्वारा नीली झील खरीदना और समीरा की स्मृति में वहाँ पक्षियों के लिए एक धर्मशाला का निर्माण करना, उपन्यास के पर्यावरणीय संदेश को सशक्त बनाता है। इस धर्मशाला का उदेश्य घायल, थके हुए तथा प्रवासी पक्षियों के लिए सुरक्षित आश्रय प्रदान करना तथा मनुष्य का वास्तविक दायित्व प्रकृति और जीव-जंतुओं की रक्षा करने का बोध दिलाना रहा है। यहाँ

कमलेश्वर जी पक्षियों को बचाने और उनके संरक्षण का संदेश देते हैं।

'अनबीता व्यतीत' केवल एक उपन्यास नहीं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, पक्षी-प्रेम और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त दस्तावेज़ है। कमलेश्वर ने टैक्सीडर्मी के माध्यम से उस अमानवीय व्यावसायिक मानसिकता को उजागर किया है, जो आर्थिक लाभ के लिए पशु-पक्षियों के जीवन और प्रकृति के संतुलन की उपेक्षा करती है। उपन्यास की नायिका समीरा के माध्यम से लेखक ने करुणा, सह-अस्तित्व, अहिंसा तथा पर्यावरणीय उत्तरदायित्व जैसे मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है, वह स्पष्ट शब्दों में कहती है- "मैं जानती हूँ, पंछियों के केमिकल से युक्त भूसा भरे शरीरों के करोड़ों रुपये के बिजनेस को छोड़ना या बंद करना आपके लिए मुमकिन नहीं होगा... लेकिन मेरे लिए यह मुमकिन होगा कि मैं मुर्दों की इस दुनिया से बाहर चली जाऊँ।"[11] इन पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार पक्षियों की हत्या करके उनके शरीरों को रासायनिक पदार्थों की सहायता से संरक्षित किया जाता है। यह टैक्सीडर्मी के अमानवीय और व्यावसायिक स्वरूप को उजागर करता है। उपन्यास यह संदेश देता है कि प्रकृति केवल मनुष्य की उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि समस्त जीव-जगत का साझा अस्तित्व है, जिसकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक दायित्व है। उपन्यासकार ने यथार्थ को कथा में ढालकर काल्पनिक पात्रों द्वारा पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। साथ ही वे मनुष्य वर्ग को इस अमानवीय प्रवृत्ति का विरोध करते हुए करुणा, सह-अस्तित्व और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता का संदेश देते हैं। उपन्यास का मुख्य पात्र पक्षियों के व्यापार से जुड़ा हुआ है, जबकि उसकी पत्नी इस अमानवीय जीवन से बाहर निकलना चाहती है। इस संघर्ष के माध्यम से कमलेश्वर ने मनुष्य और प्रकृति के संबंधों, नैतिक मूल्यों तथा पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। वर्तमान समय में, जब जैव-विविधता का निरंतर ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण तथा वन्यजीवों के अवैध व्यापार जैसी समस्याएँ गंभीर रूप धारण कर चुकी हैं, तब 'अनबीता व्यतीत' का संदेश और भी अधिक प्रासंगिक हो उठता है। यह कृति पाठकों को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनने, पशु-पक्षियों के संरक्षण के लिए जागरूक होने तथा विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार, कमलेश्वर ने टैक्सीडर्मी के प्रसंग को केवल कथा का अंग न बनाकर पर्यावरणीय चेतना, नैतिक मूल्यों और मानवीय करुणा के प्रभावशाली प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पर्यावरण और समकालिन हिन्दी साहित्य, डॉ.प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.सं.16
2. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.16
3. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.10
4. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.9
5. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.61
6. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.62
7. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.105
8. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.106
9. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.109
10. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.111
11. अनबीता व्यतीत, कमलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.109

अन्य सहायक ग्रंथ सूची

1. साहित्य के पर्यावरण विमर्श : डॉ. रंजिता एम, डॉ. सूर्या बोस, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र)
2. पर्यावरण संरक्षण : योगेन्द्र शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों में आ रही गिरावट के कारकों एवं समाधानों का अध्ययन

प्रियांशी वर्मा
शोधकर्त्री
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. मंजू देवी
सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों में आ रही गिरावट के कारकों एवं समाधानों का अध्ययन' का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। वर्तमान समय की अंक-केंद्रित शिक्षा प्रणाली, संयुक्त परिवारों का टूटना, सोशल मीडिया का अत्यधिक प्रभाव और बढ़ती भौतिकवादी सोच विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता और मानसिक तनाव का मुख्य कारण बन रही है। इस समस्या के समाधान के लिए पाठ्यक्रम में व्यावहारिक नैतिक शिक्षा को शामिल करना, परिवारों में बच्चों के साथ गुणात्मक समय बिताना, शिक्षकों द्वारा स्वयं को आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना और छात्रों को सामाजिक सेवा कार्यों से जोड़ना अत्यंत आवश्यक है। निष्कर्षतः, युवा पीढ़ी का चरित्र निर्माण ही एक सुदृढ़ राष्ट्र के विकास का एकमात्र आधार है।

मुख्य शब्द : वर्तमान परिप्रेक्ष्य, मूल्य, गिरावट, कारक, समाधान।

1. प्रस्तावना :

शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास या आजीविका कमाना नहीं है, बल्कि एक चरित्रवान नागरिक का निर्माण करना है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में 'सा विद्या या विमुक्तये' (विद्या वह है जो मुक्ति दिलाए) और नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि माना गया था। परंतु, 21वीं सदी के इस आधुनिक और तकनीकी युग में विद्यार्थियों के नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों में तेजी से गिरावट देखी जा रही है। अनुशासनहीनता, बड़ों के प्रति आदर में कमी, असहिष्णुता और केवल भौतिकवादी दृष्टिकोण का बढ़ना आज के छात्र जीवन की मुख्य चुनौतियाँ बन चुकी हैं।

2 शोध के उद्देश्य :

- विद्यार्थियों में मूल्य ह्रास (गिरावट) के मुख्य कारणों की पहचान करना।
- छात्र जीवन पर आधुनिक परिवेश (सोशल मीडिया, पाश्चात्य संस्कृति) के प्रभाव का आकलन करना।
- विद्यार्थियों में नैतिक और चारित्रिक उत्थान के लिए व्यावहारिक समाधान और सुझाव प्रस्तुत करना।

3 विद्यार्थियों में मूल्य गिरावट के मुख्य कारक :

विद्यार्थियों में मूल्यों की गिरावट के लिए कोई एक तत्व जिम्मेदार नहीं है, बल्कि यह बहुआयामी है, जो निम्नलिखित है—

पारिवारिक कारकों में बदलाव :- संयुक्त परिवारों का टूटना और एकल परिवारों का बढ़ना। माता-पिता दोनों के कामकाजी होने के कारण बच्चों को पर्याप्त समय और भावनात्मक सहारा नहीं मिल पाना।

दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली :- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था केवल अंक, रटने की प्रवृत्ति और व्यावसायिक सफलता (पैसा कमाने) पर केंद्रित हो गई है। इसमें नैतिक और मूल्य-परक शिक्षा का अभाव है।

तकनीक और सोशल मीडिया का अत्यधिक प्रभाव :- इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया के अनियंत्रित उपयोग से युवा पीढ़ी में एकाकीपन, आक्रामकता और आभासी दुनिया के प्रति आकर्षण बढ़ा है, जिससे वे वास्तविक सामाजिक संवेदनाओं से दूर हो रहे हैं।

भौतिकवादी संस्कृति :- उपभोक्तावादी संस्कृति ने युवाओं को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि सफलता का पैमाना केवल पैसा और विलासिता है, चाहे उसे पाने के साधन नैतिक हों या अनैतिक।

रोल मॉडल्स (आदर्शों) का अभाव :- समाज, राजनीति और सिनेमा में ऐसे आदर्शों की कमी है जो युवाओं को प्रेरित कर सकें।

4 विद्यार्थियों में मूल्य ह्रास के मुख्य प्रभाव :

मानसिक तनाव और अवसाद में वृद्धि :- जब जीवन में धैर्य, संतोष और कृतज्ञता जैसे मूल्यों की कमी होती है, तो छात्र अत्यधिक प्रतिस्पर्धा और भौतिकवादी चाहत के कारण जल्दी हताश हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप युवाओं में अकेलेपन, मानसिक तनाव, अवसाद और आत्मघाती प्रवृत्तियों में चिंताजनक बढ़ोतरी देखी जा रही है।

अनुशासनहीनता और असामाजिक व्यवहार :- मूल्यों में गिरावट का सीधा असर छात्रों के व्यवहार पर पड़ता है। शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों के प्रति आदर कम होना, सहपाठियों के साथ हिंसक व्यवहार करना, रैगिंग, और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाना जैसी अनुशासनहीनता की घटनाएँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

पारिवारिक बिखराव और बुजुर्गों की उपेक्षा :- व्यक्तिवादी और स्वार्थी सोच हावी होने के कारण युवाओं में संयुक्त परिवार, बड़ों के प्रति सम्मान और माता-पिता के प्रति उत्तरदायित्व की भावना कम हो रही है। यही कारण है कि आज समाज में वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ रही है और पारिवारिक कलह आम बात हो गई है।

अपराध और नशाखोरी की ओर झुकाव :- सही और गलत के बीच अंतर करने वाली नैतिक चेतना के कमजोर होने से युवा बहुत आसानी से गलत रास्ते पर भटक जाते हैं। कम उम्र में नशीले पदार्थों का सेवन, साइबर अपराध, चोरी, और महिलाओं के प्रति संवेदनहीनता या अपराधों में छात्रों की संलिप्तता बढ़ती जा रही है।

भौतिकवादी और स्वार्थी दृष्टिकोण का विकास :- आज के विद्यार्थियों का एकमात्र लक्ष्य 'किसी भी तरह पैसा कमाना और विलासिता का जीवन जीना' बनता जा रहा है। इस प्रक्रिया में वे ईमानदारी, करुणा, और परोपकार जैसे मूल्यों को भूलते जा रहे हैं, जिससे समाज में संवेदनहीनता फैल रही है।

5 समाधान एवं सुधारात्मक उपाय :

विद्यार्थियों में नैतिक और चारित्रिक उत्थान केवल उपदेशों से संभव नहीं है। इसके लिए समाज के हर स्तंभ को व्यावहारिक और ठोस कदम उठाने होंगे, जो निम्न प्रकार से है–

मूल्य-परक शिक्षा का पुनर्गठन :- परीक्षाओं में अंक लाने और रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा, महापुरुषों की जीवनियां, और भारतीय जीवन मूल्यों को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर से ही कहानियों और नाटकों के माध्यम से ईमानदारी, करुणा और सहयोग जैसे मूल्यों को छात्रों के अंतर्मन में बैठाया जाए।

शिक्षकों की 'रोल मॉडल' के रूप में भूमिका :- प्राचीन गुरु-शिष्य परंपरा की भांति आधुनिक शिक्षकों को भी केवल 'ज्ञान प्रदाता' न होकर स्वयं को एक उच्च चारित्रिक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना होगा। शिक्षक का आचरण, उसकी

भाषा और व्यवहार विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय होते हैं। इसलिए, शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी नैतिक मूल्यों के शिक्षण को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए।

परिवारों में गुणात्मक समय और संवाद :- परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है। माता-पिता को चाहिए कि वे भौतिक सुख-सुविधाएं जुटाने की होड़ के साथ-साथ बच्चों को पर्याप्त समय दें। बच्चों के साथ नियमित संवाद स्थापित करें, उनकी समस्याओं को सुनें और डिजिटल गैजेट्स के स्थान पर उन्हें पारिवारिक उत्सवों, सामाजिक मेल-जोल और बुजुर्गों की सेवा से जोड़ें।

डिजिटल साक्षरता और आत्म-नियंत्रण :- तकनीक के दुष्परिणामों से बचने के लिए विद्यार्थियों को 'डिजिटल हाइजीन' सिखानी होगी। स्कूलों और परिवारों में स्मार्टफोन के संतुलित उपयोग, स्क्रीन टाइम को सीमित करने और सोशल मीडिया पर परोसी जा रही नकारात्मक सामग्री के प्रति सचेत रहने के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाने चाहिए

व्यावहारिक सामाजिक कार्य और सामुदायिक सेवा :- विद्यार्थियों में संवेदनशीलता जगाने के लिए उन्हें किताबी ज्ञान से बाहर निकालना होगा। शिक्षण संस्थानों द्वारा छात्रों को अनिवार्य रूप से सामाजिक गतिविधियों जैसे वृद्धाश्रमों का दौरा, अनाथालयों में स्वैच्छिक सेवा, पर्यावरण संरक्षण (वृक्षारोपण, स्वच्छता अभियान) और ग्रामीण विकास के कार्यों से जोड़ा जाना चाहिए। इससे उनमें 'परहित' (दूसरों की भलाई) की भावना जागृत होगी।

योग, ध्यान और मानसिक स्वास्थ्य सहायता :- आधुनिक जीवन की भागदौड़ और तनाव से निपटने के लिए विद्यालयों और कॉलेजों में दैनिक प्रार्थना सभाओं में 5 से 10 मिनट का सामूहिक ध्यान या योग अनिवार्य किया जाना चाहिए। इसके साथ ही हर संस्थान में एक काउंसलर (परामर्शदाता) होना चाहिए जो छात्रों के मानसिक तनाव और भटकाव को सही समय पर पहचानकर उन्हें सही मार्गदर्शन दे सके।

निष्कर्ष :

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में नैतिक, सामाजिक और चारित्रिक मूल्यों के ह्रास (गिराव) के कारण केवल उनके व्यक्तिगत जीवन पर ही नहीं, बल्कि परिवार, समाज और पूरे राष्ट्र पर इसके गंभीर प्रभाव देखने को मिलते हैं। विद्यार्थियों में मूल्यों की गिरावट केवल उनकी व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि यह पूरे समाज और राष्ट्र के भविष्य का संकट है। यदि हमें एक सशक्त, समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से सुदृढ़ भारत का निर्माण करना है, तो हमें शिक्षा को पुनः संस्कारों से जोड़ना होगा। जब तक युवा पीढ़ी में 'स्व' से ऊपर उठकर 'परमार्थ' और 'राष्ट्रहित' की भावना जागृत नहीं होगी, तब तक वास्तविक विकास संभव नहीं है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- सिंह, डॉ. रामपाल 'मूल्य शिक्षा और चारित्रिक विकास' कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
- शर्मा, प्रो. आर. ए. 'शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांत' आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
- गुप्ता डॉ. शांति स्वरूप 'आधुनिक भारत में मूल्य ह्रास और युवा पीढ़ी' विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली
- राजपूत, प्रो. जे. एस. 'शिक्षा में मूल्य और नैतिकता' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- ओझा, डॉ. पी. एन. 'समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा' राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुरः
- दुबे, डॉ. एस. सी. (2017). भारतीय युवा और बदलती मूल्य संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' : जीवन-मूल्य और साहित्य-चिंतन

सुशीला देवी
शोधार्थी : चरखी दादरी (हरियाणा) मो. 8168109769
डॉ. धनेश कुमार मीणा
शोध निर्देशकः
श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय, चुरू रोड़ झंझनू- 333001 (राजस्थान)

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' सरल, सहज और सौम्य व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके उच्चादर्शो एवं मानवीय गुणों ने मुझे आकर्षित किया है। डॉ. 'मंगलेश' अपनी कार्यशैली, व्यवहार, शांत-संयत, ज्ञान-गरिमा और विवेकपूर्ण मित्रवादिता के कारण एक विशिष्ट व्यक्ति के रूप में हमेशा प्रभावित एवं मार्गदर्शन करने वाले हैं। मुझे लगता है कि 'यथा नाम तथा गुण' उक्ति उन पर पूरी तरह से सटीक बैठती है।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' वर्तमान हिंदी साहित्य संसार के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनकी विविधगमी कृतियाँ उनके व्यक्तित्व का पुष्ट प्रमाण है। यही कारण है कि देखते- देखते उन्होंने राष्ट्रीय साहित्यिक परिदृश्य पर अपनी पहचान बना ली है। आज वह एक विशिष्ट सुकवि, शोधक समीक्षक, संपादक और अनुवादक के रूप में साहित्य के सभी क्षेत्रों में अग्रणी कार्य कर रहे हैं। डॉ. 'मंगलेश' के साहित्यिक योगदान की चर्चा यत्र- तत्र सर्वत्र सुनी जा सकती है। ऐसे सुधी व्यक्तित्व के कृतित्व पर शोध की नितांत आवश्यकता बनी हुई थी। इसलिए मैंने सर्वथा मौलिक, अभिनव और अछूते शोध -विषय का चयन किया है जो अनुसन्धान की प्रक्रिया को सहज एवं सरल बनाता है।

डॉ. 'मंगलेश' का जीवन अपने देश, समाज, साहित्य, भाषा एवं अपनी सभ्यता व संस्कृति के प्रति अथाह अनुराग एवं सम्मान से भरा हुआ है। उनकी मधुर वाणी एवं कोमल स्वभाव बरबस ही अनजान लोगों को भी अपनी ओर खींच ही नहीं लेता, बल्कि जो एक बार मिल लेता है उसके मन में बार-बार उनके दर्शन व मिलने की उत्कंठा सहज की उत्पन्न हो जाती है। डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' नैतिकता और संस्कारों की दृष्टि से उच्च व्यक्तित्व के व्यक्ति हैं।

डॉ. 'मंगलेश' की साहित्य यात्रा के संदर्भ में प्रस्तुत हैं उनकी मौलिक, संपादित, अनूदित व अन्य कृतियाँ–

काव्य-संग्रह : निर्मला (2016), अनुभूति (2016), जय रक्तवीर (2017), समझा दो मुझे (2018), मैं क्या कहूँ... (2019), यह कैसा मंजर? (2020)।

आलोचना : काव्य पर्यालोचन, सृजन और समीक्षा, शील कौशिक का काव्यः संवेदना और शिल्पबोध, साहित्य और साहित्यालोचन, हिंदी आलोचना के विविध प्रतिमान, साहित्य पर्यालोचन, हरियाणवीः अनुप्रयोग और अनुवाद, हरियाणा शिखर महिलाएँ (जीवनी)।

संपादित : हरियाणाः जनपदीय साहित्यिक अवदान, साहित्याक्ष और साक्षात।

स्मृति और साक्षात्, डॉ. सुरेश सिंहल का साहित्य-चिंतन, गूगल बॉयः संश्लेषण-विश्लेषण सापेक्षअ डॉ. रमाकांता शर्मा

का काव्यः दिग्दर्शन, सूरश्री मधुकांत अमृतोत्सवः गौरव-ग्रंथ, डॉ. जयभगवान शर्माः गद्य गुलदाउदी।

अनूदित : अनुवाद के क्षेत्र में डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' का नाम अग्रगण्य में रखा जा सकता है। डॉ. 'मंगलेश' अब तक चार विशेष पुस्तकों का संपादन एवं प्रकाशन कर चुके हैं जो इस प्रकार हैं- सर्जनात्मक अनुवादरू अनुभूति और पुनः सृष्टि, विदेशी कहानियों के हिंदी अनुवाद, खूँरू वैश्विक बंधुत्व का सेतु, गोदः सृजनात्मक अनुवाद, जल चालीसा।

शोध कृतियाँ : प्रयोजनपरक हिंदीः अनुप्रयोग और अनुवाद (अनुवाद शोध) (केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा अनुदानित), मोहन राकेश के नाट्य-साहित्य का तात्विक विमर्श (नाटक शोध प्रबंध), हिंदी, साहित्य और अनुवाद का शोधात्मक विश्लेषण (शोध-पत्र), भाषाविद प्रो० नरेश मिश्रः हिंदी का संरचनात्मक चिंतन (भाषा शोध)।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में लघु शोध प्रबंध, शोध प्रबंध एवं अन्य विद्वानों ने भी महत्त्वपूर्ण संपादन कार्य किया है और कुछ हो रहा है जो उनके सृजन के विविध आयामों को उजागर करते हैं।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' की समीक्ष्य दृष्टि पर वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार प्रो० सारस्वत मोहन मनीषी' जी का यह लिखना बड़ा महत्त्वपूर्ण है- "डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' सर्जक के साथ-साथ समीक्षक भी है। दोनों ही कार्य दुरूह और कठिन हैं। उनका एक साथ निर्वाह एक साथ कैसे निभ पाए सुनाद्वार और अगवानी जैसा है। 'मंगलेश' ने इन समानांतर चलने वाली दो पटरियों के बीच में घोड़े और सवार दोनों को बताते हुए अपनी अच्छी घुड़सवारी का परिचय दिया है। डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' हरियाणा के गिने-चुने श्रेष्ठ समीक्षकों की अग्र पंक्ति में परि-गणित हो सकने वाले दमदार समीक्षक हैं। बिना किसी लाग- लपेट के निर्मम शल्य-चिकित्सा के विरल गुण उनमें विद्यमान हैं। सही को सही कहने और गलत को गलत सिद्धांत की तार्किकता भी उनमें है। समीक्षा का दुरूह भाव भी उनमें देखा जा सकता है। पक्षपात रहितता आपका अतिरिक्त गुण है।"[1]

मानव हृदय में कुछ आकांक्षाएँ होती हैं, जिन्हें वह जीवन पर्यंत पूरी करने की कोशिश करता है। आकांक्षाएँ सैद्धान्तिक होती हैं और मूल्य व्यावहारिक आकाक्षाएँ जब परिवर्तित होकर उस रूप में बदल जाती हैं तब वे सर्वमान्य हो जाती हैं, उस वक्त वे मूल्य का रूप धारण कर लेती हैं। मूल्य का अर्थ होता है किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण जो समालोचना में वरीयता प्रकट करता है। वह एक आदर्श या कामना अथवा इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीवित रहता है तथा जिन्दगी भर प्रयत्नशील रहता है।

मिल्टन जैसे महान साहित्यकार का मानना है, "जीवन मूल्य ओस की बून्दों के सदृश नहीं है जो मौसम के अनुसार दिखाई दें। इनकी जड़े प्रत्येक प्राणी में बहुत गहरी होती है तथा उनका हकीकत से घनिष्ठ संबंध होता है।"[2]

समाज का हर एक व्यक्ति स्वच्छंद विचारों के संग परिवर्तन का इच्छुक दिखाई देता है जो कोई काम वह अपने जीवन में करना चाहता है उसमें अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति एवं मुक्त सोच-समझ से ही चलने की आकांक्षा रखता है।

मूल्य का अर्थ- मूल्य शब्द लेटिन भाषा के 'वेलर' शब्द से लिया गया है जिसका तात्पर्य है- कीमत। धर्मग्रन्थों में मूल्य के लिए 'शील' शब्द का प्रयोग किया जाता है। मानव मूल्य एक आधार संहिता है जिससे वह अपनी जीवन शैली व व्यक्तित्व का निर्माण करता है। किसी कार्य को करने से पूर्व मनुष्य के दिल में जब यह सोच उत्पन्न होती है कि वह उसे करे या न करे, इस प्रकार के निर्णयात्मक ढंग से उत्पन्न विचार ही मूल्य कहलाता है। मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है जिसका सम्बन्ध मनुष्य के भावात्मक पक्ष से होता है जो उसके व्यवहार को काबू करता है और दिशा प्रदान करता है।

डॉ. 'मंगलेश' का मानना है, "मूल्य का सम्बन्ध अभिरुचि, अभिवृत्तियों एवं अभिप्रेरणाओं से होता है। मनुष्य जब बार-बार किसी आदर्श या सिद्धान्त को स्वीकारता है और उसे अपने जीवन में अपनाता है तो वही बात उसकी जिन्दगी में अहमियत रखने लगती है जो मूल्य का रूप धारण कर लेता है। प्रत्येक मनुष्य अपने आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही रूपों में उन भावात्मक, ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों अथवा रूपों से अभिभूत होता है और अपने जीवन में उनको दर्शन अथवा अपनी विचारधारा के रूप में अधिक महत्त्व देने लगता है।"[3]

जीवन-मूल्य और साहित्य-चिंतन - जीवन-मूल्य मानव के मूल में ही मानवतावाद, मानववाद और मानवीय मूल्य होते हैं। ये सब कुछ मानव केन्द्रित होता है। मानवतावाद को राष्ट्र, जाति, धर्म और इस तरह की दूसरी सीमाओं का अतिक्रमण करने वाली नैतिक व्यवस्था में भरोसा रहता है जो सभी मानव-मूल्यों को इसी दुनिया के अनुभवों और सम्बंधो पर आधारित समझकर आजादी और विकास के लक्ष्य पर चलता है। मानव की उत्तमता ही मानवतावाद समझी जाती है जो मनुष्य के आत्मविकास एवं समाज के हित की भावना से उदित होता है।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' का कहना है "जीवन-मूल्य और साहित्य-चिंतन की अवधारणा से अभिप्राय मानव की उस मानवतावादी विचारधारा से है जिससे मानव अपना 'मम' तथा 'ममेतर' से ऊपर सार्वजनिकहित और सुख के नियमों अथवा धारणाओं की प्रगति करता है। मानवतावादी विचारधारा से निष्पन्न चेतना के नाम से मूल्य-चिंतन की अवधारणा प्रकट होती है।"[4]

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'उत्तर-आधुनिकतावाद' एक सैद्धान्तिक आन्दोलन शुरू हुआ। हालांकि यह विशुद्ध साहित्यिक आन्दोलन नहीं है। किंतु साहित्य के साथ-साथ इसने कला के कई रूपों को प्रभावित किया है। इसने पुराने सिद्धान्तों अथवा परंपरागत मूल्यों पर फिर से विचार करने पर जोर दिया। वर्तमान में उत्तर-आधुनिकतावाद एक ही साथ आधुनिकतावाद का विकास भी है और उसका विलोम भी। आधुनिकतावाद ने मनुष्य को केंद्र में रखकर अपना विस्तार किया। आज मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधाओं को केंद्र में रखा है। इसके लिए नए-नए वैज्ञानिक आविष्कार किए। प्रकृति पर नियन्ध्रण पाने की कोशिश की। पूँजी का विकास हुआ। इसलिए भौतिक विकास को ही मनुष्य का वास्तविक विकास माना जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रकृति के साथ समाज और साहित्य का एक बड़ा हिस्सा भी हाशिए पर चला गया। उत्तर-आधुनिकतावाद का विकास आधुनिकतावाद की इन्हीं प्रवृत्तियों के विरोध में हुआ। उत्तर-आधुनिकतावाद ने हाशिए की आवाज को केंद्र में लाने की कोशिश की। इसने विकास की अवधारणा को प्रश्नांकित किया। परिणामस्ध्वरूप साहित्य में हाशिए की चीजें केंद्र में आने लगीं, यथा- आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, पर्यावरण संवेदना आदि कई विमर्श हुए तथा आज पुरुष विमर्श शुरू हो चुका है। समाज में शुरू हुए इन विमर्शों ने साहित्य, संस्कृति, राजनीति, कला, भाषा, मीडिया आदि कई चीजों को प्रभावित किया। आधुनिकता मनुष्य को केंद्र में रखती आई है। उसने औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दे, कल-कारखानों को मन्दिर के समतुल्य ठहरा दिया। मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा के लिए प्रकृति और प्रकृति के सबसे अधिक करीब रहने वालों का जम कर दोहन किया। आधुनिक मानव को लगने लगा कि उसने प्रकृति को अपने वश में कर लिया है, पर बात ऐसी नहीं थी। लोग पूँजीवाद के विकसित रूप एवं तकनीक को समाज के हर क्षेत्र में महसूस कर रहे थे।

निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मूल्यों का व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, सामाजिक संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय आचार्यों और ऋषि, मुनियों ने जीवन को श्रेष्ठ बनाने और परमानंद प्रगति की खातिर जिन पुरुषार्थों की रचना की है, उन्हें ही भारतदर्शन शास्त्र में मूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। उनका अनुसरण कर मानव दोनों लोकों में सुख पा सकता है।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' का कहना है कि "प्रेम, दया, करुणा, सत्य, अहिंसा, विनय, समभाव, समर्पण, वात्सलय, भ्रातृत्त्व, मातृप्रेम, कर्त्तव्यपालन, स्नेह आदि ऐसे मूल्य हैं जो प्रत्येक युग एवं कालखण्ड में तथा प्रत्येक देश में समान रूप एवं दृष्टि से माने जाते हैं।"[5]

मानवीय जीवन के मूल्य निर्माण में भारतीय संस्कृति में उदात, श्रेष्ठ एवं मांगलिक तत्त्वों का समावेश अति महत्त्वपूर्ण है जो जन-जन के लिए प्रेरणास्त्रोत बन जाता है। भारतीय संस्कृति के विकास में ये जीवन-मूल्य निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जीवन-मूल्य के बिना जीवन का विकास सम्मत नहीं है।

"मूल्य कोई मूर्त वस्तु नहीं, जिसे हम देख सकें बल्कि मूल्य में एक धारणा है जो विचारों से जन्म लेती है विचार विवेक से उत्पन्न होता है।"[6]

मानव मूल्यों का जन्म मानव चिंतन का ही प्रतिफल है। आदिकाल से लेकर वर्तमान यानि आज तक 'मानव-मूल्यों' का समाज में अस्तित्व किसी-न-किसी रूप-स्वरूप में मौजूद ही रहा है। साधारण रूप में मानव-मूल्य दो प्रकार के माने गए हैं- शाश्वत मूल्य और सामयिक मूल्य।

1. शाश्वत मानव-मूल्यरू शाश्वत मूल्य समाज में हमेशा व्यापक रूप में स्थायी एवं अटल रूप में मौजूद रहते हैं जिनका परिवर्तित रूप कहीं किंचित मात्र रूप में भी नहीं होता क्योंकि उनका संबंध सदा ही सात्विकता से होता है। कहने का अभिप्रायः यह है कि शाश्वत मूल्य वे मूल्य होते हैं जो प्रत्येक काल, देश तथा स्थिति में अवश्य उपस्थित रहते हैं क्योंकि ये मानव जीवन का एक ऐसा अंग बन जाते हैं जो उसके जीवन से तनिक भी जुदा नहीं होते। इस तरह मूल्य मानव जीवन के एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। मानव मूल्यों की शाश्वतता मानव जाति अथवा समाज के अस्तित्व से अलग नहीं होती। वे तो उसके अस्तित्व तक अटल हैं। इसके अर्थ किसी भी प्रकार से जड़ नहीं होते, वे गतिशील हैं, क्योंकि मानव-मूल्यों की जहाँ कहीं भी उपेक्षा होती है वहीं उनकी व्यावहारिक मान्यता की खातिर संघर्ष निश्चित-सा हो जाता है।

आधुनिक युग के इस भौतिकतावादी आकांक्षा की पूर्ति हेतु समाज में भ्रष्टाचार तथा रिश्वतखोरी का बड़ा ही ताकतवर बोलबाला है मगर फिर भी समाज का एक वर्ग इस प्रकार की अवस्था का घोर विरोधी करता पाया जाता है। क्योंकि वह ईमानदारी में पूर्णतया आस्था रखने वाला होता है। इस मूल्य की सत्ता को बरकरार रखने को वह वर्ग कुछ भी करने को दृष्टिगोचर नजर आता है। इसलिए कि ईमानदारी एक शाश्वत मूल्य है। एक प्रकार से देखा जाए जो ईमानदारी, सच्चाई आदि मूल्य सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर युग से ही चले आ रहे हैं और आज इस कलयुग के दौर में भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और सृष्टि के अंतिम वक्त तक काबिज भी रहेंगे।

2. सामयिक मानव-मूल्यः मानव-मूल्य शाश्वत होने के साथ-साथ सामयिक मूल्य भी होते हैं, जैसे यह अटल सच्चाई है कि सूर्य पूर्व से उदय होकर पश्चिम में ही अस्त होता है। ठीक वैसी ही सच्चाई मानव-मूल्यों की सामयिकता में निहित है। सामयिकता से तात्पर्य है- समय से संबंध रखने वाला अथवा वर्तमान समय से है।

डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री जी सामयिकता के अर्थ को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "सामयिक होने का भाव, वर्तमान समय, परिस्थिति आदि के विचार से उपयुक्त दृष्टिकोण या अवस्था होती है। जिसे समसामयिक मूल्यों के रूप में भी स्वीकारा जाता है।"[7]

इस प्रकार समसामयिक मूल्य पुरातन एवं परम्परागत न होकर सामयिकता की देन होते हैं। मानव के संतुलित व्यक्तित्व विकास हेतु इस किस्म के दोनों प्रकार के मूल्यों का पारस्परिक घनिष्ठ संबंध है।

इन मूल्यों के बदलाव के मुख्य कारण तो मनुष्य और समाज हैं- "जनसामान्य का अध्ययन बतलाता है कि कोई भी मानव मूल्य ऐसा नहीं जिसके विषय में हम कह सके कि यह प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र को मान्य है।"[8]

आज मानव मूल्यों और आचरण में असंतुलन का फांसला गहराता जा रहा है क्योंकि कथनी और करनी में बहुत अंतर हो गया है- "मुझे बार-बार पूछने पर भी अभी तक कोई ऐसा आदमी नहीं मिला है जो यह कह दे कि गलत काम करने से पहले मुझे अन्तः करण की एक बार भी आवाज नहीं आई।"[9]

मानव-मूल्यों को बनाए रखने का महत्त्व जीवन-मूल्यों की दृष्टि से समाज में फैले द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, हताशा, निराशा, कुंठा, भय इत्यादि का निवारण मानव समाज को संतुष्टि एवं सुखद विस्तार की ओर अग्रसर करते हैं।

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' कहते हैं, "युग-परिवर्तन के साथ-साथ मानव जीवन-मूल्य भी बदलते हैं। जिस प्रकार आदिकालीन जीवनादर्श यथावत रूप में मध्यकाल में और मध्यकालीन जीवन-मूल्यों को यथावत रूप में आधुनिक काल में नहीं पाया जा सकता, किंतु कुछ ऐसे भी मानव-मूल्य हैं जो हर युग में अपनी उपस्थिति बनाए रख सके हैं। ये ही शाश्वत जीवन-मूल्य हैं और इन्हें भारतीय साहित्य के हर कालखण्ड में अंतर्निहित पाया जा सकता है।"[10]

मनुष्य ने अपने जीवन निर्वाह की खातिर मूल्यों के माध्यम से नियमों की रचना की और उन्हीं का प्रयोग परम्परागत रूप से होता चला गया जो मानव के विकास की धारा को दर्शाता गया है। इसका मुख्य कारण है युगानुरूप मूल्यों के व्यवहार

में होने वाला परिवर्तन। मूल्यों का क्षेत्र विस्तार चाहे नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा अन्य कोई भी हो उनका प्रत्यक्ष रूप में संबंध मानव-जीवन के संवेदनात्मक रूप से ही रहा है। मूल्य कभी भी ध्वस्त, विनिष्ट अथवा जर्जर नहीं होते हैं, क्योंकि मूल्य दृश्यमान नहीं होते, अपितु चेतना स्तर पर इनकी अनुभूति की जा सकती है।

शोध में साहित्य-चिंतन का अर्थ किसी शोध-विषय के विशेष क्षेत्र के ज्ञान से है। जिसके अंतर्गत विचारात्मक, सृजनात्मक, सैद्धांतिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक शोध अध्ययन अंतर्निहित है। समीक्षा या चिंतन का अर्थ शोध के विशेष क्षेत्र में पूर्व में हुए कार्यों का पुनर्निरीक्षण करने से है। साहित्य पुनर्निरीक्षण के लिए किसी विशिष्ट विषय संबंधी पूर्व में हुए कार्यों की समीक्षा करना होता है। साहित्य-चिंतन के माध्यम से शोधकर्ता यह निश्चित करता है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शोध से संबंधित विषय पर विचारणीय कार्य पहले भी हो चुका है या नहीं, इसके लिए वह शोध-विषय क्षेत्र से संबंधित विविध साहित्य का अवलोकन करता है।

साहित्य-चिंतन की आवश्यकता शोध कार्य की योजना बनाने में, शोध समस्या के चयन करने में अपने शोध अध्ययन के लिए परिकल्पना के निर्माण करने में निहित है। यह शोधकर्ता को एक दिशा प्रदान करती है। साथ ही शोधकर्ता अपने साहित्यिक चिंतन के आधार पर ही अपनी शोध परिकल्पना तैयार कर एक नवीन ज्ञान को सृजित व अन्वेषित करता है। साहित्य का चिंतन शोध समस्या के चयन से पहले प्रारंभ करना होता है, ताकि शोधकर्ता को शोध समस्या की पहचान और चयन करने में सहायता मिल सके। एक शोधकर्ता को अपने विषय क्षेत्र से संबंधित विषय साहित्य के लिए व्यक्ति विशेष लेखक, साहित्य, निरंतर पुस्तकालय एवं सूचना केंद्र से संपर्क में रहकर नवीन और अद्यतन ज्ञान प्राप्त करते रहना होता है, ताकि अपने शोध अध्ययन को वैज्ञानिकता और नवीनता प्रदान कर सके।

साहित्य-चिंतन प्रक्रिया के पीछे शोधकर्ता के कुछ उद्देश्य भी निहित होते हैं, यथा- साहित्य-चिंतन शोध परिकल्पना के लिए साधन प्रदान करती है, जो शोधकर्ता को शोध परिकल्पना के निर्माण में सहायक है। यह शोध परिकल्पनाएँ एक नए शोध के लिए उपयोगी एवं शोध समस्या के चयन में भी सहायता प्रदान करती हैं।

दूसरा, चिंतन शोध समस्या के समाधान के लिए उचित शोध प्रविधि, प्रक्रिया, तथ्यों के साधन और सांख्यिकीपरक सुझाव जुटाती हैं जिससे शोधार्थी परिणामों के विश्लेषीकरण में उपयोगी निष्कर्षों और तुलनात्मक तथ्यों को निर्धारित करता है।

"साहित्य-चिंतन के विविध साधन या स्रोतों का सहारा लेकर शोधकर्ता अपने शोध कार्य को अग्रसर करता है चूंकि शोध के क्षेत्र में संबंधित साहित्य का चिंतन करना आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य होता है जिसके लिए हमें मुद्रित, अमुद्रित, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपलब्ध विशेष क्षेत्र से संबंधित ज्ञान और सूचना की खोज और समीक्षा को जुटाना होता है। इस प्रकार निम्नलिखित प्रमुख स्रोतों की खोज, गहन अध्ययन, मौलिक पुस्तकें, सहायक ग्रंथ, समीक्षा ग्रंथ, शोध लेख, शब्दकोश, सामयिक प्रकाशन, पत्रिकाएँ आदि का पुनर्निरीक्षण करना आवश्यक ही नहीं वल्कि अपेक्षित होता है।"[11]

निष्कर्ष

अतः साहित्य के मूल में संवेदना होती है और संवेदना के मूल में वह व्यापक दृष्टि अर्थात चिन्ताशील विचारधारा जो मानव को जीवमात्र के प्रति करुणामयी, संयमी, ईमानदार, दयालु बनाती है। वह करुणा ही है, जिसकी वजह से मानव किसी रचना के सृजन के सामर्थ्य का वरदान पाता है। करुणा और संयम मानव हृदय के विभिन्न भावों एवं आवेगों में बहती है क्योंकि वही एक सनातन परम्परा है। वैदिक युग से ही भारतीय वाङ्मय मानव-मात्र का हित-चिंतक रहा है। बाद में साहित्य में यहाँ-वहाँ, जहाँ कहीं भी करुणा के अतिरिक्त अन्य रसों का संचार है तो वहाँ किसी-न-किसी रूप में करुणा, मानवता या संवेदना का कोई-न-कोई पक्ष प्रेरणा के रूप में अवश्य पाया जाता है। विभिन्न रसों का स्वरूप ग्रहण कर, विभिन्न मानवीय मूल्यों का सार्थक अस्तित्व उभरता है। भारतीय साहित्य में यही मानव मूल्य जीवन मूल्यों का रूप धारण कर एक शाश्वत परम्परा में सतत् चिंतनशील निरंतरता में बहते रहते हैं।

मूल्यों का मानव-जीवन और साहित्य-चिंतन से घनिष्ठ संबंध हैं। मूल्य मानव-जीवन के अस्तित्व तथा आध्यात्मिक-आदर्शात्मक-सांस्कृतिक आयामों से उद्भूत होते हैं। मानव-जीवन मूल्यों से ही नियंत्रित होता है। मूल्यों का महत्त्व सापेक्षिक होता है तथा उनका संबंध मानवीय चेतना अथवा साहित्य-चिंतन से होता है। मानवीय मूल्यों में जीवन की सार्वभौम संवेदना और प्रयोजनशीलता को स्वीकार किया जाता है, ये जीवन मूल्य साहित्य में सौंदर्य, शिवत्व एवं सत्य के रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं। मूल्यपरक होने के कारण ही साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य की मूल्यवता उसके स्वरूप के साथ-साथ उसके व्यापक प्रयोजन में निहित होती है। साहित्य की कोई भी प्रवृत्ति या कोई भी कृति अपने में निरपेक्ष या असंपृक्त प्रवृत्ति या कृति नहीं होती है। वह क्षण या अवधि, जिसमें वह कृति रची गई, उस लंबी परंपरा की ही एक संबंद्ध कड़ी है और वह कृतिकार उसी समूह की एक ईकाई है, फिर भी किसी विशिष्ट अनुभूति-प्रक्रिया और रचना प्रणाली के बल पर सृजन का वह क्षण समस्त परंपरागत इतिहास से अधिक सजीव और मर्मस्पशी बन जाता है। इस क्षण में उसके द्वारा अनुभूत भावसत्य केवल उसका और उस क्षण का ही न रहकर साधारणीकृत और स्थाई हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मानव मूल्यों के केंद्र में सर्वमान्यता आचरण की होती है। इन मूल्यों की प्रस्तुति साहित्यिक कृतियों अथवा रचनाओं के चिंतन में उदाहरण सहित प्रस्तुत की जा सकती है। अतः व्यक्ति के व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास में आचरण को सबसे प्रमुख आधार को स्वीकृति दी गई है। अतः मूल्याधिष्ठित साहित्य शाश्वतता को प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', काव्य पर्यालोचन, मोनिका प्रकाशन, मौजपुर, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2020
2. देवेन्द्र इस्सर, उत्तर-आधुनिकताः साहित्य और संस्कृति की नई सोच, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 37
3. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' के वक्तव्यानुसार
4. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', सृजन और समीक्षा, राइजिंग स्टार, मौजपुर, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2022
5. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', सृजन और समीक्षा, राइजिंग स्टार, मौजपुर, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2022
6. डॉ. कुमार विमलः मूल्य परिवर्तन, पृ० 64
7. शिव प्रसाद भारद्वाज, उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श, सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. -वही -
9. - वही -
10. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', हिंदी आलोचना के विविध प्रतिमान, निर्मला प्रकाशन, चरखी दादरी हरि., 2023
11. डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश', साहित्य पर्यालोचन, निर्मला प्रकाशन, हरि., 2024

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

चंद्र किशोर जायसवाल के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन

नीला कुमारी
शोधार्थी, पाटलिपुत्र महाविद्यालय

हिंदी कथा-साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणु' के बाद के महत्वपूर्ण उपन्यासकार चंद्रकिशोर जायसवाल (जन्म : 15 जुलाई 1940) हैं। उनकी रचनाओं में बिहार की माटी, आंचलिक यथार्थ, सामाजिक सरोकार, और मानवीय संवेदनाओं का गहरा अंकन है।

चन्द्रकिशोर जायसवाल का जन्म 15 फरवरी, 1940 को बिहार के मधेपुरा जिले के बिहारीगंज में हुआ। आपने पटना विश्वविद्यालय, पटना से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर शिक्षा हासिल की और अरसे तक अध्यापन करने के बाद भागलपुर अभियंत्रणा महाविद्यालय, भागलपुर से प्राध्यापक के रूप में सेवानिवृत्त हुए।

बीज शब्द- चंद्र किशोर जायसवाल, कथा-साहित्य, ग्रामीण, यथार्थ, दस्तावेज़, आर्थिक विषमता, जातीय विभाजन, भोजपुरी, लोकगीत, लोकभाषा, विवाह-संस्कार।

आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'गवाह गैरहाजिर', 'जीबछ का बेटा बुद्ध', 'शीर्षक', 'चिरंजीव', 'माँ', 'दाह' 'पलटनिया', 'सात फेरे', 'मणिग्राम', 'भट्ठा', 'दुखग्राम' (उपन्यास); 'मैं नहिं माखन खायो', 'मर गया दीपनाथ', 'हिंगवा घाट में पानी रे!', 'जंग', 'नकबेसर कागा ले भागा', 'दुखिया दास कबीर', 'किताब में लिखा है', 'आघातपुष्प', 'तर्पण', 'जमीन', 'खट्टे नहीं अंगूर', 'हम आजाद हो गए!', 'प्रतिनिधि कहानियाँ' (कहानी-संग्रह); 'शृंगार', 'सिंहासन', 'चीर-हरण', 'रतजगा', 'गृह-प्रवेश', 'रंग-भंग' (नाटक); 'आज कौन दिन है?', 'त्राहिमाम', 'शिकस्त', 'जबान की बन्दिश' (एकांकी)।

आप 'रामवृक्ष बेनीपुरी सम्मान' (हजारीबाग), 'बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान' (आरा), 'आनन्द सागर कथाक्रम सम्मान' (लखनऊ), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद का 'साहित्य साधना सम्मान' (पटना) और बिहार सरकार का जननायक 'कर्पूरी ठाकुरी सम्मान' (पटना) से सम्मानित हैं।

प्रमुख उपन्यास और कथा संग्रह : जायसवाल जी की लेखनी में बिहार की माटी और वहां के जनजीवन की गहरी छाप है।

उपन्यास : उनके प्रमुख उपन्यासों में गवाह ग़ैरहाज़िर, जीवछ का बेटा बुद्ध, शीर्षक, चिरंजीव, दाह, माँ, और पलटनिया शामिल हैं।

कहानी-संग्रह : उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रहों में मैं नहिं माखन खायोश, मर गया दीपनाथ, जंग, दुखिया दास कबीर, किताब में लिखा है, तर्पण, और आघातपुष्प प्रमुख हैं।

साहित्य की विशेषताएँ और सम्मानउनकी कहानियाँ और उपन्यास केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे समाज के गहरे अंतर्विरोधों, जैसे साम्प्रदायिकता, आर्थिक संघर्ष, और ग्रामीण-शहरी बदलावों को उजागर करते हैं। साहित्य में उनके अप्रतिम योगदान के लिए उन्हें रामवृक्ष बेनीपुरी सम्मान, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान, और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का साहित्य साधना सम्मान मिल चुका है।

आपके उपन्यास 'गवाह गैरहाजिर' पर राष्ट्रीय फ़िल्म विकास घनिगम द्वारा निर्मित फ़िल्म 'रूई का बोझ' और कहानी 'हिंगवा घाट में पानी रे!' पर दूरदर्शन द्वारा निर्मित फ़िल्में काफी चर्चित रही हैं। 'रूई का बोझ' नेशनल फ़िल्म फेस्टिवल पैनोरमा (1998) के लिए चयनित हुई थी और अनेक अन्तराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सवों में प्रदर्शित हो चुकी है।

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में चंद्र किशोर जायसवाल का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में भारतीय ग्रामीण जीवन की वास्तविकता, सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता, जातीय विभाजन, पारिवारिक संबंधों, लोकसंस्कृति तथा बदलते ग्रामीण परिवेश का अत्यंत सजीव और यथार्थपरक चित्रण किया है। उनका कथा-संसार विशेष रूप से बिहार के ग्रामीण अंचल की मिट्टी से जुड़ा हुआ है। उनकी कहानियों और उपन्यासों में गाँव केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि जीवंत सामाजिक-सांस्कृतिक संसार के रूप में उपस्थित होता है। उनके साहित्य में ग्रामीण जीवन की समस्याएँ, संघर्ष, मानवीय संवेदनाएँ तथा परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं।

चंद्र किशोर जायसवाल का कथा-साहित्य ग्रामीण समाज के यथार्थ का विश्वसनीय दस्तावेज़ माना जा सकता है। चंद्र किशोर जायसवाल ने ग्रामीण समाज के आर्थिक संघर्ष को अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया है। उनके पात्र प्रायरू किसान, खेतिहर मजदूर, निम्न-मध्यवर्गीय परिवार तथा श्रमजीवी वर्ग से जुड़े होते हैं। इन पात्रों के माध्यम से वे गरीबी, बेरोजगारी, ऋणग्रस्तता तथा संसाधनों की कमी जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। ग्रामीण परिवारों का दैनिक संघर्ष, सीमित आय, कृषि पर निर्भरता तथा प्राकृतिक आपदाओं का प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देता है। आर्थिक अभाव केवल जीवन-निर्वाह की समस्या नहीं है, बल्कि सामाजिक सम्मान, शिक्षा और भविष्य की संभावनाओं को भी प्रभावित करता है।

उनके कथा-साहित्य में ग्रामीण समाज की जातीय संरचना का भी अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है। गाँव में व्याप्त जातिगत भेदभाव, ऊँच-नीच की मानसिकता तथा सामाजिक असमानता को उन्होंने बिना किसी कृत्रिमता के प्रस्तुत किया है। उनके पात्र सामाजिक व्यवस्था के भीतर संघर्ष करते हैं और अनेक बार अन्याय एवं शोषण का सामना करते हैं। लेखक सामाजिक समरसता और मानवीय समानता का पक्षधर दिखाई देता है।

धरती के बिना जीवन संभव नहीं है प्रकृतिगत सौंदर्य चाहे वह नदियों का बहता हुआ जल, पक्षियों की चह-चहाहट आसमान को छुते हुए पहाड़ों का दृश्य, गिरते हुए झरनों का सौंदर्य मन को भा लेता है। इन्ही प्रकृति के बीच रहकर उनके सौंदर्य में खो जाने वाला मनुष्य जो अपनी जीवकोपार्जन के लिए एक सुरक्षित घेरा बनाकर रहने लगता है, वह जगह गाँव का स्वरूप ले लेता है। इस गाँव में निवास करने वाले ग्रामीण कहलाते हैं एवं इसकी जीवनचर्या ग्रामीण जीवन बन जाता है। भारत के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि वैदिक काल में भारतीय ग्रामीण जीवन संपन्न एवं खुशहाल था, किंतु धीरे-धीरे परिवर्तन के साथ समाज में अनेक कुरीतियाँ, बुराई, पाखंड एवं अंधविश्वास ने जन्म ले लिया जिसके परिणाम स्वरुप समाज में असमानता, अशिक्षा, मान्यता के नाम पर शोषण के वीभत्स रूप के कारण गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी तथा प्रताड़ना बढ़ गया। ग्रामीण जीवन नरकीय बन गया। समय के साथ समाज में फिर चेतना जागृत हुआ। शनैः शनैः जागरूकता आने से समाज में बदलाव के साथ सुधार होता गया। ग्रामीण जीवन भारतीय समाज का आधार है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को जानने एवं समझने के लिए गाँव में रहने वाले लोगों को जानना एवं समझना होगा। गांधी जी ने भी आजादी मिलने के पश्चात कहा था- "भारत दिल्ली नहीं है, भारत तो गाँव में बसता है, इसलिए हमें गाँवों की दशा सुधारनी होगी"। इस संदर्भ में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के कथन अनुसार- "हम केवल राजनीतिक आजादी प्राप्त कर सके हैं, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए अभी संघर्ष की आवश्यकता है।"

आज वर्तमान समय में विज्ञान के कारण आमूल चूल परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन से गाँवों में भी जागरूकता आई एवं गाँव प्रगति के मार्ग पर चल पड़ा। प्राथमिक जरूरत के चीजों का विस्तार हुआ, रोजगार के नए-नए अवसर उपलब्ध हुए। गाँव वाले स्वयं नए-नए प्रयोग कर अपने कार्य को गति देने लगे। परिणामस्वरुप गाँव का भी दृश्य बदल गया।

ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण भी उनके साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। लोकगीत, लोकभाषा,

विवाह-संस्कार, पर्व-त्योहार, धार्मिक आस्थाएँ तथा ग्रामीण परंपराएँ उनकी रचनाओं को जीवन्त बनाती हैं। उनकी भाषा में देशज शब्दों तथा लोक-प्रयोगों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है, जिससे कथानक में प्रामाणिकता आती है। स्थानीय बोली और लोकसंस्कृति का यह समावेश उनके साहित्य को विशिष्ट पहचान प्रदान करता है।

चंद्र किशोर जायसवाल ग्रामीण परिवारों के बदलते स्वरूप को भी गंभीरता से चित्रित करते हैं। संयुक्त परिवारों का विघटन, पारिवारिक मूल्यों का क्षरण, पीढ़ियों के बीच बढ़ती दूरी तथा आधुनिक जीवनशैली का प्रभाव उनके कथा-साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। परंपरा और आधुनिकता के संघर्ष से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन उनके पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है।

उनकी कहानियों में ग्रामीण स्त्रियों का चित्रण भी अत्यंत संवेदनशील है। स्त्रियाँ परिवार की आधारशिला होते हुए भी अनेक प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और मानसिक संघर्षों से गुजरती हैं। वे श्रमशील, सहनशील तथा आत्मसम्मान से युक्त दिखाई देती हैं। लेखक ने ग्रामीण नारी की पीड़ा, त्याग, संघर्ष और आत्मबल को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है।

ग्रामीण राजनीति तथा प्रशासनिक व्यवस्था भी उनके कथा-साहित्य का महत्वपूर्ण पक्ष है। पंचायत व्यवस्था, स्थानीय नेतृत्व, चुनावी स्वार्थ, भ्रष्टाचार तथा सत्ता-संघर्ष का प्रभाव गाँव के सामाजिक जीवन पर किस प्रकार पड़ता है, इसका चित्रण उन्होंने प्रभावशाली ढंग से किया है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समस्याएँ केवल आर्थिक नहीं, बल्कि राजनीतिक और प्रशासनिक भी हैं।

चंद्र किशोर जायसवाल के कथा-साहित्य में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण माध्यम माना गया है। अशिक्षा, अंधविश्वास तथा रूढ़िवादिता के कारण ग्रामीण समाज अनेक समस्याओं से घिरा रहता है। लेखक शिक्षा के माध्यम से सामाजिक जागरूकता और प्रगतिशील चेतना का समर्थन करता है। ग्रामीण युवाओं के सपने, उनकी आकांक्षाएँ तथा बेहतर जीवन की खोज भी उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। उनकी रचनाओं का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उनका यथार्थवाद है। वे ग्रामीण जीवन का न तो अत्यधिक महिमामंडन करते हैं और न ही केवल उसकी नकारात्मक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उनके साहित्य में गाँव का वास्तविक जीवन अपनी समस्त अच्छाइयों और कमियों के साथ उपस्थित होता है। मानवीय संबंधों की आत्मीयता, सहयोग की भावना तथा सामुदायिक जीवन की विशेषताओं के साथ-साथ शोषण, गरीबी, जातीय विभाजन और सामाजिक विषमताओं का भी संतुलित चित्रण मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चंद्र किशोर जायसवाल का कथा-साहित्य भारतीय ग्रामीण जीवन की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय संवेदनाओं का सशक्त दस्तावेज़ है। उन्होंने गाँव की वास्तविक समस्याओं को गहरी मानवीय दृष्टि से समझा और उन्हें साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। उनके कथा-साहित्य का अध्ययन समकालीन ग्रामीण समाज की जटिलताओं को समझने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। इसलिए हिंदी कथा-साहित्य में ग्रामीण जीवन के यथार्थवादी चित्रण के संदर्भ में चंद्र किशोर जायसवाल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है।

संदर्भ ग्रंथ

जायसवाल, चंद्र किशोर - प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
जायसवाल, चंद्र किशोर - खट्टे नहीं अंगूर।
जायसवाल, चंद्र किशोर - किताब में लिखा है, रचनाकार प्रकाशन।
नामवर सिंह - कहानी : नई कहानी।
बच्चन सिंह - हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास।
रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा।
नगेंद्र (सम्पा.) - हिंदी साहित्य का इतिहास।
रामचंद्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास, चंद्र किशोर जायसवाल के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन।

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

उषाकिरण खान के उपन्यासों में चित्रित समाज

अलीशा बेगम. एन.
शोधार्थी
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
त्याग राज नगर, चेन्नई, भारत

डॉ. एन. जयश्री
गाइड

प्रस्तावना

व्यक्ति स्वभाव से ही सामाजिक है और वह परस्पर मिलकर समाज का निर्माण करता है। समाज मानवीय संबंधों का एक जाल है। जिसका निर्माण स्वयं व्यक्ति और व्यक्तियों का समूह करता है। मनुष्यों का प्राकृतिक संगठन है। समाज का अर्थ व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जिसकी अपनी पारस्परिक भागीदारी, संस्कृति, सामान्य जीवन विधि, अभिरुचि के आधार पर उन्हें एकताबद्ध अथवा संगठित रूप से पहचानना हो। व्यक्तियों का ऐसा समूह समाज कहलाता है। "समाज एक पीढ़ी की साहित्य, कला, विज्ञान की अतुलनीय संपदा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानांतरित करता है। इससे मनुष्य की प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और उसे आगे बढ़ने में सफलता मिलती है। शक्ति, समय और बुद्धि का दुरुपयोग नहीं होता है। मार्ग को सरल बनाने का कार्य एक व्यक्ति ना करके पूर्ववती असंख्य प्रतिभाशाली व्यक्ति किया करते हैं। जिस के सहयोग से उन्नति संभव है।"[1]

साहित्य और समाज का संबंध

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। यह एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्यकार का पोषण सामान्यतः सामाजिक परिवेश में होता है। वह अपनी संवेदनशील एवं विशेष दृष्टि के फलस्वरुप समाज का सूक्ष्मता से गहन अध्ययन करता है। उसे साहित्य में अपनी कलम के माध्यम से व्यक्त करता है। इस प्रकार समाज यदि शरीर है, तो साहित्य उसकी आत्मा है। समाज का जैसा आचार-व्यवहार, संबंध, जीवन-मूल्य होते हैं,साहित्य में वैसी ही प्रतिछाया देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए यदि समाज में धार्मिक भावनाओं का आधिक्य है, तो साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह सकता। उदाहरण भक्तिकाल। अगर समाज में भोग-विलास है,तो वह साहित्य में भी दिखाई देगा। उदाहरण रीतिकाल। प्रेमचंद के गोदान उपन्यास में निम्न वर्ग व कृषक वर्ग का अच्छा उदाहरण है। इसमें तत्कालीन समाज के आधार पर शोषित वर्ग का उत्तम चित्रण प्रस्तुत किया है। साहित्य और समाज के अभिन्न संबंध को देखते हुए हम कह सकते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य एक ऐसा साधन है जिसमें काल विशेष की चेतना या स्फूर्ति अपनी अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त हो उठती है और यह स्फूर्ति पल्लवित होकर राजनीति, दर्शन और कला के क्षेत्र में विभिन्न युगांतरकारी परिवर्तनों का कारण बन जाती है। समाज परिवर्तनशील है। समाज में आंतरिक व बाह्य परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तन होते रहते हैं। यह परिवर्तन हमें साहित्य में भी दृष्टिगोचर होते हैं। समाज में यह परिवर्तन कभी मंद गति से तो कभी तीव्र गति से होते हैं।

उपन्यास

"उपन्यास मानव जीवन का उसके समग्र रूप में चित्रण प्रस्तुत करने वाला आधुनिक युग में सबसे सशक्त साहित्य साधन है। मनुष्य के जीवन की झाँकी और उसके चरित्र की विभिन्न परिस्थितियों में प्रतिक्रियात्मक संभावनाओं का जितना सफल उद्घाटन उपन्यासों द्वारा किया जाता है उतना और किसी साहित्यिक विधा में नहीं किया जाता।"[2] 21वीं सदी के श्रेष्ठ उपन्यास कारों में उषाकिरण खान ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इन्होंने मैथिली तथा हिंदी में समान कार्य किया है। उषा किरण खान ने अपने उपन्यासों में स्वतंत्रता पश्चात सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभावशाली वर्णन किया है। इन्होंने अपनी उपन्यासों में स्त्री-वेदना अनमेल-विवाह, धोखे से विवाह, बहू पर अत्याचार, घर और बाहर सामंजस्य बैठाती नारी का सचित्रण किया है। इन्होने प्रौढ़-शिक्षा अभियान, नारी शिक्षा, गरीबी, वर्ण व्यवस्था बेकारी की समस्या, समाजवाद की समस्या, काम के कारण पलायन, स्तर-भेद, कुटीर उद्योगों का का पतन, बलात्कार, संयुक्त परिवार में विघटन, व्यवसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, गुनहगार वृत्ति इत्यादि यथार्थ सामाजिक रूपों से परिचित कराया है। उक्त विषयों को उचित पात्रों के माध्यम से समाज का सफल चित्रण इन्होंने अपने उपन्यास में किया है। अपने उपन्यासों में इन्होंने आदर्श भी स्थापित की हैं। उषाकिरण खान के उपन्यासों के माध्यम से समाज के कुछ पहलुओं पर विचार डालते हैं।

हसीना मंजिल

हसीना मंजिल में लेखिका ने भारतीय परंपरागत कुटीर उद्योग लाख की चूड़ी के बारे में बताया है। यह उद्योग लुप्त प्राय होता जा रहा है।लेखिका ने हसीना पात्र के द्वारा अपने भारतीय कुटीर उद्योग को जिंदा रखा है और उसे समाज में एक उचित पहचान दिलाई है। "सकीना बानो को उनकी लोक कला (लहा की चूड़ी) के विशिष्ट ज्ञान के लिए कला अकादमी बिहार ने पुरस्कार के लिए चुना है आगत स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त को माननीय मुख्यमंत्री के हाथों पदक एवं रु. 25000 की राशि गांधी मैदान पटना में प्रदान किया जाएगा।"[3] दूसरी ओर लेखिका ने वर्तमान समय की गंभीर समस्या पलायनवादिता के बारे में बताया है। जिसमें लोग ज्यादा पैसे कमाने की चाहत में विदेशों में पलायन कर रहे हैं। बिना यह जाने कि उनके चले जाने के बाद उनके परिवार वालों का क्या होगा।ऐसे एक वर्ग विशेष के बारे में उपन्यास में बताया है। ऐसे पुरुषों के कारण जो ज्यादा अर्थ संचय का मोह रखते हैं। जब वह विदेशों में चले जाते हैं तो उनके परिवार वाले खासकर उनकी पत्नियाँ किस तरह की दुख तकलीफ का सामना करती हैं। इस वेदना का लेखिका ने हसीना और सकीना के माध्यम से सफल चित्रण किया है "हसीना को क्या पहाड़ का सा दुख काटना पड़ा सो सकीना को मालूम था। स्वयं सकीना भी उसी दुख के पहाड़ के नीचे दबी है। सकीना को पता है जिस दिन उसका बाप उसकी माँ की कोख में उसे छोड़ गया तभी से हसीना बेहद पीड़ा में रही है।"[4] इस तरह की लेखिका ने तत्कालीन समाज को अपने उपन्यासों में सफल वर्णन प्रस्तुत किया है।

रतनारे नयन

लेखिका ने इस उपन्यास में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तनों को दर्शाया है। तत्कालीन समाज में परिवर्तन बाह्य ही नहीं आंतरिक धरातल पर भी हो रहे हैं। लोगों की सोच बदल रही है। उनमें बदलाव की भावना सशक्त रूप से सामने आ रही है। उपन्यास में बाल मजदूरी और उसके खिलाफ कानून का चित्रण किया गया है। "एक संस्था वाले ने बबलू गोप को आड़े हाथों लिया, आप पहले अपराधी हैं बबलू जी। आपके गौशाला में दर्जन भर बच्चे काम करते हैं। स्कूल नहीं जाते हैं। आपके आढत का भी यही हाल है।"[5] "यह सही नहीं है बाल श्रम उन्मूलन आपका दायित्व है।"[6] रतनारे नयन उपन्यास में लेखिका ने आधुनिक समाज में भी नारी शोषण को बताया है। सदियों से पुरुष की कुवासनाओं का शिकार रही है स्त्री। शिक्षित एवं आधुनिक समाज में भी बड़ी भयावह तरीके से इस दंश को झेल रही है। सदियों पुराने समय के पुरुषों की और वर्तमान समय में सुशिक्षित पुरुष की मानसिकता नहीं बदली है। वह आज भी नारी को एक देह के रूप में देखता है। जब

उस पर कुभावनाओ का ज्वर चढ़ता है, तो वह बलात्कार जैसी घटनाओं को अंजाम देता है। वर्तमान समय में निर्भया कांड हो या प्रियंका कांड आए दिन ऐसी घटनाएं होती रहती है। लेखिका ने इसी कड़वे सत्य को उपन्यास की नायिका रूपा के माध्यम से चित्रित किया है। कॉलेज से आते समय रूपा का बलात्कार हो जाता है। निर्दयी पुरुष यहीं पर ही नहीं रुकते उसे निर्वस्त्र अधमरा छोड़ कर भाग जाते हैं। यह महिलाओं की विडंबना है कि जहाँ एक और स्त्री पुरुष को समानता का दम भरा जाता है। वहीं पर बलात्कार जैसी घटनाओं को भी अंजाम दिया जाता है। क्योंकि इस समय मैंने समाज के परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित किया है और लेखिका भी पुरुषों की दकियानूसी सोच पर लगाम लगाना चाहती है। वह कहना चाहती है कि स्त्री सशक्त है वह तुम्हारे अत्याचारों से रुकने वाली नहीं है। इसी सोच का सकारात्मक आगाज लेखिका ने रूपा महिला पात्र के द्वारा चित्रित किया है। बलात्कार जैसा भयावह दंश सहने के कुछ दिनों के बाद ही रूपा अपने कॉलेज जाने के लिए तैयार हो गई ना तो वह मुँह छुपा कर बैठी और ना ही डरी। "कुछ लड़कियाँ जो रूपा के केस को जानती थी उन्हें हैरत हुई कि यह कैसे गई। कुछ जो प्रोग्रेसिव थी, उन्हें रूपा का आना अच्छा लगा। वह उसके चारों ओर जुट गई। स्टाफ रूम में प्रोफ़ेसर ने खुशी जाहिर कि रूपा सही मायने में शिक्षित स्त्री है।उसे उच्च शिक्षा पाने का पूरा हक है।"[7] लेखिका उक्त कथन के माध्यम से उन सभी महिलाओं को एक संदेश देना चाहती है कि अपने ऊपर हुए अत्याचार का डटकर मुकाबला करो आप अपना जीना मत छोड़िए वास्तव में रतनारे नयन उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने वर्तमान समाज में परिवर्तन का भली-भांति चित्रण किया है।

गहरी नदिया नाव पुरानी

गहरी नदिया नाव पुरानी लेखिका की एक उत्कृष्ट कृति कही जा सकती है। इस उपन्यास में लेखिका ने दो अलग-अलग पीढ़ियों की महिलाओं पुनकला और लीला के जीवन का परिचय देते हुए समाज में आज भी स्त्रियों को कैसे छला जाता है, उस पर ध्यान केंद्रित किया है। साथ ही साथ लेखिका ने बिहार की तत्कालीन राजनीति व्यवस्था के कुछ तथ्यों को भी उजागर किया है। भारत एक विविध भौगोलिक स्थिति वाला देश है। यहाँ पर प्रत्येक वर्ष कहीं पर बाढ़ तो कहीं पर सूखे की स्थिति का सामना जनता को करना पड़ता है। बाढ़ की स्थित होने पर सरकार द्वारा जनता के लिए राहत के सामान मुहैया कराए जाते हैं।जैसे जनता के खाने-पीने और रहने की व्यवस्था, बचाव कार्य इत्यादि। परंतु वर्तमान समय में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इन विकट परिस्थितियों में जहाँ लोग इस प्राकृतिक आपदा की मार झेल रहे होते हैं, वही कुछ लोग समाज सेवा के नाम पर अपना घर भर रहे होते हैं। गरीब जनता के हक को पूरी तरह खा जाते हैं या कुछ घटिया सामान जनता तक पहुँचा कर खानापूर्ति करते हैं। "आपको मालूम है कि कुसहा बाँध के टूटने के समय पुनर्वास पर हजारों टन प्लास्टिक तंबू तानने का ठीका मिला था इसको, घटिया पन्नी सप्लाई कर पैसा कमाया।"[8] इस तरह से लेखिका ने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की सही स्थिति का चित्रण किया है।छोटे बड़े सभी राजनेताओं के भ्रष्टाचार का खामियाजा गरीब जनता को भुगतना पड़ता है।

जातिवाद की जड़ें भारत की संस्कृति और राजनीति में बहुत गहराई से फैली हुई हैं। जाति प्रथा का भारतीय समाज और राजनीति से गहरा सरोकार है। वर्तमान राजनीति में जाति के आधार पर एक अयोग्य व्यक्ति सत्तारूढ़ हो जाता है। इसी जाति के आधार पर दंगे फसाद होते हैं। देश को पूरी तरह बर्बाद करने के बाद राजनेता इसी जाति के आधार पर बोट माँगने आ जाते हैं और जनता जाति के आधार पर वोट देकर इन्हें सत्तारूढ़ कर देती है। परिणाम स्वरूप लगातार जनता छली जाती है। "चुनाव बबुनिया का ठेकेदार लड़ रहा था। अपने जाति के पार्टी थी। टिकट तुरंत मिल गया।"[9] आजकल पार्टी में टिकट योग्यता के आधार पर नहीं दिया जाता है, जाति के आधार या रसूख के आधार पर दिया जाता है। संविधान में सभी को वोट देने और चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है इसी का फायदा उठाकर कुछ असामाजिक तत्व कत्ल कर जेल में रहकर भी चुनाव लड़ते हैं। ऐसी ही कुछ बातों ने राजनीति की जड़े खोखली कर दी है इसका सीधा प्रभाव समाज पर पड़ता है।

फागुन के बाद

उषा किरण खान का यह सामाजिक उपन्यास है। इसमें किरण जी ने समाज के संस्कारों रूढियों के बारे में बताया है। भारतीय समाज में परंपराओं का बहुत अधिक महत्व है। लोग अपनी परंपराओं का श्रद्धा के साथ दृढ़ता पूर्वक पालन करते हैं। उन्होंने इस उपन्यास में गौना संस्कार के बारे में बताया है। इस संस्कार के अनुसार लड़कियों की शादी कच्ची उम्र में या कहें कि उनके बचपन में कर दी जाती है। शादी होने के बाद वधु को उसके मायके में छोड़ दिया जाता है। कुछ बरसों के बाद जब वधू सयानी हो जाती है, तो उसे ससुराल लाया जाता है। यह संस्कार गौना कहलाता है। "हां गौना तो कराना है, बेटा पर तू पाट धोना कहाँ जानता है"[10] लेखिका ने इस उपन्यास में बाल विवाह जैसी सामाजिक बुराई के बारे में भी बताया है "सुखीराम और भतीजे मनीराम का ब्याह होने वाला था। रामधनी का बेटा सात साल का था और भतीजा आठ साल का।"[11]

इस उपन्यास में लेखिका ने स्वार्थपरता की ओर भी ध्यान केंद्रित करवाया है। लेखिका ने उन लोगों के बारे में बताया है जो सरकारी नौकरी पाने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। नौकरी पाने के बाद वह अपना सही रंग समाज के सामने पेश करते हैं। उपन्यास के पात्र रानी से प्रोफेसर संग्राम सिंह की शादी होती है। संग्राम सिंह एक प्रोफ़ेसर है।वह रानी जैसी गाँव की सीधी-सादी कक्ष पढ़ लड़की से शादी करता है क्योंकि उसे लगता है कि रानी के पिता की सरकारी नौकरी उसे मिल जाएगी। शादी के बाद वह रानी को महारानी की तरह रखता है। जब उसे पता चलता है कि नौकरी उसे नहीं मिली तो वह रानी पर अत्याचार करता है। उसे मारता पीटता है। खाना तक नहीं देता, कमरे में बंद कर देता है। यह स्वार्थपरता की हद है। "चाचा मुझे लगता है कि डिप्टीगिरी पाने के लिए ही इन प्रोफेसर साहब ने मुझसे विवाह किया था।"[12] इस तरह लेखिका उषा किरण खान ने भारतीय समाज का पूर्ण सच्चाई के साथ चित्र प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष

उषाकिरण खान ने उपन्यासों में भारतीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। वह भारतीय समाज की कुरीतियों बाल विवाह, दहेज प्रथा, स्वार्थवश विवाह, विधवाओं की स्थिति टूटते परिवार, बिखरते रिश्ते, बदलते मानवीय मूल्यों, बलात्कार, राजनीति में जातिवाद भ्रष्टाचार, झूठी राजनीति, धोखेबाजी, कालाबाजारी, आदि बातों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित कराना चाहती है। उषाकिरण खान ने ना सिर्फ समस्याओं पर ध्यान केंद्रित किया है वरन् उसके समाधान भी उपन्यासों में दिए हैं। ऐसा लगता है कि अपनी उपन्यासों के द्वारा लेखिका समाज में बदलाव लाना चाहती है।

संदर्भ सूची

1. डॉ॰ शंभू रत्न त्रिपाठी -समाजशास्त्र की मूलाधार- प्रकाश बुक डिपो बरेली 1963 -पृष्ठ संख्या 16
2. डॉ॰ सुरेश गायकवाड - जैनेंद्र के कथा साहित्य में चित्रित समस्याएँ-साहित्य रत्नाकर कानपुर 1987- पृष्ठ संख्या 30
3. उषाकिरण खान - हसीना मंजिल- वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2005 पृष्ठ संख्या 78
4. उषकिरण खान - हसीना मंजिल - वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2005- पृष्ठ संख्या 26
5. उषाकिरण खान - रतनारे नयन - अनन्य प्रकाशन दिल्ली 2022 - पृष्ठ संख्या 84
6. उषाकिरण खान-रतनारे नयन - अनन्या प्रकाशन दिल्ली 2022 - पृष्ठ संख्या 85
7. उषाकिरण खान- रतनारी नयन 2022- अनन्य प्रकाशन दिल्ली - पृष्ठ संख्या 56
8. उषाकिरण खान - गहरी नदिया नाव पुरानी - राजकमल प्रकाशन 2022 -पृष्ठ संख्या 37
9. उषाकिरण खान- गहरी नदिया नाव पुरानी - राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2022 - पृष्ठ संख्या 143
10. उषाकिरण- खान फागुन के बाद - अनन्य प्रकाशन दिल्ली 2017 - पृष्ठ संख्या 23
11. उषाकिरण खान- फागुन के बाद - अनन्य प्रकाशन दिल्ली 2017 पृष्ठ संख्या 10
12. उषाकिरण खान- फागुन के बाद- अनन्य प्रकाशन दिल्ली 2017- पृष्ठ संख्या 103

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

कथाकार गीताश्री के उपन्यास में लोकसंस्कृति के स्वर

ऋचा कुमारी
शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

'लोक संस्कृति' 'लोक' और 'संस्कृति' दो शब्दों के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का दर्शन कराना अथवा दिखाना होता है। जहाँ 'लोक' शब्द का सम्बन्ध जनसमुदाय के दृष्टि-निक्षेप रूप कार्य के निष्पादन से है वहीं 'संस्कृति' शब्द मनुष्य की सहज प्रवृतियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है। यह व्यक्ति की मानसिक तथा बौद्धिक गतिविधियों, समाज के आचार-विचार, उन्नति-अवनति, रीति-रिवाज, धार्मिक-राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं और परम्पराओं का परिचायक है।

इस प्रकार लोक संस्कृति का सामान्य अर्थ है- ''साधारण जनमानस में प्रचलित वे सभी बातें जो सिद्धान्ततः संस्कृति के क्षेत्र से संबद्ध हों।''[1]

बीज शब्द- लोक संस्कृति, जनजीवन, हिन्दी विश्वकोश, हृदय, मस्तिक, कस्बों गाँवों, जन समुदाय, मुजफरपुर जिला, बिहार प्रदेश, गीताश्री, मिथिलांचल, साक्षात्कार, विद्या चौहान, राजनटनी, छठियार, मीनाक्षी, सोहर, जेठ मासअमावस, मीनाक्षी, लोक संवेदना।

हिन्दी साहित्य के वृहत्त इतिहास में लोक संस्कृति का अर्थ इस प्रकार व्यक्त है- ''लोक संस्कृति के अन्तर्गत जनजीवन से सम्बधित जितने आचार-विचार, विधि-निषेध, विश्वास, प्रथा परम्परा, धर्म, मूढाग्रह, अनुष्ठान आदि हैं वे सभी आते हैं।''[2]

लोक संस्कृति का अर्थ हिन्दी विश्वकोश में इस प्रकार दिया गया है- ''उस सामान्य रूप को लोक संस्कृति का धरातल कहा जा सकता है, जिसमें जनसाधारण की परम्पराएँ, रीतियाँ -नीतियाँ, प्रथाएँ, लोक-विश्वास समाविष्ट होंगे।''[3]

विभिन्न विद्वानों ने लोक संस्कृति के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार दिये गए हैं— सत्या गुप्त कहती हैं— ''हर देश तथा समाज की उत्कृष्ट संस्कृति की आधारशिला वहाँ का लोक समाज होता है और इसी लोक समाज की संस्कृति 'लोक संस्कृति कहलाती है।''[4]

विद्या चौहान ने लोक संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''लोक संस्कृति का सम्बन्ध हमारे हृदय, मस्तिक, मन के संस्कारों में रहता है और इसका सम्बन्ध जन समुदाय से है। जन-जन के मन एवं आचरण में सन्निहित तत्वों से संस्कृति का सुमन अपनी पंखुड़ियों का निर्माण करता है सम्पूर्ण लोक की सौंदर्योनुभूति उसमें सौरभ का संचार करती है।''[5]

इस प्रकार सम्यक रूप से हम कह सकते हैं कि लोक संस्कृति लोक समाज के सम्पूर्ण जीवन प्रणाली को प्रकट करता है। यह जीवन प्रणाली अपने वस्तु और रूप के पक्ष से शहरी संस्कृति से भिन्न प्रकार का होता है वास्तव में लोक संस्कृति का विशेष सम्बन्ध मानव के हृदय मस्तिक तथा मन के संस्कारों से होता है।

कथाकार गीताश्री की जीवनयात्रा लोक से ही प्रारम्भ हुई है। उनका जन्म बिहार प्रदेश के मुजफरपुर जिले में हुआ। छः भाई बहनों में सबसे छोटी गीताश्री ने मिथिलांचल के लोक जीवन को बहुत ही करीब से देखा-समझा है। उनका बचपन

वहीं की लोक संस्कृति में बीता है। एक साक्षात्कार वे स्वयं कहती हैं– ''कस्बों गाँवों में बचपन बीता। थाने में तैनात किसी न किसी चौकीदार की शाम को घर पर ड्यूटी लगती थी। वे इधर-उधर से सुखी लकड़ियाँ जुटाकर आग जलाते थे जिसके इर्द-गिर्द सारे बच्चे बूढ़े आग तापते थे। मैं सजीवन कक्का के पास बैठती थी। उनके पास किस्सों की फैक्टरी थी जिसे वे शाम को हम बच्चों के सामने खोलते थे और कई तरह के किरदार सामने आकर खड़े हो जाते थे।''[6]

पत्रकारिता के रास्ते कहानी एवं उपन्यास लेखन की यात्रा करने वाली गीताश्री का रचना संसार काफी समृद्ध है। उन्होने लगभग आधा-दर्जन उपन्यासों की रचना की है जिनमें उनके दो उपन्यासों 'हसीनाबाद' और 'राजनटनी' में लोक संस्कृति के स्वर भरपूर मात्रा में विद्यमान हैं।

'हसीनाबाद' गीताश्री का प्रथम उपन्यास है जो मिथिलांचल की लोक धरा का कलेवर लिए हुए है। 'राजनटनी' का कथा विन्यास मिथिला से लेकर बंग प्रदेश (बंगाल) तक विस्तृत है। इन दोनों उपन्यासों में लोक विश्वास तथा परम्पराएँ, संस्कार, आचार-विचार तथा विधि-विधान, सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक कार्यकलाप धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यताएँ सम्यक रूप से दर्शाई गई है।

हसीनाबाद उन गुमनाम दलित हसीनाओं की व्यथा की दासताँ है जो सामन्ती अय्यासों द्वारा सृजित की गई है। इस उपन्यास में लोक में व्याप्त जीवन के यथार्थ को शब्दांकित किया गया है शिक्षा और रोजगार का अभाव, संस्कार की संकीर्णता, लोक-जीवन का चक्रव्यूह, विधि-विधान एवं आचार-विचार सबको लेखिका ने सजीव रूप दिया है। इस उपन्यास की नायिका गोलमी को अपनी लोक संस्कृति से अटूट प्रेम है वह अपनी लोक परम्परा की जीवित रखने के लिए 'सोन चिरइया' आर्केस्ट्रा बनाती है तथा अपनी मण्डली के साथ मिलकर अपने लोक के वजूद को स्थापित करती है। इस उपन्यास में कई ऐसे स्थल हैं जहाँ लोक संस्कृति के स्वर पूर्णरूप से उभरे हुए हैं। लोक जीवन में प्रचलित कहावतों के भी दर्शन कराए गए है। लोक में एक कहावत प्रचलित है की 'सवति (सौतन) काठो के (लकड़ी की) होखे त बर्दास (बर्दास्त) ना होले। इस उपन्यास में इसका यथार्थ दर्शन होता है। सगुन अपनी पत्नी मंजू के रहते एक बच्चे की माँ सुन्दरी को ले आया है। मंजू इसे बर्दास्त नहीं करती और सिर पटक-पटक कर रोने लगती है तथा थाने में शिकायत करने पहुँच जाती है। वह दारोगा से कहती है- ''मालिक हमारा नालिस लिखिए। हमको न्याय चाहिए। हमारा मरद दूसरी औरत उठा लाया है, पतुरिया है, उसका दुसरे मरद से बच्चा भी है साथ में ..... मण्डली वाले लोग साथ में इसीलिए लेकर गये थे? सबके नाम से नालिश लिखिए . ..... मालिक..... हम कचहरी तक जायेंगे।''[7]

लोक संस्कृति का एक पक्ष धार्मिक आस्था का भी है। मिथिलांचल की लोकसंस्कृति में काली माई, ब्रहम बाबा, डीह बाबा आदि के पूजन की परम्परा है जिसे हसीनाबाद में दर्शाया गया है। गोलमी नचनिया है ''उसके नाच की गवाह पूरी प्रकृति है, ब्रहम बाबा भी हैं..... जिनके आशीर्वाद के बिना कोई काम इस गाँव में पूरा नहीं होता। न जाने कितनी बार, महिलाओं की टोली के साथ देवता पुज्जी में गोलमी यहाँ झूम-झूमकर गा चुकी है।''[8]

लोक जीवन में रचे बसे लोक गीत एवं लोक नृत्य इस उपन्यास में भरे पड़े हैं। गोलमी झिझिया नाच की प्रैक्टिस माथे पर कुछ रखकर कर रही है, वह गा रही है- ''तोहरे भरोसे ब्रहम बाबा, झिझरी बनैलिए हो, झिझरी पर होइयो ना असबार।''[9]

इसी तरह इस उपन्यास में यथास्थान लोकगीतों की पंक्तियॉ भरी पड़ी हैं जो इसकी सरसता को और अधिक बढ़ाती हैं। यथा- ''कोयल बिना बगिया ना सोभे राजा''

'संगे जीवन काटब गे मोर सखी .....

'रतिया से पहिले होतई भोर सखी' चाहें डोमकच 'अनारकलिया डोमिनी के डोम कहाँ गेलई गे'

'पातर पिया के जुलुफिया'

'मोरा बलमा निठुर निरमोहिया'

'बसंत ऋतु आयल'

इस उपन्यास में वर्णित उपरोक्त सभी पंक्तियाँ उस लोक संस्कृति के स्वर को उभारती हैं जो विलुप्त प्राय हो चुके हैं।

'हसीनाबाद' उपन्यास में लोकजीवन के मिट्टी में व्याप्त लोककथा को खुशबु की तरह लेखिका ने संजोया है जिसे हम बचपन से सुनते आ रहे हैं कि एक चिड़िया जिसकी दाल एक खुँट में गिर गई। वह बढ़ई के पास जाकर कहती है –

''बढ़ई-बढ़ई! खूँटा चीरा खूँटा में दाल बा,

का खाईं का पीं का लेके परदेश जाईं .....।''[10]

गीताश्री ने मिथिलांचल के लोक संस्कृति के स्वर को 'राजनटनी' उपन्यास में भी मुखरित किया है इस उपन्यास में एक नट परिवार के ग्रामीण जीवन, उनके कर्तब एवं नृत्य के प्रदर्शन और लोक संस्कृति से उनके लगाव को सजीव किया गया है। उपन्यास की नायिका मीना (मीनाक्षी) की माँ रजनी मिथिला क्षेत्र में प्रचलित लोक आस्था के प्रति अपनी पूरी श्रद्धा रखती है। मिथिला की स्त्रियों के साथ वट वृक्ष की पूजा करती है। यह पूजा अपने पति की सलामती की कामना के लिए वहाँ की स्त्रियाँ करती हैं, व्रत की कथा सुनती हैं तथा पूरी श्रद्धा से गीत गाती हैं–

'जेठ मासअमावस सजनी गे, सभ धनी मंगल गाऊ भूषण वसन जतन कऽसजनी गे, रचि रचि अंग लगाऊ''[11]

लोकगीतों में सोहर जो कि पुत्र जन्म पर गाया जाता है इसकी मधुर स्वर लहरी भी इस उपन्यास में दर्शाया गया है। यह सोहर गीत सामान्यतः पुत्र अथवा पुत्री के जन्म पर गाया जाता है। मीना के जन्म के छठे दिन (जिसे लोकजगत में छठियार कहा जाता है) मीना के घर में स्त्रियाँ सोहर गीत गातीं है-

''जुग जुग जिअ सो दुलरिया हमनी के भाग जागल हो .....

जिनगी में भाग जागल हो ..... ललना हे .....

धिया के भेइल जनमवा स जिनगी में आस जागल हो .....।''[12]

इस उपन्यास में लोक नृत्य की प्रस्तुति लोक कथा के माध्यम से कराना लेखिका की विशेष उपलब्धि है। कथा नायिका मीनाक्षी सीता कथा पर ऐसा मनमोहक नृत्य प्रस्तुत करती है कि सभी दर्शक दंग रह जाते हैं। यही मीनाक्षी, राजनटनी बनती है और मिथिला के गौरव को अपना प्राणोत्सर्ग कर अक्षुण्ण रखती है।

कहना न होगा कि गीताश्री ने अपने उपन्यासो में लोक संस्कृति के स्वर का प्रवाह कर पाठकों के मन में लोक संवेदना को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

संदर्भ सूची

01. मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड), संपादक-रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण-1965, पृष्ठ संख्या - 59.
02. हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास, षोडस भाग, सं. राहुल सांकृत्यायन कृष्णदेव उपाध्याय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण - 2017 पृष्ठ संख्या - 11.
03. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड - 10, सम्पादक - रामप्रसाद त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1967 पृष्ठ संख्या - 348.
04. डॉ0 सत्या गुप्ता - खड़ी बोली का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण - 1965, पृष्ठ संख्या - 331.
05. विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भोजपुरी और अवधी के सन्दर्भ में, प्रगति प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण - 1972 (प्रस्तावना) पृष्ठ संख्या - ख।
06. कथा के बहाने, संकलन-सम्पादक रश्मि भारद्वाज, शिल्पायन बुक्स, दिल्ली, संस्करण - 2019, पृष्ठ संख्या - 172.
07. गीताश्री, हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 11002, प्रथम संस्करण - 2017. पृष्ठ संख्या - 46.

08. गीताश्री, हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 11002, प्रथम संस्करण - 2017. पृष्ठ संख्या - 14.
09. गीताश्री, हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 11002, प्रथम संस्करण - 2017. पृष्ठ संख्या - 73.
10. गीताश्री, हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली - 11002, प्रथम संस्करण - 2017. पृष्ठ संख्या - 107.
11. गीताश्री, राजनटनी, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली संस्करण प्रथम-2020, पृष्ठ संख्या - 19.
12. गीताश्री, राजनटनी, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली संस्करण प्रथम-2020, पृष्ठ संख्या - 22.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

गलवान के बाद भारत-चीन संबंधों में रणनीतिक पुनर्संतुलन

राकेश कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, झारखंड

सारांश (Abstract)

2020 का गलवान घाटी संघर्ष भारत-चीन संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ, जिसने द्विपक्षीय संबंधों की दिशा को मूल रूप से बदल दिया। यह शोध-पत्र इस बात का विश्लेषण करता है कि गलवान के बाद भारत ने चीन के प्रति अपनी रणनीति को किस प्रकार पुनर्संतुलित किया। इसमें तर्क दिया गया है कि भारत ने एक बहुआयामी रणनीति अपनाई, जिसमें सैन्य तैयारी, आर्थिक प्रतिबंध, कूटनीतिक संतुलन और चयनात्मक सहयोग शामिल हैं। हालांकि तनाव अभी भी बना हुआ है, हाल के घटनाक्रम "नियंत्रित सह-अस्तित्व" (managed coexistence) की ओर संकेत करते हैं, जहाँ प्रतिस्पर्धा और व्यावहारिक सहयोग दोनों मौजूद हैं।

Keywords : गलवान घाटी संघर्ष, बहुआयामी-बहुसरेखण रणनीति, सीमित सहयोग, नियंत्रित प्रतिस्पर्धा।

परिचय (Introduction)

भारत-चीन संबंध ऐतिहासिक रूप से सहयोग और संघर्ष के बीच झूलते रहे हैं, जो सीमा विवाद, भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और आर्थिक परस्पर निर्भरता से प्रभावित होते हैं। भारत और चीन एशिया की दो प्रमुख उभरती हुई शक्तियाँ हैं, जिनका वैश्विक राजनीति, क्षेत्रीय सुरक्षा तथा अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। दोनों देशों के बीच प्राचीन सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध रहे हैं, किंतु आधुनिक काल में सीमा विवाद, सामरिक प्रतिस्पर्धा तथा भू-राजनीतिक हितों के कारण इनके संबंध जटिल बने रहे हैं। विशेष रूप से 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद दोनों देशों के संबंधों में लंबे समय तक अविश्वास बना रहा। यद्यपि 1988 के बाद दोनों देशों ने राजनीतिक संवाद, आर्थिक सहयोग तथा सीमा पर शांति बनाए रखने के लिए अनेक समझौतों के माध्यम से संबंधों को सामान्य बनाने का प्रयास किया, फिर भी वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) पर समय-समय पर तनाव की स्थिति उत्पन्न होती रही।

15 जून 2020 को पूर्वी लद्दाख की गलवान घाटी में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच हुई हिंसक झड़प ने भारत-चीन संबंधों को एक नए और अधिक संवेदनशील दौर में पहुँचा दिया। लगभग 45 वर्षों के बाद सीमा पर हुई इस हिंसक घटना में दोनों पक्षों को सैन्य क्षति उठानी पड़ी, जिससे द्विपक्षीय विश्वास गंभीर रूप से प्रभावित हुआ। इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि सीमा पर शांति और स्थिरता दोनों देशों के समग्र संबंधों की आधारशिला है तथा इसके बिना अन्य क्षेत्रों में सहयोग को सुचारु रूप से आगे बढ़ाना कठिन है।

गलवान घटना के बाद भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा, सीमा प्रबंधन तथा आर्थिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। भारत सरकार ने सीमा क्षेत्रों में सैन्य तैनाती को सुदृढ़ किया, आधारभूत संरचना के विकास में तेजी लाई, चीनी मोबाइल

अनुप्रयोगों पर प्रतिबंध लगाया तथा पड़ोसी देशों से आने वाले प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) के नियमों में संशोधन किया। साथ ही, भारत ने इंडो-पैसिफिक रणनीति, क्वाड तथा अन्य बहुपक्षीय मंचों में अपनी सक्रिय भागीदारी को और अधिक सुदृढ़ किया। दूसरी ओर, चीन ने भी सीमा क्षेत्रों में अपनी सैन्य उपस्थिति बनाए रखते हुए वार्ता के माध्यम से तनाव कम करने के प्रयास जारी रखे।

यद्यपि दोनों देशों के बीच व्यापारिक संबंध अभी भी महत्वपूर्ण बने हुए हैं, फिर भी राजनीतिक और सामरिक स्तर पर विश्वास की कमी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत-चीन संबंध सहयोग और प्रतिस्पर्धा के मिश्रित स्वरूप में विकसित हुए हैं, जहाँ आर्थिक परस्पर निर्भरता के साथ-साथ सुरक्षा संबंधी चिंताएँ भी समान रूप से प्रभावी हैं।

प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य गलवान घटना के बाद भारत-चीन संबंधों में आए राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक तथा कूटनीतिक परिवर्तनों का समग्र विश्लेषण करना है। साथ ही, इस अध्ययन में दोनों देशों के संबंधों पर क्षेत्रीय एवं वैश्विक शक्ति-संतुलन, सीमा विवाद तथा बदलते भू-राजनीतिक परिवेश के प्रभावों का मूल्यांकन किया गया है। यह शोध समकालीन अंतरराष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन में भारत-चीन संबंधों की नई दिशा और भविष्य की संभावनाओं को समझने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

जून 2020 में गलवान घाटी में हुआ संघर्ष दशकों में सबसे घातक टकराव था, जिसमें दोनों पक्षों को भारी नुकसान हुआ और संबंधों में गंभीर गिरावट आई। गलवान के बाद भारत ने अपनी पूर्व की सतर्क सहभागिता नीति को त्यागकर एक नई रणनीतिक दिशा अपनाई, जिसका उद्देश्य चीन की आक्रामकता का संतुलन करना और कूटनीतिक विकल्प खुले रखना था।

सैद्धांतिक ढांचा : रणनीतिक पुनर्संतुलन और बहु-संरेखण

रणनीतिक पुनर्संतुलन का अर्थ है बदलती भू-राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार विदेश नीति में बदलाव करना। भारत की रणनीति "बहु-संरेखण" (multi-alignment) के सिद्धांत पर आधारित है, जिसमें विभिन्न वैश्विक शक्तियों के साथ संतुलित संबंध बनाए रखे जाते हैं।

इसमें शामिल हैं–

- कठोर संतुलन (सैन्य शक्ति)
- सॉफ्ट संतुलन (कूटनीति)
- आर्थिक रणनीति
- चयनात्मक सहयोग

गलवान के बाद पुनर्संतुलन के प्रमुख कारण

1. सुरक्षा झटका और विश्वास की कमी

जून 2020 में पूर्वी लद्दाख की गलवान घाटी में भारत और चीन की सेनाओं के बीच हुई हिंसक झड़प ने द्विपक्षीय संबंधों में एक ऐतिहासिक मोड़ ला दिया। इस घटना ने दोनों देशों के बीच लगभग तीन दशकों से चले आ रहे सीमा पर शांति एवं स्थिरता बनाए रखने संबंधी विश्वास को गहरा आघात पहुँचाया। गलवान संघर्ष से पहले भारत और चीन ने 1993, 1996, 2005 तथा 2013 के सीमा प्रबंधन समझौतों के माध्यम से वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर तनाव को नियंत्रित रखने का प्रयास किया था, किंतु गलवान की घटना ने इन व्यवस्थाओं की प्रभावशीलता पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगा दिया। इस घटना के बाद भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। भारत ने सीमा क्षेत्रों में अतिरिक्त सैनिकों की तैनाती, आधुनिक हथियारों की खरीद, निगरानी प्रणालियों के विस्तार तथा सीमा अवसंरचना के तीव्र विकास पर

विशेष बल दिया। साथ ही, रक्षा आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत रक्षा उत्पादन तथा हिंद-प्रशांत क्षेत्र में रणनीतिक सहयोग को भी प्राथमिकता दी गई। सुरक्षा के इस झटके ने भारत को यह महसूस कराया कि चीन के साथ सीमा विवाद केवल कूटनीतिक वार्ताओं से नियंत्रित नहीं किया जा सकता, बल्कि इसके लिए मजबूत सैन्य तैयारी और प्रभावी प्रतिरोध क्षमता भी आवश्यक है। गलवान घटना का सबसे गंभीर परिणाम दोनों देशों के बीच विश्वास की हानि के रूप में सामने आया। भारत का मानना था कि चीन ने सीमा पर यथास्थिति बनाए रखने और शांति बनाए रखने संबंधी पूर्व समझौतों की भावना का उल्लंघन किया, जिससे दोनों देशों के बीच वर्षों में विकसित पारस्परिक विश्वास लगभग समाप्त हो गया। इसके परिणामस्वरूप भारत ने स्पष्ट किया कि सीमा पर शांति और स्थिरता द्विपक्षीय संबंधों के सामान्यीकरण की पूर्वशर्त है। इस अविश्वास का प्रभाव आर्थिक और तकनीकी संबंधों पर भी पड़ा। भारत ने अनेक चीनी मोबाइल अनुप्रयोगों पर प्रतिबंध लगाया, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) नियमों को कड़ा किया तथा संवेदनशील क्षेत्रों में चीनी कंपनियों की भागीदारी की गहन समीक्षा प्रारंभ की। साथ ही, भारत ने क्वाड (Quad) जैसे बहुपक्षीय मंचों में अपनी सक्रियता बढ़ाई और अमेरिका, जापान तथा ऑस्ट्रेलिया के साथ रणनीतिक सहयोग को और सुदृढ़ किया। यद्यपि दोनों देशों के बीच सैन्य एवं कूटनीतिक स्तर पर कई दौर की वार्ताएँ हुईं और कुछ क्षेत्रों में तनाव कम करने के प्रयास किए गए, फिर भी गलवान के बाद उत्पन्न विश्वास का संकट पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया है। इस प्रकार, गलवान संघर्ष ने भारत-चीन संबंधों को सहयोग से अधिक रणनीतिक प्रतिस्पर्धा और सुरक्षा-केंद्रित दृष्टिकोण की ओर अग्रसर किया तथा यह स्पष्ट कर दिया कि जब तक सीमा पर स्थायी शांति, समझौतों का पालन और पारस्परिक विश्वास पुनः स्थापित नहीं होता, तब तक दोनों देशों के संबंधों का पूर्ण सामान्यीकरण संभव नहीं होगा

2. सीमा विवाद की निरंतरता

वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है, जिससे बार-बार तनाव उत्पन्न होता है। भारत और चीन के बीच लगातार बने रहने वाले सीमा (क्षेत्रीय) विवाद दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों में सबसे महत्वपूर्ण और जटिल मुद्दों में से एक हैं। यह विवाद मुख्यतः पश्चिमी क्षेत्र में अक्साई चिन तथा पूर्वी क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश से संबंधित है। भारत अक्साई चिन को अपने केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख का हिस्सा मानता है, जबकि चीन इस पर अपना नियंत्रण बनाए हुए है। दूसरी ओर, चीन अरुणाचल प्रदेश के बड़े हिस्से पर दावा करता है, जबकि भारत इसे अपने अभिन्न अंग के रूप में देखता है। दोनों देशों के बीच वास्तविक नियंत्रण रेखा (एलएसी) की अलग-अलग व्याख्याओं के कारण समय-समय पर सीमा पर तनाव और सैन्य गतिरोध उत्पन्न होते रहे हैं। 2013 का देपसांग गतिरोध, 2017 का डोकलाम संकट तथा 2020 की गलवान घाटी की घटना ने इस विवाद की गंभीरता को और अधिक उजागर किया। इन घटनाओं का प्रभाव केवल सुरक्षा और सामरिक संबंधों पर ही नहीं, बल्कि व्यापार, कूटनीतिक विश्वास और क्षेत्रीय स्थिरता पर भी पड़ा है। यद्यपि दोनों देश सीमा विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के लिए नियमित वार्ताओं और सैन्य-राजनयिक तंत्रों का सहारा लेते रहे हैं, फिर भी स्थायी समाधान अभी तक नहीं निकल सका है। इसलिए सीमा विवाद भारत-चीन संबंधों की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक बना हुआ है।

3. शक्ति असमानता

भारत और चीन के बीच शक्ति विषमता अंतरराष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो दोनों देशों की आर्थिक, सैन्य, तकनीकी तथा कूटनीतिक क्षमताओं में मौजूद अंतर को दर्शाती है। विगत दशकों में चीन की अर्थव्यवस्था भारत की तुलना में कहीं अधिक बड़ी रही, जिसके कारण उसे रक्षा आधुनिकीकरण, तकनीकी नवाचार और वैश्विक निवेश में उल्लेखनीय बढ़त प्राप्त हुई। सैन्य दृष्टि से भी चीन ने अपनी सेना का तीव्र आधुनिकीकरण किया तथा नौसैनिक और मिसाइल क्षमताओं में व्यापक विस्तार किया, जबकि भारत ने भी अपनी सुरक्षा क्षमताओं को सुदृढ़ करने के प्रयास किए, परंतु संसाधनों और क्षमता के स्तर पर अंतर बना रहा। कूटनीतिक स्तर पर चीन की वैश्विक आर्थिक पहलों और संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उसकी सक्रिय भूमिका ने उसके प्रभाव को बढ़ाया है। इसके बावजूद भारत अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था, रणनीतिक

भौगोलिक स्थिति, बढ़ती अर्थव्यवस्था, युवा जनसंख्या तथा अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और अन्य साझेदार देशों के साथ सहयोग के माध्यम से इस शक्ति विषमता को संतुलित करने का प्रयास कर रहा है। इसलिए भारत-चीन संबंधों में शक्ति विषमता प्रतिस्पर्धा, सहयोग और सामरिक संतुलन—तीनों को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। चीन की आर्थिक और सैन्य श्रेष्ठता के कारण भारत को अप्रत्यक्ष संतुलन रणनीतियाँ अपनानी पड़ीं।

भारत की रणनीतिक पुनर्संतुलन के आयाम

1. सैन्य रणनीति : सीमित कठोर संतुलन

जून 2020 में गलवान घाटी में भारत और चीन के बीच हुई हिंसक झड़प के बाद भारत ने चीन के प्रति अपनी सैन्य रणनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। भारत ने सीमित कठोर संतुलन (Limited Hard Balancing) की नीति अपनाई, जिसके अंतर्गत वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर अतिरिक्त सैनिकों की तैनाती, आधुनिक हथियारों की खरीद, सीमा अवसंरचना (सड़क, पुल और हवाई पट्टियों) का तीव्र विकास तथा निगरानी क्षमता को बढ़ाया गया। साथ ही, भारत ने अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों के साथ रक्षा सहयोग को भी मजबूत किया। हालांकि, भारत ने प्रत्यक्ष सैन्य टकराव से बचते हुए कूटनीतिक वार्ताओं को भी जारी रखा। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत की सैन्य नीति का उद्देश्य चीन की आक्रामक गतिविधियों का प्रभावी प्रतिरोध करना था, जबकि क्षेत्रीय स्थिरता और शांति बनाए रखने का भी प्रयास किया गया।

2. आर्थिक रणनीति : चयनात्मक अलगाव

इस घटना के बाद भारत की विदेश एवं आर्थिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। भारत ने अपनी आर्थिक नीति के अंतर्गत चयनात्मक डिकपलिंग (Selective Decoupling) की नीति अपनाई, जिसका उद्देश्य चीन से सभी आर्थिक संबंध समाप्त करना नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा और रणनीतिक दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में निर्भरता को कम करना था। इस नीति के तहत भारत सरकार ने 200 से अधिक चीनी मोबाइल ऐप्स पर प्रतिबंध लगाया, पड़ोसी देशों से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के लिए सरकारी स्वीकृति अनिवार्य की, दूरसंचार और सरकारी खरीद जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में चीनी कंपनियों की भागीदारी पर कड़े नियम लागू किए तथा आत्मनिर्भर भारत और उत्पादन आधारित प्रोत्साहन (PLI) जैसी योजनाओं के माध्यम से घरेलू विनिर्माण को बढ़ावा दिया। साथ ही, भारत ने जापान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और अन्य देशों के साथ आपूर्ति शृंखलाओं (Supply Chains) के विविधीकरण पर भी विशेष बल दिया ताकि चीन पर अत्यधिक निर्भरता कम की जा सके। हालांकि, इन कदमों के बावजूद भारत ने चीन के साथ व्यापारिक संबंध पूरी तरह समाप्त नहीं किए और अनेक क्षेत्रों में द्विपक्षीय व्यापार जारी रहा। इससे स्पष्ट होता है कि भारत की नीति पूर्ण आर्थिक अलगाव (Complete Decoupling) के बजाय रणनीतिक और नियंत्रित आर्थिक पुनर्संतुलन (Selective Decoupling) पर आधारित थी। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत की आर्थिक नीति राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और रणनीतिक हितों को संतुलित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरी।

3. कूटनीतिक रणनीति : सॉफ्ट संतुलन

भारत की कूटनीतिक रणनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। भारत ने प्रत्यक्ष सैन्य टकराव या पूर्ण आर्थिक विच्छेद (Decoupling) की नीति अपनाने के बजाय सॉफ्ट बैलेंसिंग (Soft Balancing) की रणनीति को प्राथमिकता दी। इस रणनीति के अंतर्गत भारत ने समान विचारधारा वाले देशों—जैसे अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया तथा यूरोपीय देशों—के साथ अपने रणनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा सहयोग को सुदृढ़ किया, ताकि चीन के बढ़ते प्रभाव का संतुलन स्थापित किया जा सके। भारत ने क्वाड (Quad) जैसे बहुपक्षीय मंचों को सक्रिय रूप से मजबूत किया, हिंद-प्रशांत (Indo-Pacific) क्षेत्र में मुक्त, समावेशी और नियम-आधारित व्यवस्था का समर्थन किया तथा रक्षा साझेदारियों और संयुक्त सैन्य अभ्यासों का विस्तार किया। IBSA जैसे मंचों को पुनर्जीवित किया गया। BRICS, SCO एवं G20 जैसे मंचों पर सक्रिय सहभागिता निभाई जाने लगी। साथ ही, भारत ने सीमा पर सैन्य क्षमता बढ़ाने, संवेदनशील क्षेत्रों में अवसंरचना विकास, चीनी निवेश और डिजिटल

प्लेटफॉर्मों पर चयनात्मक प्रतिबंध तथा आपूर्ति श्रृंखलाओं के विविधीकरण जैसे कदम भी उठाए। इन उपायों का उद्देश्य चीन के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष से बचते हुए उसकी रणनीतिक बढ़त को सीमित करना और भारत की सामरिक स्वायत्तता को बनाए रखना था। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत की कूटनीतिक रणनीति सॉफ्ट बैलेंसिंग का एक प्रभावी उदाहरण बनकर उभरी, जिसमें शक्ति संतुलन, बहुपक्षीय सहयोग और राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा को एक साथ प्राथमिकता दी गई।

4. इंडो-पैसिफिक और रणनीतिक साझेदारी

भारत-चीन के बीच जून 2020 में हुई गलवान घाटी की घटना के बाद भारत की हिंद-प्रशांत (Indo-Pacific) नीति और रणनीतिक साझेदारियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। भारत ने मुक्त, समावेशी, नियम-आधारित तथा सुरक्षित हिंद-प्रशांत क्षेत्र की अपनी प्रतिबद्धता को और अधिक सुदृढ़ किया। इस उद्देश्य से भारत ने अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया के साथ क्वाड (Quad) के माध्यम से सहयोग को नई गति प्रदान की तथा समुद्री सुरक्षा, आपूर्ति श्रृंखला (Supply Chain) की मजबूती, उन्नत प्रौद्योगिकी, साइबर सुरक्षा और मानवीय सहायता जैसे क्षेत्रों में सहयोग का विस्तार किया। साथ ही, भारत ने फ्रांस, आस्ट्रेलिया, आसियान देशों तथा यूरोपीय देशों के साथ रक्षा और समुद्री सहयोग को भी गहरा किया। भारत ने अपनी 'एक्ट ईस्ट नीति', SAGAR (Security and Growth for All in the Region) तथा आत्मनिर्भर भारत जैसी पहलों के माध्यम से क्षेत्रीय स्थिरता, आर्थिक लचीलापन और सामरिक स्वायत्तता को बढ़ावा दिया। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत की हिंद-प्रशांत रणनीति केवल चीन की आक्रामकता के संतुलन तक सीमित नहीं रही, बल्कि क्षेत्रीय सुरक्षा, बहुपक्षीय सहयोग, आर्थिक साझेदारी और नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने की व्यापक रणनीति के रूप में विकसित हुई।

5. चीन के साथ सशर्त संवाद

गलवान घाटी में हुई हिंसक झड़प ने भारत-चीन संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया। इस घटना के बाद भारत ने चीन के प्रति अपनी नीति को 'सशर्त सहभागिता (Conditional Engagement)' के आधार पर पुनर्गठित किया। भारत ने स्पष्ट किया कि दोनों देशों के बीच सामान्य और सकारात्मक संबंध तभी संभव हैं, जब वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर शांति और स्थिरता बनी रहे तथा सीमा संबंधी समझौतों का पूर्ण पालन किया जाए। भारत ने यह भी रेखांकित किया कि सीमा पर तनाव और अन्य क्षेत्रों में सामान्य सहयोग एक साथ नहीं चल सकते। इसी दृष्टिकोण के तहत भारत ने सीमा क्षेत्रों में सैन्य तैयारियों को सुदृढ़ किया, चीन के साथ आर्थिक और तकनीकी संबंधों की समीक्षा की, कुछ चीनी मोबाइल ऐप्स पर प्रतिबंध लगाया तथा विदेशी निवेश के नियमों को अधिक कड़ा बनाया। इसके साथ ही भारत ने कूटनीतिक और सैन्य स्तर पर वार्ताओं को जारी रखा ताकि सीमा विवाद का शांतिपूर्ण समाधान निकाला जा सके। इस प्रकार, गलवान के बाद भारत की चीन नीति पूर्ण टकराव या पूर्ण सहयोग के बजाय सुरक्षा हितों, रणनीतिक सतर्कता और राष्ट्रीय संप्रभुता को प्राथमिकता देने वाली सशर्त सहभागिता पर आधारित रही, जिसमें सीमा पर शांति को द्विपक्षीय संबंधों की प्रगति की अनिवार्य शर्त माना गया।

स्थिरीकरण और सामरिक पुनर्संतुलन (2024-2026)

1. सीमा तनाव में कमी

हालिया समझौतों के बाद सीमा पर कुछ हद तक तनाव कम हुआ। वर्ष 2024 से 2026 के बीच भारत और चीन ने वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर तनाव कम करने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। अक्टूबर 2024 में दोनों देशों ने देपसांग और डेमचोक क्षेत्रों में गश्त संबंधी व्यवस्था पर सहमति बनाई, जिससे सीमा पर गतिरोध कम करने की दिशा में प्रगति हुई। इसके बाद सैन्य और राजनयिक स्तर पर नियमित वार्ताएँ जारी रहीं, जिनका उद्देश्य सीमा क्षेत्रों में शांति और स्थिरता बनाए रखना था। वर्ष 2025 और 2026 में दोनों पक्षों ने संवाद को आगे बढ़ाते हुए विश्वास बहाली तथा सीमा प्रबंधन को मजबूत करने पर बल दिया। यद्यपि सीमा विवाद का अंतिम समाधान अभी शेष है, फिर भी 2024-2026 के दौरान हुए डी-एस्केलेशन (तनाव-न्यूनन) समझौतों ने द्विपक्षीय संबंधों में सुधार और सीमा पर शांति बनाए रखने में सकारात्मक भूमिका

निभाई।

2. कूटनीतिक पुनःसंपर्क

वर्ष 2024 से 2026 के दौरान भारत और चीन के बीच कूटनीतिक पुनः-संपर्क (Diplomatic Re-engagement) की प्रक्रिया में उल्लेखनीय प्रगति देखी गई। वर्ष 2020 के गलवान संघर्ष के बाद उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए दोनों देशों के नेताओं, विदेश मंत्रियों तथा सैन्य अधिकारियों के बीच उच्च-स्तरीय वार्ताएँ आयोजित की गईं। इन वार्ताओं के माध्यम से वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर शांति बनाए रखने, विश्वास-निर्माण उपायों को मजबूत करने तथा सीमा प्रबंधन में सहयोग बढ़ाने के प्रयास किए गए। साथ ही, ब्रिक्स (BRICS) और शंघाई सहयोग संगठन (SCO) जैसे बहुपक्षीय मंचों पर भी दोनों देशों ने संवाद और सहयोग को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। यद्यपि सीमा विवाद और रणनीतिक मतभेद पूरी तरह समाप्त नहीं हुए, फिर भी 2024-2026 के दौरान कूटनीतिक पुनः-संपर्क ने द्विपक्षीय संबंधों को अधिक स्थिर और व्यावहारिक दिशा प्रदान की।

3. "नियंत्रित सह-अस्तित्व" का उभरना

गलवान संघर्ष (2020) के बाद भारत और चीन के संबंधों में धीरे-धीरे 'प्रबंधित सह-अस्तित्व (Managed Co-existence)' की नीति उभरकर सामने आई। दोनों देशों ने सीमा पर तनाव को नियंत्रित करने, सैन्य एवं राजनयिक वार्ताओं को जारी रखने तथा संघर्ष को व्यापक टकराव में बदलने से रोकने पर ध्यान दिया। 2024-26 के दौरान उच्च-स्तरीय कूटनीतिक संपर्कों और सीमित सहयोग के माध्यम से संबंधों में कुछ सुधार देखने को मिला। हालांकि, सीमा विवाद पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ, फिर भी दोनों देशों ने मतभेदों का प्रबंधन करते हुए व्यापार और क्षेत्रीय स्थिरता के हितों को ध्यान में रखकर सह-अस्तित्व की नीति अपनाई।

मुख्य विशेषताएँ

गलवान घाटी संघर्ष के बाद भारत-चीन सम्बन्धों को निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया जा सकता है—

क्षेत्र	पहले	बाद में
सुरक्षा	विश्वास निर्माण	सैन्य मजबूती
अर्थव्यवस्था	सहयोग	सीमित अलगाव
कूटनीति	सहयोग	संतुलन
साझेदारी	सीमित	व्यापक
संवाद	सामान्य	शर्तों पर आधारित

चुनौतियाँ

- विश्वास की कमी
- आर्थिक निर्भरता
- संघर्ष का जोखिम
- वैश्विक दबाव

भविष्य की संभावनाएँ

- प्रतिस्पर्धात्मक सह-अस्तित्व
- स्थिर प्रतिस्पर्धा
- संभावित संघर्ष

निष्कर्ष

गलवान घाटी की घटना (2020) भारत-चीन संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। इस घटना ने दोनों देशों के बीच लंबे समय से चली आ रही विश्वास की भावना को गंभीर रूप से प्रभावित किया तथा सीमा विवाद को और अधिक संवेदनशील बना दिया। इसके बाद भारत ने अपनी सीमा सुरक्षा को सुदृढ़ किया, आर्थिक और तकनीकी क्षेत्रों में चीन पर निर्भरता कम करने के प्रयास तेज किए तथा अपनी विदेश नीति में रणनीतिक साझेदारियों को अधिक महत्व दिया। दूसरी ओर, चीन ने भी सीमा क्षेत्रों में अपनी सैन्य उपस्थिति बनाए रखी। यद्यपि दोनों देशों के बीच सैन्य एवं राजनयिक स्तर पर वार्ताएँ लगातार जारी रहीं, फिर भी सीमा पर पूर्ण सामान्य स्थिति बहाल नहीं हो सकी। भविष्य में भारत-चीन संबंधों की स्थिरता इस बात पर निर्भर करेगी कि दोनों देश सीमा विवाद का शांतिपूर्ण समाधान, आपसी विश्वास की पुनर्स्थापना तथा पारस्परिक सम्मान और अंतरराष्ट्रीय नियमों के आधार पर अपने संबंधों को आगे बढ़ाने में कितने सफल होते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि गलवान के बाद भारत-चीन संबंध प्रतिस्पर्धा, सतर्कता और सीमित सहयोग के नए दौर में प्रवेश कर चुके हैं। गलवान के बाद भारत-चीन संबंधों में एक बड़ा बदलाव आया है। भारत ने संतुलित रणनीति अपनाई है जिसमें प्रतिस्पर्धा और सहयोग दोनों शामिल हैं। यह संबंध अब "नियंत्रित प्रतिस्पर्धा" (calibrated competition) के रूप में विकसित हो रहा है।

References

Deepak, B. R. (2020). India and China: Beyond the binary of friendship and enmity. Springer.

Kim, Y.-C. (Ed.). (2020). China-India relations. Springer.

Bajpai, K., Ho, S., & Miller, M. C. (Eds.). (2020). Routledge handbook of China-India relations. Routledge.

Frankel, F. R. (2020). When Nehru looked East: Origins of India-US suspicion and India-China rivalry. Oxford University Press.

Ling, L. H. M. (2020). India China: Rethinking borders and security. University of Michigan Press.

Ministry of External Affairs. (2021). Annual report 2020-2021. Government of India.

Ministry of External Affairs. (2022). Annual report 2021-2022. Government of India.

Ministry of External Affairs. (2023). Annual report 2022-2023. Government of India.

Ministry of External Affairs. (2024). Annual report 2023-2024. Government of India.

International Institute for Strategic Studies. (2024). India-China relations under the Modi 3.0 government.

Chadha, S. S. (2024). Negotiating the India-China standoff: 2020-2024. Carnegie Endowment for International Peace.

Ministry of Defence. (2021). Annual report 2020-2021. Government of India.

Ministry of Defence. (2022). Annual report 2021-2022. Government of India.

Ministry of Defence. (2023). Annual report 2022-2023. Government of India.

Ministry of Defence. (2024). Annual report 2023-2024. Government of India.

Singh, S. (2020). Rising powers or bitter frenemies? India-China relations in the 21st century. Social Transformations in Chinese Societies, 16(2), 111-138. https://doi.org/10.1108/STICS-05-2020-0016??

Stockholm International Peace Research Institute. (2023). SIPRI Yearbook 2023: Armaments, disarmament and international security.

Stockholm International Peace Research Institute. (2024). SIPRI Yearbook 2024: Armaments, disarmament and international security.

Carnegie Endowment for International Peace. (2024). Negotiating the India-China standoff: 2020-2024.

Observer Research Foundation. (2023). India-China relations after Galwan: Challenges and prospects.

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary &
Multiple Languages Quarterly Research Journal

गुप्तकालीन समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विश्लेषण : एक अध्ययन

डॉ. रेणुका सिहाग
नेट, सेट, पी-एच.डी. (इतिहास)
Mob. 9521486960
satishdeharu25@gmail.com

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोधप्रपत्र में गुप्तकालीन समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति तथा विकास का अध्ययन किया गया है। वर्ण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की वृञ् धातु से है जिसका शाब्दिक अर्थ है - वरण करना, चुनना। इस प्रकार इसका अभिप्राय वृत्ति अथवा व्यवसाय चयन से है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग रंग के अर्थ में आर्यो ने अपने को श्वेत वर्ण तथा दास-दस्युओं को कृष्ण वर्ण का बताया है। कालान्तर में यह शब्द वृत्ति का सूचक बन गया तथा व्यवसाय के आधार पर समाज में वर्णों का विभाजन हुआ। तत्पश्चात उनमें कठोरता आई तथा व्यवसाय के स्थान पर जन्म को आधार मान लिया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ण जाति में परिणत हो गए।

प्रत्येक मनुष्य अपने अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करते हुए आपसी वैमनस्य एवं मतभेदों से मुक्त होकर अपना तथा समाज का विकास कर सकें। यह भारतीय समाज की अपनी अनोखी व्यवस्था है जो सामूहिक पद्धति से व्यक्ति से व्यक्ति के उत्थान की योजना है।

गुप्तकालीन समाज भी परम्परागत चार वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित था। ये चार वर्ण चार परम्परागत ब्राह्मण आश्रमों - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास की परम्पराओं का पालन अनिवार्य था। राजा इस परम्परा के रक्षक और पालक थे। कालीदास ने इस को मनुप्रणीत कहकर इसका पालन अनिवार्य कहा।

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी मत

दैवी व्यवस्था सिद्धान्त :-

प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें सर्वप्रथम इसे देवी व्यवस्था मानने का सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन ऋग्वेद, महाभारत, गीता आदि में मिलता है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में चारों वर्णो को विराट पुरुष के चारों अंगों से उत्पन्न कहा गया है यथा–

'ब्राह्मर्णोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्य कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पदद्भ्यां शूद्रो अजायत'।।

इसका अर्थ है उसके मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जांघो से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई, चातुर्वर्ण व्यवस्था

का यह प्राचीनतम उल्लेख है। जहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन की एक शरीर के रूप में कल्पना की गई है, जिसके विभिन्न अंग समाज के विविध वर्गो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मनु के अनुसार ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिये मुख, बाहु, ऊरु तथा पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सृष्टि की। मनुस्मृति के अनुसार पुराणों में इस प्रकार वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति को देवी आधार प्रदान करने के पीछे यह मान्यता रही कि ईश्वर की शक्ति से डरकर सभी वर्ग इसके अनुसार आचरण करेंगे तथा कोई भी इस व्यवस्था के उल्लंघन का साहस नहीं करेगा।

गुण तथा कर्म विषयक सिद्धान्त

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति में देवी व्यवस्था सिद्धान्त की अपेक्षा गुण तथा कर्म अधिक तर्कसंगत् लगता है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि, चारों वर्णों की उत्पत्ति गुण तथा कर्म के आधार पर की गई है। गुण तीन प्रकार के हैं -

सतोगुण (सत्य)	-	ज्ञान
रजोगुण (रज)	-	राग, आसक्ति
तमोगुण (तम)	-	अज्ञान अथवा अंधकार

चातुर्वर्ण उत्पत्ति विषयक कर्म का सिद्धान्त सबसे महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि समाज में केवल दो वर्ण थे- आर्य वर्ण तथा दास वर्ण कालान्तर में जब आर्य भारत में बस गए तो उन्होनें विभिन्न कर्मो के आधार पर भिन्न भिन्न वर्गों का विभाजन किया जो व्यक्ति यज्ञादि कर्म कराते थे उन्हें 'ब्रह्मा' जो युद्ध में निपुण व लोगों को सुरक्षा प्रदान करने में समर्थ थे उन्हें 'क्षत्र' (क्षत्रिय) नाम दिया गया, शेष जनता को 'विश' कहा गया। प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था का यही स्वरूप था। कालान्तर में शूद्र नामक चौथा वर्ण इसमें जोड़ दिया गया। सर्वप्रथम इस वर्ण का उल्लेख ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पुरुषसूक्त में मिलता है। महाभारत के शान्तिपर्व तथा कुछ पुराणों में भी वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति में कर्म की महत्ता स्वीकार की गयी है।

जन्म विषयक सिद्धान्त

'महाभारत' के अनन्तर तो वर्णों का निर्धारण गुण कर्म के स्थान पर जन्म ही इसका निर्णायक रहा। मनु ने ऐसे ब्राह्मणों का वर्णन किया है, जो पतिते, नास्तिक और नपुंसक है। उसने अविद्वान और मूर्ख ब्राह्मणों को भी देवता कहा। इस प्रकार ब्राह्मण के लिए वर्जित हीन कार्य करने वाला व्यक्ति, ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होने पर ब्राह्मण ही रहा। गुप्तकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, षूद्र वर्ण जो कि गुणकर्म, क्षमता व रूचि के आधार पर होते थे, जन्मगत होने पर जाति के रूप में परिवर्तित हो गए।

गुप्तकाल के उत्कीर्ण लेखों में जातियों की चर्चा कम और वर्णों के उल्लेख अधिक प्राप्त होते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में परम्परागत चार वर्णों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्तव्यों का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है, जो निम्नलिखित है–

ब्राह्मण

ब्राह्मण समाज का सर्वाधिक सम्मानित वर्ण था। विराट पुरुष अथवा ब्रह्मा पवित्र एवं विद्वान था। मुख से उत्पन्न होने के कारण वह वाणी अथवा ज्ञान का भण्डार था। ब्राह्मण के छः प्रधान कर्तव्यों का वर्णन निम्न है–

1.	अध्ययन	2.	अध्यापन	3.	यज्ञ करना
4.	यज्ञ कराना	5.	दान देना	6.	दान लेना

गुप्तकालीन समाज में वर्णभेद स्पष्ट रूप से थे जैसा कि तत्कालीन रचनाओं से प्रमाणित होता है। कौटिल्य की तरह वराहमिहिर ने भी वृहत्संहिता में चारों वर्णों के लिए विभिन्न बस्तियो की व्यवस्था की है, उसके अनुसार ब्राह्मण के घर में

पाँच, क्षत्रिय के घर में चार, वैश्य के घर में तीन और शूद्र के घर में दो कमरे होने चाहिए।

दंड व्यवस्था का आधार भी वर्ण व्यवस्था थी। नारद का मत है कि चोरी करने पर ब्राह्मण का अपराध सबसे अधिक और शूद्र का सबसे कम माना जाएगा। गौतम धर्मसूत्र में राजा को सलाह दी गयी है कि वह ब्राह्मण को छः प्रकार के दण्ड से मुक्त रखे-शारीरिक यातना, कारावास, जुर्माना, देश-निष्कासन, अपमान तथा मृत्युदण्ड। विष्णुस्मृति में हत्या के पाप शुद्धि के संदर्भ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की हत्या के लिए क्रमशः नौ, बारह और तीन वर्ष का महाव्रत नामक तप बताया है। इससे स्पश्ट है कि गुप्तकालीन स्मृतिकारों ने वर्णभेदक नियमों का समर्थन किया।

वर्ण और व्यवसाय में पारस्परिक संबंध तो था परंतु गुप्तकाल में अपवाद भी मिलते है। कुछ ब्राह्मण राजवंशों के प्रमाण मिलते हैं जैसे वाकाटक तथा कदंब। ब्राह्मण राजा और योद्धा हो सकते थे। केवल ब्राह्मण ही नहीं अपितु वैश्य और शूद्र वर्ण के राजाओं का भी उल्लेख है। गुप्तवंश के राजा और हर्षवर्धन संभवतः वैश्य थे। सौराष्ट्र अवंति और मालवा के शूद्र राजाओं का वर्णन भी इस काल में मिलता है। परम्परागत शुद्र, आभीर, मलेच्छ राजाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सिंधु और कश्मीर में शासक थे।

प्राचीन स्मृति ग्रन्थों में ब्राह्मण के आपद्धर्म का भी उल्लेख है। संकटकाल में वह क्षत्रियों और वैश्यों के कर्तव्यों को अपना सकता था। गुप्तकाल में अनेक ब्राह्मण राजा हुए। परंतु क्षत्रिय कर्म करते हुए भी उन्हें ब्राह्मण वर्ण में ही माना गया। विंध्यशक्ति नामक ब्राह्मण ने भी योद्धा का कर्म अपनाया और वाकाटक राजवंश की स्थापना की। मृच्छकटिक के अनुसार चारूदत्त नामक ब्राह्मण को 'सार्थवाह' (व्यापारी) कहा गया है।

ब्राह्मणों की पवित्रता पर भी बल दिया जाता था इस काल के ग्रन्थों के अनुसार ब्राह्मण को शूद्र का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए क्योंकि इससे आध्यत्मिक बल घटता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार स्नातकों को शूद्रों और पतितों का अन्न नहीं खाना चाहिए। परंतु इसका प्रमाण नहीं है कि अस्पृश्यों को छोड़कर अन्य षूद्र जातियों का पानी पीना निषिद्ध था। मृच्छकटिक के अनुसार ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएं से पानी भरते थे।

क्षत्रिय

समाज का दूसरा महत्वपूर्ण वर्ण क्षत्रिय था महाभारत में इस वर्ण के विशिष्ट धर्म अध्ययन, प्रजा की रक्षा, यज्ञ करना तथा दान देना बताए गए हैं। ऋग्वेद में इसे ही क्षत्र कहा गया है। जिसका शाब्दिक अर्थ क्षत अर्थात हानि से रक्षा करने वाला। गीता में श्रीकृष्ण ने क्षत्रिय वर्ण के स्वाभाविक कर्मों का वर्णन किया है तदनुसार शौर्य (शूरवीरता), तेज, धैर्य, चातुर्य (चतुरता) युद्ध क्षेत्र से न भागना, दान देना तथा ईश्वर भक्ति ये क्षत्रिय वर्ण के स्वाभाविक कर्म होते हैं। मनुस्मृति में 'प्रजा रक्षण, दान करना, यज्ञ, वेदपठन तथा विषयों में अनासक्ति को क्षत्रिय का कर्तव्य माना गया है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में क्षत्रियों के लिए भी संकट-काल में अपने से नीचे वर्ण के कर्म अपनाने की व्यवस्था की गई थी। अतः गुप्तकाल में क्षत्रियों के अपने से नीचे वर्ण के व्यवसाय अपनाने के उदाहरण मिलते हैं। स्कंदगुप्तकालीन इंदौर से प्राप्त एक अभिलेख से पता चलता है कि क्षत्रिय लोग वैश्य का कार्य भी करते थे। इंदौर में पांचवीं सदी में एक सैनिक श्रेणी के प्रमुख अधिकारी क्षत्रिय थे। संभवतः क्षत्रियों ने ब्राह्मणों का व्यवसाय भी अपनाया हो।

वैश्य

समाज का तीसरा वर्ण वैश्यों की उत्पति ऋग्वेद के सूक्त के अनुसार परम ब्रह्मा के उरू से हुई थी। इस वेद में अन्यत्र विश् पद का प्रयोग सामान्य प्रजा के लिए हुआ है। मानुषी प्रजा, जन तथा विश् में कोई भेद नहीं है। परन्तु कालान्तर में विष् और वैश्य पद पर्यायवाची हो गये। महाभारत में उनका प्रधान कर्म अध्ययन, दान देना, यज्ञ करना, तथा ढंग से धन अर्जित करना बताया गया है। गीता में उनका स्वाभाविक कर्म कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य बताया गया है। (कृषि पशुपाल्या वाणिज्या च वार्ता) विद्याध्ययन से विरत हो जाने के कारण कुछ वैश्यों की गणना शूद्र कोटि में होने लगी । गुप्तयुग में उन्हें

'वणिक', 'श्रेष्ठी' और 'सार्थवाह' भी कहा गया है। वैश्य द्वारा क्षत्रिय का व्यवसाय ग्रहण कर लेने के गुप्तकाल में अनेक उदाहरण हैं। यह भी संभव है कि गुप्तों की सेना में वैश्य सैनिक रहे हों। कुछ वैश्य राजा बनने में समर्थ हुए। गुप्तवंश के प्रतापी राजा संभवतः जन्म से ही वैश्य वर्ण के थे। थानेश्वर के हर्षवर्धन को भी वैश्य वर्ग का ही माना जाता है। गुप्तकालीन साहित्यों में वैश्य को कृषक बताया गया है। अमरकोष में कृषक के पर्यायः वैश्य वर्ग में गिनाए गए हैं। परंतु विष्णु और याज्ञवल्क्य से ज्ञात होता है कि आधी उपज पर, शूद्रों को खेत दिया जाता था। अतः स्पष्ट है कि शूद्र भी कृषक हो जाते थे। गौतम तथा मनु आपातकाल में वैश्य के लिए शूद्रावृत्ति अपनाने का विधान बताते हैं। इस स्थिति में उसे समाज के उच्च वर्णों की सेवा द्वारा अपनी वृत्ति चलानी होती थी। किन्तु संकटकाल समाप्त होते ही वह शूद्रवृत्ति को छोड़कर अपनी स्वाभाविक वृत्ति में चला जाता था। समाज के उपर्युक्त तीन वर्ण 'द्विज' कहे जाते थे। इनका उपनयन संस्कार के द्वारा दूसरा सामाजिक जन्म होता था।

शूद्र

समाज का चतुर्थ एवं सबसे निम्न वर्ण शूद्र था। विराट पुरुष अथवा ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न कहा गया है। प्राचीन शास्त्रों में शूद्र को एक जाति और अन्य वर्णों को द्विजाति कहा गया है, जिनका उपनयन संस्कार नहीं किया जाता है, वे एकजाति के हैं इससे स्पष्ट है कि वर्ण का निर्धारण जन्मगत होने पर शूद्र को उपनयन-संस्कार और विद्याध्ययन से वंचित किया गया। स्मृतियों के युग में सामाजिक .ष्टि से शुद्र बहुत हीन हो गए। पहले तो वे वेतन लेकर अन्य वर्णों की सेवा करते थे। परन्तु मनु ने उनके लिए धन के संचय का निषेध कर दिया। उनके लिए झूठा अन्न, पुराने वस्त्र, पुराल और अन्य पुरानी वस्तुयें देने की व्यवस्था की गई गुप्तकाल में शूद्रों ने वैश्यों का स्थान ग्रहण कर लिया। वे पूर्णतया कृषि तथा व्यापार का कार्य करने लगे। गुप्तकालीन स्मृतियां शूद्रों को सभी प्रकार के वस्तुओं बिक्री का अधिकार प्रदान करती है। मनु ने शूद्रों की सेवावृति पर बल देते हुए उनका एकमात्र धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की सेवा बताया, परंतु याज्ञवल्क्य ने उदार दृष्टिकोण रखा और शूद्र को व्यापारी, कृषक और कारीगर होने की अनुमति दी है। शूद्रों ने इसका लाभ उठाया और कुछ शुद्रों ने सैनिक वृत्ति को भी अपनाया था। कुछ तो सेना में पदाधिकारी बनने में सफल रहे। गुप्त राजा मौर्यों की भांति कड़ा राजकीय नियन्त्रण नहीं रख सके थे जिसके फलस्वरूप शूद्रों पर राजनीतिक दबाव कम हो गया। उनकी अवस्था पहले की अपेक्षा संतोषजनक थी और शूद्रों के राजा होने का प्रमाण भी मिलता है तत्कालीन धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से शूद्रों को अस्पृश्यों और दासों से अलग बताया गया है। वैश्य लोग जब कृषि से विमुख होकर व्यापार एवं वाणिज्य में रुचि लेने लगे तब शूद्र वर्ण ने कृषि कार्य को अपना लिया। नृसिंह पुराण में कृषि को शूद्र का कर्म बताया गया है गुप्तकाल में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से हो चुका था और करदायी किसानों के रूप में उनका बार-बार उल्लेख मिलता है। अतः शूद्रों की आर्थिक दशा में सुधार हुआ। परंतु इस काल में भी अन्य वर्णों की सेवा शूद्र का धर्म बताया गया है। भृत्यों या घरेलू चाकरों के संबंध में कामसूत्र में कहा गया है कि उन्हें खाना-पीना देने के अतिरिक्त मासिक या वार्षिक वेतन मिलना चाहिए। इस काल में शिल्पक्रम और वाणिज्य को भी शूद्र का सामान्य कर्तव्य माना जाने लगा था। पुराणों में भी शूद्र के क्रय विक्रय और व्यापारिक लाभ से जीवन-निर्वाह का उल्लेख है। अमरकोष में शिल्पियों की सूची षूद्र वर्ण में है तथा मजदूरी के सभी ग्यारह पर्याय आए हैं। इस काल में योग व सांख्य दर्शन भी शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे। अतः तत्कालीन समाज में अनेक शिक्षित शूद्रों के उदाहरण मिलते हैं। याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि शूद्र ओंकार के बदले नमः का प्रयोग करते हुए पंच महायज्ञ कर सकते हैं धर्म-संबंधी अधिकारों के क्षेत्र में शूद्रों के प्रति उदारता व्यक्त की गई, उनके दान का भी उल्लेख है। मार्कण्डेय पुराण में दान देना और यज्ञ करना शूद्र का कर्तव्य बताया गया है

मिश्रित जातियां

गुप्तकालीन स्मृतियों में कुछ मिश्रित जातियों के प्रमाण मिलते हैं, जैसे - ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न संतान

'अम्बष्ठ' कही गई। गौतम ने वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री की संतान को 'उग्र' कहा। ब्राह्मण पिता और शूद्र स्त्री से उत्पन्न संतान को मनु ने पारशव जाति का बताया। समकालीन अभिलेखों में कायस्थ नामक पदाधिकारी जो पेशेवर लेखक थे, का उल्लेख है। ग्रामवृद्ध व मुखिया लोगों का एक नया वर्ग था महात्तार, जिन्हें भूमि हस्तान्तरण की सूचना दी जाती थी।

फाह्यान ने एक अस्पृश्य वर्ग का उल्लेख किया है जो बस्ती के बाहर रहते थे। स्मृतियों में इन्हें अन्त्यज अथवा चाण्डाल कहा गया है। ये सबसे निम्न वृत्ति का पालन करते थे जैसे- जंगली जानवरों का शिकार, मछली पकड़ना, सड़कों व गलियों की सफाई, शमशान का काम करना और अपराधियों को फांसी पर लटकाना।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल में भी समाज की आधारशिला वर्ण व्यवस्था थी। गुप्तवंश के शासक हिन्दू धर्म के समर्थक थे परन्तु उन्होंने वर्णव्यवस्था में कठोरता के स्थान पर नमनीयता का परिचय दिया। इस काल में भी जन्म के कारण ही किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र माना जाता था। अब यह सम्भव नहीं था कि कोई व्यक्ति विद्वता के आधार पर ब्राह्मण वर्ण में या वीरता के आधार पर क्षत्रिय वर्ण में सम्मिलित हो सके। यदि उसका जन्म वैश्य कुल में हुआ हो, तो परम विद्वान हो जाने पर भी वैश्य ही रहता था। यही कारण है कि गुप्तवंशी राजा, राजा होने पर भी वैश्य वर्ण के होने के कारण वैश्य ही कहलाए। वर्णभेद की यही दशा आज भी भारत में है। गुप्तयुग तक चातुर्वर्ण्य इसी रूप को प्राप्त कर चुका था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विद्यालंकार सत्यकेतु, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, श्री सरस्वती, सदन - नई दिल्ली
2. कुमार कृष्ण, प्राचीन भारत का सांस्.तिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन-नई दिल्ली
3. भार्गव वी.एस., प्राचीन भारतीय इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशसन्स - जयपुर, नई दिल्ली
4. शर्मा एल.पी., भारत का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
5. झा द्विजेन्द्रनारायण, प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, श्रीमाली कृष्णमोहन, दिल्ली विश्व विद्यालय- दिल्ली
6. श्रीवास्तव के. सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो -इलाहाबाद

KANCHANLATA ISSN : 2321-0540
An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal

FINANCIAL INCLUSION AS A PATHWAY TO SUSTAINABLE RURAL DEVELOPMENT: INSIGHTS FROM RANCHI DISTRICT

Sanjiv Chaturvedi
Assistant Professor
Marwari College
Department of Commerce
Ranchi University Ranchi, Jharkhand

Ajay Ram
Research Scholar
University Deparment of Commerce and Business Management
Ranchi University Ranchi, Jharkhand

ABSTRACT

Financial inclusion plays a vital role in promoting sustainable development by improving access to formal financial services and enhancing the socio economic well being of people. This article examines the contribution of financial inclusion to sustainable development in Ranchi district, Jharkhand. It highlights the impact of initiatives such as Self Help Groups, microfinance, digital banking, UPI, and Aadhaar enabled payment systems on income generation, livelihood diversification, and financial empowerment, particularly among women.

The study finds that financial inclusion has improved economic stability, strengthened social participation, and supported sustainable livelihood practices. However, challenges such as poverty, tribal marginalization, low financial literacy, digital illiteracy, and inadequate infrastructure continue to limit its full potential. The article emphasizes that financial inclusion should be supported by effective policy implementation, digital infrastructure, financial education, and institutional collaboration to achieve long term sustainable development. The findings provide useful insights for policymakers and practitioners to design inclusive financial strategies that address local development needs and promote equitable growth.

Keywords: Financial Inclusion, Sustainable Development, Ranchi District, Women Empowerment, Digital Financial Services, Livelihood Diversification, Tribal Communities

INTRODUCTION

Financial inclusion means making sure everyone—especially poor people, women, and those living in remote areas—has access to useful and affordable financial services like bank accounts, loans, insurance, and digital payments. It is no longer just a nice idea; it has become a key tool for fighting poverty and building a more equal society. When people can save money safely, borrow when needed, and make payments easily, they can plan for the future, handle emergencies, and invest in

better livelihoods.

Ranchi district, the capital of Jharkhand, offers a fascinating case to study this connection. On one hand, it is a growing city with educational institutions, hospitals, shops, and offices. On the other hand, nearly half of its twenty-five lakh people still live below the poverty line. Tribal communities and Scheduled Castes, who form a large part of the population, continue to face serious economic and social hardships. This mix of progress and exclusion makes Ranchi an ideal place to ask: can financial inclusion really change lives?

The district's economy is built on agriculture, mining, and a growing service sector. Many families depend on small-scale farming—growing paddy, vegetables, and fruits. Others work in mines or small businesses. But despite the presence of over four hundred bank branches, the credit-deposit ratio is only forty percent. This means that much of the money deposited in local banks is being lent elsewhere, not invested back into the district's development. This gap shows that having banks nearby is not enough; people must actually be able to use them.

Several programs have tried to change this. Self-Help Groups (SHGs) have brought women together to save and borrow collectively. Microfinance institutions have provided small loans to those who cannot access formal banks. Digital payment systems like UPI have made transactions faster and easier. Organizations such as NABARD, Ramakrishna Mission, and Udyogini have trained people in new skills and helped them start small enterprises. These efforts have shown real results—86.5% of people surveyed said they benefited from microfinance or entrepreneurship schemes, and 78.5% gained new skills to earn a living.

However, problems remain. Poor internet connectivity, lack of digital literacy, and limited awareness prevent many from using digital financial services. In rural areas, schools are weak and dropout rates are high, making it harder for people to understand and use financial products. Cultural barriers and distrust of formal institutions also keep some communities away.

This article explores how financial inclusion is working in Ranchi district—what has succeeded, what has failed, and what lessons we can learn. It looks at how financial services help people build better lives, support women's empowerment, and contribute to sustainable development. At the same time, it examines the obstacles that still stand in the way. By understanding Ranchi's experience, we can better understand how financial inclusion can be made more effective not just in Jharkhand, but across India and beyond.

OBJECTIVES

1. To assess the current reach of banking, microfinance, SHGs, and digital payments across different communities in Ranchi.

2. To measure the impact of financial inclusion on income generation and livelihood stability for tribal groups, women, and small farmers.

3. To examine women's empowerment through access to savings, credit, and skill training programs.

4. To identify key barriers like infrastructure gaps, digital illiteracy, lack of awareness, and socio-cultural challenges.

5. To evaluate contributions to economic, social, and environmental sustainability.

6. To suggest practical policy recommendations for strengthening financial inclusion based on Ranchi's experience.

RESEARCH METHODOLOGY

This study is exploratory and descriptive in nature, relying completely on secondary sources of data. Information has been collected from government reports, policy documents academic journals, research papers, newspapers articles and official websites. The analysis follows a thematic approach examining financial inclusion across economic, social and environmental dimensions. The study acknowledges the limitation of relying solely on secondary data and recommends future primary research to capture grassroots perspectives.

FINANCIAL INCLUSION LANDSCAPE IN RANCHI DISTRICT

Ranchi district presents a mixed picture of financial inclusion. Despite having over four hundred bank branches and strong institutional presence, nearly half of its twenty-five lakh population still lives below the poverty line. Tribal communities and Scheduled Castes remain economically marginalized despite years of policy interventions.

Key Players and Institutions

· State Bank of India, NABARD, and Bank of India lead banking operations

· NABARD extended Rs 5,830 crore developmental assistance to Jharkhand in 2024-25

· RBI Ranchi Regional Office conducts Financial Literacy Week campaigns

· Theme for 2025: 'Financial Literacy – Women's Prosperity'

Government Campaigns

· Financial Inclusion Saturation Campaign launched in June 2025 from Arsande Panchayat, Kanke block

· Focus on opening new accounts, reactivating dormant Jan-Dhan accounts, enrolling people under insurance and pension schemes

· 74 camps organized across 19 districts

Self-Help Groups

· Women-led SHGs have become the backbone of rural financial inclusion

· Function as financial units and catalysts for social and economic transformation

· Members show increased self-confidence and improved household income

· However, only one-third have availed bank loans for their activities

· Challenges include low literacy, irregular savings, and dependence on traditional moneylenders

Digital Financial Services

· UPI, mobile banking, and Aadhaar-enabled Payment Systems have expanded access

· Business Correspondents serve as essential "trust anchors" bridging banks and rural communities

· Usage remains skewed: DBT withdrawals account for 97% and AEPS withdrawals for 84%

· Independent mobile banking usage lags at just 27%

· 52% of customers fear self-operation, preferring face-to-face verification

Persistent Barriers

· Poor internet connectivity and network instability

· Low digital literacy and functional competency gaps

· Striking gender gap: 78% male vs 38% female smartphone ownership

· Frequent biometric mismatches affecting transactions

· Socio-cultural barriers and distrust of formal institutions

· Educational deficits perpetuating cycles of exclusion

Institutional Strengthening

· NABARD digitizing Primary Agriculture Credit Societies

· 1,500 PACS computerized in first phase, 1,297 more underway

· Digitized societies becoming rural hubs offering government schemes, storage, and faster credit access

FINANCIAL INCLUSION AND SUSTAINABLE DEVELOPMENT

Financial inclusion and sustainable development are two sides of the same coin. When people gain access to banking, credit, insurance, and digital payments, it sets off a chain reaction—better livelihoods, stronger communities, and even a healthier environment. This connection is now widely recognized by global institutions and national governments alike.

THE THREE PILLARS OF SUSTAINABLE DEVELOPMENT

Dimension	What It Means	Role o Financial Inclusion
Economic	Stable incomes, decent work, and economic growth	Access to credit helps farmers buy better seeds, small traders expand their businesses, and families smooth out income during lean seasons
Social	Equality, reduced poverty, and community well-being	Banking services empower women, reduce vulnerability to shocks, and improve access to education and healthcare
Environmental	Sustainable use of resources and climate resilience	Savings and insurance enable investment in clean energy, drought-resistant crops, and sustainable farming practices

Impact on Specific Sustainable Development Goals (SDGs)

SDG	Goal	How Financial Inclusion Helps
SDG 1	No Poverty	Bank accounts and insurance protect the poor from falling deeper into poverty during emergencies
SDG 2	Zero Hunger	Credit for farmers improves agricultural productivity and food security
SDG 5	Gender Equality	Women-led SHGs boost financial independence and household decision-making power
SDG 8	Decent Work & Economic Growth	Small business loans create jobs and support livelihood diversification
SDG 10	Reduced Inequalities	Financial Services reach marginalized tribal and rural communities, narrowing the gap
SDG 13	Climate Action	Insurance and green finance help communities adapt to climate risks

The Ranchi Connection: Bridging Access and Outcomes

In Ranchi district, the link between financial inclusion and sustainable development is visible but incomplete. Progress has been made—SHGs have brought women into the financial mainstream, digital payments have reached remote villages, and institutional credit is slowly expanding. However, the transformation from having access to achieving development remains a work in progress.

CHALLENGES IN ACHIEVING FINANCIAL INCLUSION IN RANCHI

Despite notable progress, financial inclusion in Ranchi district continues to face significant hurdles. These challenges are not just technical—they are deeply rooted in social, economic, and infrastructural realities that prevent financial services from reaching those who need them most. Understanding these barriers is essential for designing more effective interventions.

Key Challenges

Challenge	What It Means for People
Digital Divide	Poor internet connectivity and lack of smartphones in rural areas make digital banking nearly impossible
Low Financial Literacy	Most people do not understand how to use bank accounts, loans, or insurance effectively
Gender Inequality	Only 38% of women own smartphones vs 78% of men; cultural norms restrict women's financial independence
Technical Failures	Frequent biometric mismatches and system errors

	frustrate users and erode trust
Dependency on Intermediaries	52% of customers fear using banking alone and rely completely on Business Correspondents
Limited Credit Access	Only one-third of SHG members have received bank loans; most depend on expensive moneylenders
Infrastructure Gaps	Remote villages lack bank branches, ATMs, and reliable connectivity
Socio-Cultural Barriers	Distrust of formal institutions, language problems, and caste-based exclusion keep marginalized communities away
Weak Coordination	Banks, government agencies, and NGOs often work in silos, reducing overall impact
Low Awareness	Many eligible people do not know about insurance, pension and subsidy schemes

Understanding the Bigger Picture

· **Access Usage –** Having an account does not mean using it. Most accounts are dormant or used only for government benefits.

· **Digital Dependency –** People rely on Business Correspondents for every transaction. True inclusion means independent usage.

· **Gender Gap –** Women's limited access weakens the transformative potential of financial inclusion.

· **Infrastructure Failures –** Poor connectivity and technical glitches discourage usage and erode trust.

· **Root Causes –** Poverty and social exclusion cannot be solved by financial services alone.

· **Interconnection –** These challenges feed into each other, making solutions complex.

The Core Reality

Until these interconnected challenges are addressed together, the transformation from having access to achieving development will remain incomplete in Ranchi district. Financial inclusion alone is not enough—it must be accompanied by education, infrastructure, social change, and institutional coordination.

SUGGESTIONS FOR STRENGTHING FINANCIAL INCLUSION IN RANCHI

Based on the challenges identified, here are practical suggestions to make financial inclusion a more effective tool for sustainable development in Ranchi district. These recommendations focus on bridging the gap between access and actual development outcomes.

Key Recommendations

Challenge	Suggested Solution
Digital Divide	Expand internet connectivity to all villages; set up

	community Wi-Fi centers in tribal areas
Low Financial Literacy	Introduce financial education in schools and conduct regular village-level workshops
Gender Inequality	Provide women with subsidized smartphones; create women-only banking hours and help desks
Technical Failures	Upgrade biometric systems; develop offline transaction options for remote areas
Dependency on BCs	Gradually build customer confidence through repeated hands-on training
Limited Credit Access	Simplify loan procedures; create tailored products for farmers and tribal entrepreneurs
Infrastructure Gaps	Set up banking kiosks in every panchayat; improve rural road connectivity
Socio-Cultural Barriers	Use local community leaders to build trust; provide services in tribal languages
Weak Coordination	Form district-level committees with clear roles for banks, government, and NGOs
Low Awareness	Use folk media, street plays, and community radio to spread awareness

Strategic Priorities

Priority	Action Points
Digital Empowerment	Train villagers in mobile banking through practical, hands-on sessions
Women First	Design financial products keeping women's needs, mobility, and constraints in mind
Trust Building	Involve SHGs, village elders, and local leaders as ambassadors for formal banking
Last-Mile Reach	Strengthen BC network with better incentives, technology, and accountability
Policy Support	Ensure state government provides infrastructure and identifies potential beneficiaries
Integrated Approach	Link financial services with skill training, health insurance, and social protection

What Needs to Change

· From account opening → to meaningful account usage

· From digital access → to digital capability

· From BC dependency → to independent financial management

· From schemes existing → to schemes reaching and benefiting people

· From working in silos → to collaborative, coordinated action

CONCLUSION

Financial inclusion holds great promise for sustainable development, but the journey from access to real change is neither automatic nor easy. Ranchi's experience shows both the potential and the limits of financial inclusion as a developmental tool.

The district has made notable progress. Self-Help Groups have empowered women, digital payments have reached remote villages, and institutional credit is slowly expanding. However, the transformation remains incomplete. The gap between having access and achieving development is still wide—accounts remain dormant, dependency on intermediaries persists, and many families continue to struggle despite being "included."

The key lesson is simple: financial inclusion is a means, not an end. Its real value lies in what it enables—better livelihoods, stronger communities, and empowered individuals. For this to happen, financial services must be paired with education, infrastructure, social change, and institutional coordination.

The way forward requires a multi-stakeholder approach where banks, government, NGOs, and communities work together. Technology must be reliable, financial literacy must be prioritized, and services must be tailored to women and marginalized groups.

Ranchi's journey offers hope. It shows that when financial inclusion is people-centered, context-sensitive, and well-integrated, it can truly become a pathway to sustainable development.

In essence: Financial inclusion works, but it works best when it is not alone. It needs partners—education, infrastructure, and social change. Only then can it fulfill its promise of transforming lives and building sustainable communities.

REFERENCES

1. NABARD (2025). Annual Report 2024-25: State Focus Paper – Jharkhand. National Bank for Agriculture and Rural Development, Mumbai.
2. Reserve Bank of India (2025). Financial Literacy Week 2025: Theme Note on Women's Prosperity. RBI Ranchi Regional Office.
3. United Nations Development Programme (2015). Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development. UNDP, New York.
4. Government of India (2025). National Strategy for Financial Inclusion (NSFI): 2025-30. Department of Financial Services, Ministry of Finance, New Delhi.
5. World Bank (2022). The Global Findex Database 2021: Financial Inclusion, Digital Payments, and Resilience in the Age of COVID-19. World Bank Group, Washington DC.
6. Kumar, N., & Singh, R. (2023). Digital Financial Inclusion and Sustainable Development: A Study of Tribal Communities in Jharkhand. Journal of Rural Development, 42(3), 215-230.

7. Chakraborty, P., & Das, S. (2023). Barriers to Digital Financial Inclusion in Rural India. Economic and Political Weekly, 58(12), 34-42.
8. Mishra, R., & Tiwari, S. (2024). Financial Inclusion and Livelihood Diversification: A Case Study from Jharkhand. Journal of Sustainable Development Studies, 17(1), 89-106.
9. Omar, M. A., & Inaba, K. (2020). Does Financial Inclusion Reduce Poverty and Income Inequality in Developing Countries? Asian Journal of Economics and Finance, 2(3), 235-252.
10. Singh, V., & Sharma, A. (2023). Role of Business Correspondents in Deepening Financial Inclusion in Rural India. Journal of Banking and Financial Services, 15(2), 123-140.
11. Rao, N., & Kumar, P. (2024). Financial Inclusion and Sustainable Development Goals: Evidence from Indian States. International Journal of Social Economics, 51(4), 512-529.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

बबलु कुमार

वरिष्ठ शोधार्थी

स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग रांची विश्वविद्यालय रांची

In recognition of the publication of the paper entitled

नागपुरी साहित्यकार मेघनाथ ओहदार के काव्य में रस-योजन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

श्याम सुंदर यादव

वरिष्ठ शोधार्थी

स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची

In recognition of the publication of the paper entitled

नागपुरी पद्य साहित्य : उद्भव, विकास, स्वरूप एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

श्रीकांत गोप

वरिष्ठ शोधार्थी

स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग, रांची विश्वविद्यालय रांची

In recognition of the publication of the paper entitled

नागपुरी काव्य में सौंदर्यबोध

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

सौरभ बसवाल
शोधार्थी (इतिहास)

In recognition of the publication of the paper entitled

अलवर राज्य की स्थापना का ऐतिहासिक अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive
Dr Vsingh
Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. कमलेश देवी

सह-प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)

गुरु गोरखनाथ जी राजकीय महाविद्यालय हिसार

In recognition of the publication of the paper entitled

सन्त साहित्य में अन्तर्निहित सामाजिक चेतना

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. रीता रानी रिहालिया
राजनीति विज्ञान
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

In recognition of the publication of the paper entitled

मानवता के उपासक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Manju M. George
Department of Botany
Union Christian College Aluva, Ernakulam Dt, Kerala

In recognition of the publication of the paper entitled

Germination and Vigor of Seeds of Horticultural Species Inoculated with Biofertilizers and Organic Fertilizers

Published in July - September 2021
Volume 06, Issue-3

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Dr. Arpita Negi
Assistant Professor Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5
Sanjay Dutt
Ph.D. Research scholar Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5

In recognition of the publication of the paper entitled

Yoga Education as a Marketing Tool

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. अन्जनी कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, हर्रैया, बस्ती, उत्तर प्रदेश।

संबद्ध : सिद्धार्थ विश्वविद्यालय कपिलवस्तु सिद्धार्थ नगर, उत्तर प्रदेश।

In recognition of the publication of the paper entitled

वैश्वीकरण के दौर में लोक परंपरा और आधुनिकता

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. शालिनी सी.
सह-प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड, तिरुवनंतपुरम, केरल-695014, भारत

In recognition of the publication of the paper entitled

समकालीन हिंदी नाटकों में सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदनाएँ

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

ਜਗਦੀਪ ਸਿੰਘ ਤੁਲੀ,
ਡਾ: ਸੁਨੈਨਾ (ਨਿਗਰਾਨ)

In recognition of the publication of the paper entitled

(ਭਾਈ) ਵੀਰ ਸਿੰਘ ਜੀ ਦੀ ਕਾਵਿ ਵਿਰਾਸਤ: ਆਲੋਚਨਾ ਦੇ ਵਿਹਾਰਕ ਪੱਖ ਦੇ ਦ੍ਰਿਸ਼ਟੀਕੋਣ ਤੋਂ

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

रेमीसा सी.यु.
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविध्यालय कालड़ी

In recognition of the publication of the paper entitled

साहिर लुधियानवी : विचारों से बुनी हुई गीतमाला

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

सुनीता जाखड़
शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
डॉ. रेखा खण्डेलवाल
सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

पाठ्य सहगामी क्रियाओं में योग क्रियाओं की आवश्यकता एवं विद्यार्थियों में योग के प्रति जागरूकता का अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Anju Kumari
Research Scholar
Economics Department, Radha Govind Univercity, Ramgarh

In recognition of the publication of the paper entitled

एस.एच.जी. से जुड़ी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

अलका यादव
शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
डॉ. सन्जू
प्राचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शिक्षा पर जन संचार माध्यमों का प्रभाव

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. निरंजन कुंभकार

ग्राम-जोजोहातु, पोस्ट-दलभंगा, प्रखण्ड-कुचाई,
जिला-सरायेकेला-खरसावाँ, झारखण्ड

In recognition of the publication of the paper entitled

भारत में मानव अधिकार : दशा एवं दिशा - वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

हेमा राम जाट

पिता का नाम - श्रवण राम

पता - गांव नराधणा तहसील जायल जिला नागौर

In recognition of the publication of the paper entitled

वर्तमान में राजस्थान में सीमेंट उद्योग के पर्यावरणीय दृष्टि से प्रभाव

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

आकाश गुप्ता
दिल्ली विश्वविद्यालय

In recognition of the publication of the paper entitled

पर्यावरण इतिहास प्रकृति और मानव के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. दीपशिखा

बसंतपुरा मुहल्ला,
नज़दीक अमरदीप अस्पताल, नाभा, ज़िला पटियाला

In recognition of the publication of the paper entitled

अनुसंधान एवं सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्यिक पत्रिका का महत्त्व

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Dr. Atul Kumar
Assistant Professor
Department of Business Administration
Shri Ram College Muzaffarnagar, Uttar Pradesh

In recognition of the publication of the paper entitled

DIGITAL FINANCIAL LITERACY AND INVESTMENT BEHAVIOUR OF GENERATION Z : A COMPREHENSIVE REVIEW

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. दस्तगीर एम. मुल्ला
एसोसिएट प्रोफेसर और अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मराठा मंडल कला, वाणिज्य, विज्ञान और गृह विज्ञान महाविद्यालय, बेलगावी (कर्नाटक)

In recognition of the publication of the paper entitled

हिन्दी उपन्यास साहित्य में देवकीनंदन खत्री का योगदान

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

ललिता यादव
शोधार्थी, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर
डॉ. शिल्पा रानी
सहायक आचार्य, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

In recognition of the publication of the paper entitled

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा आधारित शिक्षा : गांधीवादी दृष्टिकोण से अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

सुनिता

शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

श्रीमती बबीता जाँगिंड़

सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

महर्षि अरविंद का शिक्षा दर्शन तथा उसकी वर्तमान युग में उपादेयता

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

किरण यादव

शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू

प्राचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

डॉ. एनी बेसेंट के शिक्षा दर्शन तथा उसकी समकालीन युग में प्रासंगिकता का अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

खुशबू कँवर
शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर
डॉ. सन्जू
प्राचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

ग्रामीण व शहरी अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. गायत्री देवी

अतिथि प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना (उत्तर प्रदेश)

In recognition of the publication of the paper entitled

भारतीय दलीय प्रणाली : स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

नेहा शेखावत

शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. सन्जू

प्राचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों में विषयानुसार पाठ्यक्रम का उनकी शैक्षिक उपलब्धि एवं नैतिक मूल्यों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

रेणु चौधरी

शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

श्रीमती अन्जू चंदेल

सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

विनोबा भावे का शिक्षा दर्शन तथा उसकी वर्तमान युग में उपादेयता

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

शिवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट

In recognition of the publication of the paper entitled

दिव्यांग विमर्श और भारतीय दार्शनिक परम्परा : अष्टावक्र महाकाव्य के संदर्भ में

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Fatima Zohra
Research Scholar, Department of Political Science,
Ismail National Mahila PG College, Meerut
Chaudhay Charan Singh University, Meerut

In recognition of the publication of the paper entitled

भारत में चुनावी निष्पक्षता सुनिश्चित करने में चुनाव आयोग की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540



KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

रेणु बाला शर्मा

एम.एड. छात्रा, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

श्रीमती अन्जू चंदेल

सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

जयपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की विद्यालय परिवेश में कुंठा परिस्थितियों का एक विवरणात्मक अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Kamini Kumari
PGT Chemistry, M.SC., B.Ed, M.Phil.
Incharge Principal
(B.P. Inter school, Begusarai)
State resource person science for society, Bihar and mentor & escort guide teacher Begusarai

In recognition of the publication of the paper entitled

Vitamins and Coenzymes: Their Role in Metabolism and Enzyme Activity

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive
Dr Vsingh
Dr. Vaishali Singh
M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Dr. M. Kala
Associate Professor, Dept.of Hindi
Mar Ivanios college
Thiruvananthapuram, Kerala

In recognition of the publication of the paper entitled

'अनबीता व्यतीत' उपन्यास में टैक्सीडर्मी और पर्यावरण चेतना

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

प्रियांशी वर्मा

शोधकर्त्री, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

डॉ. मंजू देवी

सहायक आचार्या, श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर

In recognition of the publication of the paper entitled

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों के मूल्यों में आ रही गिरावट के कारकों एवं समाधानों का अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

सुशीला देवी

शोधार्थी : चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. धनेश कुमार मीणा

शोध निर्देशकः श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय, चुरू रोड़ झंझनू, (राजस्थान)

In recognition of the publication of the paper entitled

डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश' : जीवन-मूल्य और साहित्य-चिंतन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

नीला कुमारी
शोधार्थी,
पाटलिपुत्र महाविद्यालय

In recognition of the publication of the paper entitled

चंद्र किशोर जायसवाल के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

अलीशा बेगम. एन.

शोधार्थी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, त्याग राज नगर, चेन्नई, भारत

डॉ. एन. जयश्री

गाइड

In recognition of the publication of the paper entitled

उषाकिरण खान के उपन्यासों में चित्रित समाज

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

ऋचा कुमारी
शोध-छात्रा, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

In recognition of the publication of the paper entitled

कथाकार गीताश्री के उपन्यास में लोकसंस्कृति के स्वर

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

राकेश कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय, झारखंड

In recognition of the publication of the paper entitled

गलवान के बाद भारत-चीन संबंधों में रणनीतिक पुनर्संतुलन

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

डॉ. रेणुका सिहाग

नेट, सेट, पी-एच.डी. (इतिहास)

In recognition of the publication of the paper entitled

गुप्तकालीन समाज में प्रचलित वर्ण व्यवस्था का विश्लेषण : एक अध्ययन

Published in January 2026 to June 2026

Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Sanjiv Chaturvedi
Assistant Professor, Marwari College, Department of Commerce,
Ranchi University Ranchi, Jharkhand
Ajay Ram
Research Scholar, University Deparment of Commerce and Business Management,
Ranchi University Ranchi, Jharkhand

In recognition of the publication of the paper entitled

FINANCIAL INCLUSION AS A PATHWAY TO SUSTAINABLE RURAL DEVELOPMENT : INSIGHTS FROM RANCHI DISTRICT

Published in January 2026 to June 2026
Volume 11, Issue I, Part-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.

Impact Factor : 5.621 ISSN : 2321-0540

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTLY RESEARCH JOURNAL

PUBLISHED BY : GUGANRAM EDUCATIONAL & SOCIAL WELFARE SOCIETY (REGD.)

CERTIFICATE OF PAPER PUBLICATION

Is here by awarding this certificate to

Dr. Ranjodh Singh Jamwal
Associate Professor History
G D C SAMBA, Jammu (Jammu Kashmir)

In recognition of the publication of the paper entitled

From Harappan Outposts to Dogra Palaces: The Heritage Sites of the Jammu Region

Published in January to June 2026
Volume-11, Issue-1-2

Managing Executive

Dr Vsingh

Dr. Vaishali Singh

M.A. (Hindi, Pol. Sci.), M. Ed., Ph.D.